राजस्थानी भाषा और साहित्य

'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा', 'डिंगल मे वीररस'
'राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों
की खोज' आदि ग्रन्थों के रचयिता—

पं० मोतीलाल मेनारिया एम० ए०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

हिंदी भाषा और साहित्य से अपभ्रंश, ब्रजभाषा [पिंगल], राजस्थानी [डिंगल], अवधी, मैथिली और भोजपुरी आदि भाषाओं और साहित्य का बोध होता है। किन्तु अब तक हिन्दी साहित्य के नाम पर जो इतिहास लिखे गए हैं उनमें अपभ्रंश, ब्रज, अवधी और खड़ी बोली के साहित्य पर ही अधिक विचार हुआ है। इन भाषाओं में भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली (आधुनिक हिन्दी गद्य) पर ही साहित्यकारों की दृष्टि गई है। प्रान्त भेद से हिन्दी की विभिन्न बोलियों ने भाषा और साहित्य का रूप धारण किया, तथा उनमें साहित्य की वृद्धि भी हुई। किन्तु अभी तक हिन्दी की इन साहित्य-विभूतियों पर विद्वानों की दृष्टि इतिहास लिखने की दृष्टि से फिरी ही नहीं। ब्रजभाषा जैसे सुप्रसिद्ध साहित्य पर भी आज तक स्वतंत्र रूप से कोई इतिहास नहीं लिखा गया है।

प्रसन्नता का विषय है कि अब इस आवश्यक अंग की ओर साहित्यकारों का ध्यान जाने लगा है। इस दृष्टि से श्री मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी जगत् की महत्वपूर्ण घटना है। राजस्थानी भाषा और साहित्य का महत्व, उसके साहित्य की प्रचुरता एव श्रेष्ठता आदि का परिचय तो श्री मेनारिया जी की इस पुस्तक से हो ही जायगा, अतः यहाँ इस साहित्य का विवेचन पुनरावृत्ति मात्र होगा।

सम्मेलन को विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के समीक्षक इस ग्रथ से हिन्दी की अन्य भाषाओं और उनके साहित्य पर इस प्रकार के ग्रथ लिखने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। ऐसे सत्प्रयत्नों से हिन्दी की सर्वाङ्गीण समृद्धि तो होगी ही, साथ ही अहिन्दी जगत् को हिन्दी भाषा के विभिन्न स्वरूपों और प्रकृतियों की जानकारी भी होती रहेगी।

सम्मेलन श्री मेनारिया जी के इस मौलिक प्रयत्न के लिये उन्हें पुनः धन्यवाद देता है।

रामनवमी, २००६

साहित्य मंत्री

समर्पण

भाँखडतौ* मुगला अगै, फिर फिरंगां रै राज।
टडन कीधौ टडतौ, उण भारत नै आज ॥१॥

उडदू - इंगलिश टडती, अण भारत अणमाप।
हिंदी टडै हिंदवाँ, टडन रौ परताप ॥२॥

उत्तम विद्या चातुरी, उत्तम गुण री रास।
उत्तम पुरुषाँ जस कह्यौ, धंन पुरुषोत्तमदास ॥३॥

हस - वाहणी हंस तज, चित लै सौगुण चाव।
टटन रसणा पर रहै, दे सदगुण रौ साव ॥४॥

पोथी हूँ अरपण करूँ, नहँ तव जोग निहार।
वालमीक तुलसी हुता, वे करता इण वार ॥५॥

—लेखक

प्रकाशकीय

हिंदी भाषा और साहित्य से अपभ्रंश, ब्रजभाषा [पिंगल], राजस्थानी [डिंगल], अवधी, मैथिली और भोजपुरी आदि भाषाओं और साहित्य का बोध होता है। किन्तु अब तक हिन्दी साहित्य के नाम पर जो इतिहास लिखे गए हैं उनमें अपभ्रंश, ब्रज, अवधी और खड़ी बोली के साहित्य पर ही अधिक विचार हुआ है। इन भाषाओं में भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली (आधुनिक हिन्दी गद्य) पर ही साहित्यकारों की दृष्टि गई है। प्रान्त भेद से हिन्दी की विभिन्न बोलियों ने भाषा और साहित्य का रूप धारण किया, तथा उनमें साहित्य की वृद्धि भी हुई। किन्तु अभी तक हिन्दी की इन साहित्य-विभूतियों पर विद्वानों की दृष्टि इतिहास लिखने की दृष्टि से फिरी ही नहीं। ब्रजभाषा जैसे सुप्रसिद्ध साहित्य पर भी आज तक स्वतंत्र रूप से कोई इतिहास नहीं लिखा गया है।

प्रसन्नता का विषय है कि अब इस आवश्यक अंग की ओर साहित्यकारों का ध्यान जाने लगा है। इस दृष्टि से श्री मोतीलाल मेनारिया कृत 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी जगत् की महत्त्वपूर्ण घटना है। राजस्थानी भाषा और साहित्य का महत्त्व, उसके साहित्य की प्रचुरता एवं श्रेष्ठता आदि का परिचय तो श्री मेनारिया जी की इस पुस्तक से हो ही जायगा, अतः यहाँ इस साहित्य का विवेचन पुनरावृत्ति मात्र होगा।

सम्मेलन को विश्वास है कि हिन्दी साहित्य के समीक्षक इस ग्रंथ से हिन्दी की अन्य भाषाओं और उनके साहित्य पर इस प्रकार के ग्रंथ लिखने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे। ऐसे सत्प्रयत्नों से हिन्दी की सर्वाङ्गीण समृद्धि तो होगी ही, साथ ही अहिन्दी जगत् को हिन्दी भाषा के विभिन्न स्वरूपों और प्रकृतियों की जानकारी भी होती रहेगी।

सम्मेलन श्री मेनारिया जी के इस मौलिक प्रयत्न के लिये उन्हें पुनः धन्यवाद देता है।

रामनवमी, २००६ साहित्य मंत्री

माननीय राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन

निवेदन

हिन्दी-साहित्य के निर्माण, विकास एवं प्रसार में भारतवर्ष के जिन-जिन प्रान्तों ने भाग लिया है उनमें राजस्थान का अपना एक विशेष स्थान है। राजस्थान-वासियों को इस बात का गर्व है कि उनके कवि-कोविदों ने हिंदी-साहित्य के प्रायः सभी अगों पर ग्रथ-रचनाकर उनके द्वारा हिंदी के भाडार को भरा है। राजस्थान मे अनेक ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार हो गये हैं जिनके ग्रथ हिंदी-साहित्य की अमूल्य सपत्ति और हिंदी भाषा-भाषियों के गौरव की वस्तु माने जाते हैं। राजस्थान का डिंगल साहित्य, जो वस्तुतः हिंदू जाति का प्रतिनिधि साहित्य है और जिसमें हिन्दू सस्कृति व हिंदू गौरव की झलक सुरक्षित है, यहाँ के साहित्यिकों की अपनी एक अपूर्व देन है।

परन्तु इतना सब होते हुए भी राजस्थान है बड़ा अभागा। इस दृष्टि से कि भूल-भ्रान्तियों की मार जितनी अधिक इसे सहन करनी पडी है उतनी अन्य किसी प्रान्त को नहीं सहन करनी पडी। और यह मार अधिकतर हिंदीवालों की ओर से पडी है जो राजस्थान को हिंदी-क्षेत्र के अतर्गत और राजस्थानी भाषा-साहित्य को हिंदी-वाङ्मय का एक अविभाज्य अग बतलाते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास कहे जानेवाले ग्रंथों में जब कभी राजस्थान के इतिहास, साहित्य एवं भाषा सम्बन्धी वृत्त पढने को मिलते हैं तब देखकर हैरत होती है। कभी-कभी तो मन में यह विचार आता है कि जिस राजस्थान से सबधित साहित्य का वृत्तान्त मैं पढ रहा हूँ, क्या यह वही राजस्थान है जिसका मैं निवासी हूँ या कोई दूसरा है! दो-एक उदाहरण देखिए—

(क) "राजपूताना एक ऐसा प्रान्त है जिसके प्रति किसी का विशेष **अनुराग नहीं हो सकता।** वह प्रान्त मरुस्थान या **रेगिस्थान** ही है और इसीलिए वहाँ **धान्यादिक भोज्य पदार्थ** बहुत कम उगते हैं, वहाँ **जल की भी बडी न्यूनता** हैं, अतः वहाँ जीवन की समस्या बडी ही कठिन होती है, भोग विलासादि के सुखमय जीवन का प्रश्न तो बहुत ही दूर रह जाता है। यही मुख्य कारण है, कि यह प्रान्त राजपूत राजाओं का प्रधान प्रान्त होता हुआ भी **युद्ध-क्षेत्र नहीं हुआ और मुसलमान इसकी ओर कभी नहीं बढ़े।**"

(ख) "राजपूताने मे मेवाड़, मारवाड़, महोबा, चित्तौड, बूँदी, जयपुर, नीमराणा, रीवा, पन्ना और भरतपुर राज्यों में चारण-साहित्य का निर्माण हुआ।

मेवाड़ मे राजा जगतसिंह ने १६२८-१६५४ तक, राजसिंह ने १६५४-१६८१ तक और जयसिंह ने १६८१-१७०० तक राज्य किया[1]। राणा जगतसिंह के समय का एक महत्व-पूर्ण ग्रथ जगतविलास है जिसके लेखक के विषय में विशेष ज्ञात नही[2]। राजसिंह के राजकवि मान ने १६६० में राजदेवविलास ग्रथ लिखा,[3] जिसमें औरगजेब और राजसिंह के युद्धो का वर्णन है। सदाशिव ने राजरत्नाकर ग्रथ लिखा। यह ग्रथ वीर काव्य से अधिक वीरस्तुति काव्य (प्रशस्ति) है[4]। एक ग्रथ 'राजप्रकाश' और लिखा गया। इसके रचयिता के विषय में कुछ पता नहीं है[5]। इसमे जयसिंह के अनेक युद्धों का वर्णन है। ये युद्ध अन्य हिन्दू राजाओं से ही हुए हैं, मुसलमानी राजसत्ता से नहीं। इसी समय के कवि रणछोड का लिखा हुआ राजपन्ना[6] नाम का एक और ग्रंथ मिलता है।"

इसी तरह के और भी उदाहरण मेरे पास भारी सख्या मे सगृहीत हैं। 'मिश्रबंधु विनोद' तो इनसे भरा पडा है। कहना न होगा कि बगला, मराठी, गुजराती आदि के इतिहास-ग्रथों में ऐसी अनर्गल बातें प्रायः नहीं मिलतीं।

---

१. इन राजाओं के जो शासन-समय बतलाये गये हैं, वे अशुद्ध हैं। शुद्ध समय क्रमशः ये हैं १६२८-१६५२, १६५२-१६८०, और १६८०-१६९८।

२. मेवाड में जगतसिंह नाम के दो राजा हुए हैं। यह ग्रथ दूसरे जगतसिंह के समय में लिखा गया है जिनका शासन-काल सन् १७३४-१७५१ हैं। ग्रथ का ठीक नाम 'जगविलास' और कवि का नन्दराम हैं। देखिए पृ० १८३

३. ग्रथ का शुद्ध नाम 'राज-विलास' है। इसका रचना-काल १६६० नहीं, १६८० है। ग्रथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका हैं। देखिए पृ० १६२

४. राज-रत्नाकर हिंदी का ग्रथ नहीं सस्कृत का है। देखिए, कैटेलॉग ऑव मेन्युस्क्रिपट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव हिज हाइनेस दि महाराना ऑव उदयपुर, पृ० १२२-१२३

५. राजप्रकाश के रचयिता का पूरा पता है। नाम किशोरदास हैं। रचना-काल सं० १७१९ है। इसमें जयसिंह के युद्धों का वर्णन तो दूर रहा उनका नाम भी नहीं है। इसमें राजसिंह के विलास-वैभव और शौर्य-पराक्रम का वर्णन हैं। देखिए पृ० १५९

६. ग्रथ का नाम 'राजपन्ना' नहीं, राज-प्रशस्ति है। यह भी हिंदी का नहीं, सस्कृत का ग्रथ है। देखिए, पृ० ९२ का फुट नोट।

पाश्चात्य विद्वानों का शोध-कार्य तो उनसे भी अधिक उत्तम और प्रामाणिक है। यह तो हिंदी की ही विशेषता है। मैं नहीं समझता कि इस तरह का साहित्यिक कार्य हम हिंदीवालों की, जो हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर आरूढ देखने के लिए आतुर हैं, गौरव-वृद्धि में सहायक हो सकता है।

हिंदी के विद्वानों में सब से अधिक भ्रान्ति राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के विषय में फैली हुई है। कुछ इसे हिंदी की जननी और कुछ हिदी की विभाषा (बोली) बतलाते हैं। परन्तु ये दोनों ही धारणाएँ भ्रमात्मक हैं। वास्तव में न तो राजस्थानी हिंदी की जननी है और न हिंदी की विभाषा। ये दो स्वतत्र भाषाएँ हैं।

इस भ्रान्ति के कई कारण हैं जिनमे एक यह भी है कि 'हिंदी' की ठीक-ठीक परिभाषा नहीं की गई है। वस्तुतः हिंदी कोई एक भाषा नहीं है। खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि सात-आठ भाषाओं का समुदाय है जिसमे राजस्थानी भी समिलित है। अतः राजस्थानी को हिंदी समुदाय की भाषा अथवा हिंदी से सबधित भाषा मानना एक बात है, और हिंदी की जननी अथवा विभाषा बतलाना दूसरी बात। इस अतर को स्पष्टतया समझ लेने की आवश्यकता है।

आज से कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व मेरा ध्यान उल्लिखित भ्रातियों की ओर गया। उस समय मुझे यह भी विचार आया कि इन भ्रान्तियों के लिए केवल बाहरवालों ही को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। राजस्थानवालों का दोष भी उतना ही है। बल्कि उनसे भी अधिक है। क्योंकि उन्होंने अपने साहित्य के वास्तविक इतिहास को क्रमबद्ध रूप मे ससार के सामने रखने की कभी चेष्टा नहीं की और सदैव दूसरों ही का मुँह ताकते रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने दूसरों की की गलत बातों को भी सच कर के माना और उनका प्रचार भी किया। अतः मित्रों के आग्रह से मैंने इस काम को हाथ में लिया, और अपेक्षित सामग्री एकत्र करना आरभ किया जिसके लिए मैं राजस्थान के विभिन्न राज्यों में तथा ठेठ काशी-कलकत्ता तक घूमा और वहाँ के पुस्तकालयों, व्यक्तिगत सग्रहालयो आदि मे राजस्थानी भाषा के हस्तलिखित ग्रंथों को देखा। धीरे-धीरे मेरे पास राजस्थान के लगभग साढे तीन हजार से अधिक साहित्यकारों के संबंध की सामग्री इकट्ठी हो गई जिसमे से कुछ का उपयोग मेरी पूर्व प्रकाशित 'राजस्थानी साहित्य की रूप रेखा',

'डिंगल में वीर रस' और 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' नामक पुस्तकों में हुआ है।

प्रस्तुत ग्रंथ राजस्थानी भाषा-साहित्य पर मेरा चौथा प्रयत्न है। मेरा इरादा इसमें सपूर्ण प्राप्त सामग्री दे देने का था। परन्तु ऐसा हो नहीं सका—मित्रों ने उचित नहीं समझा। क्योंकि साढ़े तीन हजार व्यक्तियों तथा उनकी कृतियों का परिचय आदि देने से यह एक सूचीपत्र-सा बन जाता और विशेष लाभ न होता। अतः जिन साहित्यकारों की रचनाओं को मैंने भाषा, साहित्य व इतिहास की दृष्टि से महत्व का पाया. उनको चुन लिया और शेष को रहने दिया। इस चुनाव में मैंने अपनी रुचि से काम लिया है। इसमें मत-भेद हो सकता है। डा० शार्पकृत "ए डिक्शनरी ऑव् इंग्लिश ऑथर्स" के ढंग का "राजस्थानी कवि-कोविद-कोष" नामक एक दूसरा ग्रथ मैं तैयार कर रहा हूँ। इसमें समस्त सामग्री का समावेश हो सकेगा।

वर्तमान राजस्थान प्रान्त का निर्माण और इसकी हदबंदी अंग्रेजों ने कुछ तो अपनी शासन-प्रबध की सुविधा और कुछ राजनीतिक कारणों को सामने रखकर की थी। इसलिए मालवे को उन्होंने राजस्थान से पृथक् कर दिया। परन्तु सस्कृति, रहन-सहन, इतिहास, जन-तत्व इत्यादि की दृष्टि से वह राजस्थान का स्वाभाविक अश है और उसमें बोली जाने वाली भाषा माळवी राजस्थानी ही की शाखा है। अतः राजस्थान और मालवा राजनीतिक दृष्टि से पृथक् होते हुए भी सास्कृतिक दृष्टि से एक हैं। और चूँकि राजस्थानी भाषा और साहित्य का इतिहास कही जानेवाली पुस्तक का आधार-क्षेत्र तो सास्कृतिक इकाई ही होना चाहिए यह सोचकर मैंने मालवे के कुछ साहित्य कारों का परिचय भी इसमें दिया है। यदि भविष्य में कभी भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों का ठीक तरह से विभाजन किया गया, और यदि यह विभाजन भाषा-सस्कृति के आधार पर हुआ, तो मालवे का राजनीतिक दृष्टि से भी राजस्थान के अंतर्गत होना निश्चित है।

प्रत्येक देश के इतिहास में, चाहे वह राजनैतिक इतिहास हो, चाहे साहित्यिक, थोड़ी-बहुत दन्तकथाएँ अवश्य घुली-मिली रहती हैं। राजस्थान का इतिहास भी इन से बहुत प्रभावित है। इस पुस्तक में मैंने बहुत-सी दन्तकथाओं को ऐतिहासिक तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर कसकर उनके वास्तविक स्वरूप को सामने रखने की कोशिश की है। इससे दन्तकथा-प्रेमी राजस्थान के बहुत से महानुभाव, विशेषकर चारण लोग, मुझसे बहुत नाराज होंगे; पर

क्या किया जाय, लाचारी है। सत्य-सत्य ही है। फिर आज के इस वैज्ञानिक युग में दन्तकथाओं के लिए स्थान कहाँ है?

उपर्युक्त बातों से मेरा आशय यह नहीं है कि अपनी इस पुस्तक को मैं सर्वथा निर्दोष एव पूर्ण मानता हूँ और दूसरों के ग्रंथों में त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ हैं। भूल करना मनुष्य के स्वभाव में है। इसलिए इसमें भी अनेक त्रुटियाँ होंगी, और हैं। हाँ, इतना विश्वास मैं अवश्य दिला सकता हूँ, कि इसके प्रणयन में मैंने पर्याप्त सावधानी एवं निष्पक्षता से काम लिया है और अपनी तरफ से इसे अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने में कोई कसर नहीं रखी है। और यह सब हिंदी की सेवा तथा हिंदी का बल बढ़ाने की भावना से प्रेरित होकर किया है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन हमारे देश की एक सुप्रसिद्ध सस्था है। हिंदी की उन्नति के लिए जो अथक उद्योग इसने किया है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। राजस्थानी को भी इसके द्वारा बहुत बल और प्रोत्साहन मिला है। इस पुस्तक को प्रकाशित कर उसने मेरा भी गौरव बढ़ाया है। एतदर्थ मैं उसका आभारी हूँ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों के विद्वानों की जानकारी राजस्थानी भाषा-साहित्य के विषय में बहुत थोड़ी है, और जो है वह भी बहुत अशुद्ध एव एक पक्षीय है। यदि इस पुस्तक से उनकी ज्ञान-वृद्धि हुई और उनमें फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

अन्त में अपने प्रिय मित्र श्री पृथ्वीसिंह महता, विद्यालकार, को धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने पुस्तक के भूमिका भाग को पढ़ने का कष्ट किया और अनेक सुझाव दिये तथा अनेक स्थानों पर सशोधन भी किया। आधुनिक काल के बहुत से साहित्यकारों के परिचय आदि प्राप्त करने में श्रीवृद्धिशंकर "हितैषी", सचालक, हितैषी पुस्तक-भडार, से मुझे बहुत सहायता मिली है। अतः मैं उनका भी उपकृत हूँ।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० १-१०-४८

मोतीलाल मेनारिया

विषय-सूची

प्रथम प्रकरण

भूमिका

राजस्थान एक महान प्रान्त है। सदियों तक यह भारतीय संस्कृति, शौर्य, साहित्य और कला का केन्द्र रहा है। राजस्थान नाम ही मे कुछ ऐसा जादू है कि जिसे सुनकर हृदय में जोश उमड़ पड़ता है। अपने धर्म, अपनी मान-मर्यादा और अपने देश-गौरव के नाम पर मर मिटनेवाले असंख्य नर नारियों के रक्त से सनी हुई यहाँ की धरती तीर्थराज प्रयाग की तरह पवित्र और यहाँ का प्रत्येक रज-कण गगामाटी-रेणुका की तरह मुक्ति को देनेवाला है। महामति कर्नल टॉड के शब्दों मे राजस्थान में कोई छोटा-सा राज्य भी ऐसा नहीं है जिसमें थर्मापिली जैसी रणभूमि न हो और न कोई ऐसा नगर है जहाँ लियोनिडास जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो। एक समय था जब यहाँ की माँ-बहिनें अपने पुत्र-भाइयो को वीरत्व का पाठ पढ़ाया करती थीं और खुद भी देश के लिए जलने-मरने को तैयार रहती थीं—

> बाळा चाल म बीसरै, मोथण जहर समाण।
> रीत मरंताँ ढील की, ऊठ थयौ घमसाण ॥ १ ॥
> वीरा लेवण आवियौ, पिउ रण हुआ बहीर।
> अब तो बळवा जावस्याँ, अब नहँ आवाँ पीर ॥ २ ॥
> सुरपुर तक निभ जावसी, या जोड़ी या प्रीत।
> मखी पिऊ रै देसड़ै, सँग बळवा री रीत[1] ॥ ३ ॥

---

[1] हे बेटा! अपनी चाल को मत भूल। मेरा दूध जहर के समान है (अर्थात् जो इसे पीता है वह मरता है) फिर मरने का रीति-पालन में शिथिलता क्यों? उठ, घमासान युद्ध हो रहा है ॥ १ ॥ ऐ भाई! तू मुझे लेने को आया है। लेकिन मेरे पति रण की ओर प्रयाण कर चुके हैं। अब मैं तेरे साथ पीहर नहीं आऊँगी, सती होने को जाऊँगी ॥ २ ॥ हे सखी! मेरी और प्रीतम की यह जोड़ी और यह प्रेम स्वर्ग तक निभ जायगा। क्योंकि मेरे पति के देश में साथ जलने की (सती होने की) प्रथा है ॥ ३ ॥

राजस्थानी भाषा

जितना महान यह प्रान्त है और जितनी अधिक इसकी ख्याति है उसी के अनुरूप अत्युन्नत और उच्चकोटि का इसका साहित्य भी है। यह साहित्य राजस्थानी भाषा में है जो आर्य भाषा की एक शाखा है। इस समय यह लगभग सारे राजस्थान एवं मालवा प्रान्त की भाषा है और मध्यप्रान्त सिंध तथा पंजाब के भी कुछ भागों में बोली जाती है। यह करीब दो करोड़ मनुष्यों की मातृभाषा है।

इसके पूर्व में ब्रजभाषा और बुंदेली, दक्षिण में बुंदेली, मराठी तथ गुजराती, पश्चिम में सिंधी तथा हिंदकी (लहँदा) और उत्तर में हिन्दकी, पंजाबी और बाँगडू भाषाओं का प्रचार है।

भाषा-शास्त्रियों का अनुमान है कि मध्य एशिया को छोड़कर जिस समय हमारे पूर्वपुरुष, प्राचीन आर्य, पंजाब में आकर बसे थे और उस समय जो भाषा वे बोलते थे उसके एक रूप से वैदिक संस्कृत की उत्पत्ति हुई। इस वैदिक संस्कृत का ही परिवर्तित साहित्यिक रूप पीछे से संस्कृत कहलाया। और जन साधारण की बोलचाल की भाषाएँ प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुईं। कालक्रमानुसार इन प्राकृतों को विद्वानों ने दो भागों में विभक्त किया है, पहली प्राकृतें और दूसरी प्राकृतें। पहली प्राकृतों का प्रतिनिधित्व पाली और अर्धमागधी करती हैं जिनमें बौद्ध, और जैनों के ग्रन्थ लिखे गए थे। दूसरी प्राकृतों में शौरसेनी, मागधी और महाराष्ट्री मुख्य थीं। धीरे-धीरे इन प्राकृतों का भी साहित्यिक संस्कार होने लगा और ये भी क्लासिक भाषाएँ बन गईं। परन्तु जन-साधारण की भाषा का जो प्रवाह इनके साथ-साथ अबाध रूप से चल रहा था वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और कालांतर में एक नवीन भाषा के रूप में आविर्भूत होकर अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपभ्रंश के कई भेद-उपभेदों का पता चलता है। प्राकृतचंद्रिका में इसके सत्ताईस भेद गिनाये गये हैं:—

ब्राचड़ो लाटवैदर्भावुपनागरनागरौ।
बार्वरावन्त्यपाञ्चालटाक्कमालवकैकयाः॥
गौडोढ्रहैवपाश्चात्यपाण्ड्यकौन्तलसैंहलाः।
कालिङ्ग्यप्राच्यकर्णाटकाञ्च्यद्राविड़गौर्जराः॥
आभीरो मध्यदेशीयः सूक्ष्मभेदव्यवस्थिताः।
सप्तविंशत्यपभ्रंशाः वैतालादिप्रभेदतः॥

विक्रम की छठी - सातवीं शताब्दी से लेकर- दशवीं-ग्यारहवीं शताब्दी तक इन अपभ्रंशों का देश के भिन्न-भिन्न भागों में प्रचार रहा। परन्तु बाद में इनकी भी वही गति हुई जो पूर्वोक्त प्राकृतों की हुई थी। अर्थात् इनमें भी साहित्य-रचना होने लगी और विद्वानों ने इन्हें भी व्याकरण के अस्वाभाविक नियमों से बाँधना शुरू कर दिया जिससे इनके दो रूप हो गये। एक रूप तो वह था जिसमें साहित्य-रचना होती थी और दूसरा वह रूप जिसका सर्वसाधारण में प्रचार था। प्रथम रूप तो व्याकरण के नियमों से बँधकर स्थिर हो गया पर दूसरा बराबर विकसित होता रहा और जिस तरह प्राकृतें पहले अपभ्रंशों में परिवर्तित हो गई थीं उसी तरह अपभ्रंश भी आधुनिक आर्यभाषाओं में रूपान्तरित हो गये।

पूर्व-लिखित सत्ताईस अपभ्रंशों में से नागर अपभ्रंश का प्रचार-क्षेत्र डा० ग्रियर्सन ने गुजरात-पश्चिमी राजस्थान होना अनुमानित किया है। इसके विपरीत डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस क्षेत्र की अपभ्रंश को सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम दिया है[२]। परंतु ये दोनों ही नाम अस्पष्ट हैं। नागर अपभ्रंश से अभिप्राय नागर जाति की अपभ्रंश से है या नागरिकों की अपभ्रंश से, यह साफ नहीं है। और सौराष्ट्री अपभ्रंश नाम कुछ संकीर्ण है। इससे इसका दायरा केवल सौराष्ट्र (काठियावाड़) ही तक सीमित होना सूचित होता है। हमारे खयाल से श्री कन्हैयालाल-माणिकलाल मुंशी का रखा हुआ नाम गुर्जरी अपभ्रंश अर्थात् गुर्जर देश की अपभ्रंश अधिक सार्थक है[3]। इस नाम से इसके वास्तविक क्षेत्र का अंदाजा हो जाता है। क्योंकि प्राचीन समय में गुर्जर देश में आधुनिक गुजरात और आधुनिक राजस्थान दोनों के कुछ अंश सम्मिलित थे जहाँ यह बोली जाती थी। इसी गुर्जरी अपभ्रंश से राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति हुई जिसका एक रूप आगे जाकर डिंगल नाम से विख्यात हुआ।

नीचे के वंश-वृक्ष से उपरोक्त बातें और भी स्पष्ट हो जायँगी।
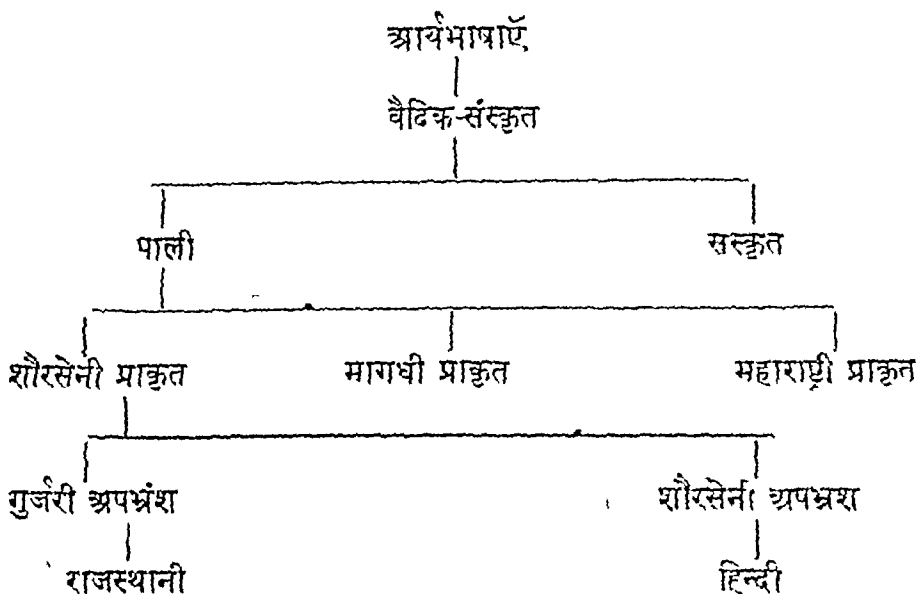
किस निश्चित समय मे राजस्थानी का प्रादुर्भाव हुआ, कहना कठिन है। परंतु अनुमान होता है कि कोई ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अपभ्रंश से पृथक् होकर इसने स्वतत्र भाषा के रूप मे विकसित होना प्रारंभ किया होगा।

राजस्थानी भाषा के अन्तर्गत कई बोलियाँ है जिनमे परस्पर विशेष अतर नही है। सिर्फ भिन्न-भिन्न प्रदेशों में बोली जाने के कारण इनके भिन्न-भिन्न नाम पड गये हैं। मुख्य बोलियाँ पाँच हैं—मारवाडी, ढूंढाडी, माळवी, मेवाती और वागड़ी।

मारवाड़ी

मारवाड़ी का प्राचीन नाम मरुभाषा है। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा सिरोही राज्यों में प्रचलित है, और अजमेर-मेरवाड़ा एव किशनगढ़ तथा पालणपुर के कुछ भागो, जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश, सिंध प्रान्त के थोडे से अश और पजाब के दक्षिण में भी बोली जाती है। मारवाडी का विशुद्ध रूप जोधपुर और उसके आसपास के स्थानों में देखने में आता है। यह एक ओजगुण विशिष्ट भाषा है। इसका साहित्य भी बहुत बढा-चढा है। इसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द विशेष मिलते हैं। कुछ अर्बी-फारसी के शब्द भी सम्मिलित हो गये हैं। मारवाड़ी की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। जैसे, छदों में सोरठा छद और रागों में माँड राग जितना अच्छा इस भाषा में खिलता

है भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा में उतना अच्छा नहीं खिलता। मारवाड़ी गद्य और पद्य दोनों के नमूने देखिए—

(क) एक कजूस कनै थोड़ो-सो धन हो। उणनै रोजीना इण वात रो डर रैवतो कै समार रा सगळा चोर अर डाकू मारा ही धन माथै निजर गडोयोड़ा है। ऐडी नहीं हुवै कै वै कदेई इनै लूट ले। वो आपरा धन नै बचावण वास्ते आपरे कनै जो माल-मत्तो हो सो वेच 'र एक सोना री ईंट मोल लीवी और उणनै घर में एक ओळा री जगा गाड दी। परत इत्तो करणा पर भी ऊँ रो मन धापियो नहीं जिण सूं वो रोजीना उठै जाय 'र देख लेवतो कै कोई ईंट ले'र तो नहीं गयो है। उणनै रोजीना उठै जावतो देख उण रा नौकर ने की भैम हुयो। वो मौको देख एक दिन उठै गयो और जमीन नै खोद'र ईंट काड ले गयो। कजूस आप री रोजीना री विळियाँ जठै ईंट गाडियोड़ी ही उठै गयो तो देखियो कै ईंट तो कोई चोर'र ले गयो। जरा उणनैं बडो सोच हुवो और गैला ज्यूं जोर-जोर सूं रोवण लागो। उणनैं इण तरह रोवतो-रींखतो सुण कोई पाड़ोसी ऊँरै कनै आयो और दुख रो कारण पूछियो। जद वो पाडोसी उणनै एक भाटो दे 'र कैयो—"भाई! अवै रो मती अर औ भाटो इणी जगा गाड दे। अर मन मे समझ ले कै सोना री ईंट ही गडियोडी है। क्यूं कै तूं तो सोना री ईंट ऊँ फायदो उठावतो नहीं हो जिण सूं थारे भावै तो सोना री ईंट अर भाटो मरीसा हीज है।

धन रो उपयोग नहीं करण सूं धन रो हूवणो अर नहीं हूवणो बराबर हीज है[४]।

---

४ एक कजूस के पास थोड़ा-सा धन था। उसे हमेशा डर लगा रहता था कि ससार भर के सारे चोर और डाकू मेरे ही धन पर नजर लगाये है, न मालूम कब वे लूट लेंगे। अपने धन को विपत्ति मे बचाने के लिए अपना सब कुछ बेच-बांचकर उसने सोने की एक ईंट खरीदी। उस ईंट को उसने घर के एक गुप्त स्थान में गाड़ रखा। परन्तु इतने पर भी सन्तुष्ट न होकर वह रोज उस स्थान पर जाकर देखता कि कोई सोने की ईंट को चुरा तो नहीं ले गया। उसको इस प्रकार रोज-रोज एक निर्दिष्ट स्थान पर जाते देखकर उसके एक नौकर को कुछ सन्देह हुआ। वह अवसर पाकर एक रोज उसी स्थान पर गया और खोद कर सोने की ईंट निकाल ले गया। कजूस अपने नियमित समय पर जब उस स्थान पर पहुँचा जहा ईंट छिपी हुई थी तो देखा कि ईंट को कोई चुरा ले गया है। तब रज के मारे पागल-सा होकर वह बडे जोर-जोर से रोने चिल्लाने लगा। उसका यह रोना-

(ख) दासी, कण विलमायौ ए, अब तक नहीं आयौ रावत थारो
बागाँ में घूमण गयौ म्हारो रावतियौ सरदार
बागाँ माँयली कोयल म्हारो लियौ छै भँवर विलमाय
दासी ॥१॥

सैल करण सायबो गयौ हुय लीलो असवार
कै जगळ री मिरगल्याँ म्हारो लियौ छै स्याम विलमाय
दासी ॥२॥

सरवर न्हावण पीव गयौ साथीड़ाँ र साथ।
कै सरवर की मछळियाँ म्हारो लियौ छै भँवर विलमाय
दासी ॥३॥

चढ चढ दासी मेडियाँ झाँक झरोखाँ माँय
जे तनै दीसे आवतौ म्हारो मद छकियौ स्याम
दासी ॥४॥

लीली घोड़ी हाँसली अलबेलौ असवार
कड्याँ कटारी वाँकड़ी सोरठडी तरवार
दासी[५] ॥५॥

मारवाड़ी की एक उपबोली मेवाड़ी है जो मेवाड़ राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग को छोड़कर सारे मेवाड़ राज्य और उसके निकटवर्ती प्रदेशों के कुछ भागों में बोली जाती है। मेवाड़ी का विशुद्ध रूप मेवाड़ के गाँवों में देखने

चिल्लाना सुनकर एक पड़ोसी उसके पास आया और उसके दुःख का कारण पूछने लगा। अंत में उसने कंजूस को पत्थर का एक टुकड़ा देकर कहा—"भाई अब और रोओ-चिल्लाओ मत, यह पत्थर का टुकड़ा इसी जगह गाड़ दो और मन में समझ लो कि वह तुम्हारी सोने की ईंट ही गड़ी है। क्योंकि जब तुमने निश्चय कर लिया है कि उससे कोई लाभ न उठाओगे तब तुम्हारे लिए जैसी सोने की ईंट है वैसा ही पत्थर का टुकड़ा"।

धन का उपयोग न करने में धन का होना और न होना एक-सा है।

५ कण=किसी ने। रावत=बहादुर (पति)। मायली=भीतर का। भँवर=पति। विलमायौ=रिझा लिया। सैल=सैर। करण=करने को। सायबो=पति। लीलो=सफेद रंग का (घोड़ा)। मिरगल्या=पशु। स्याम=पति। न्हावण=स्नान करने को। हाँसली=हींसनेवाली। कड्याँ कटारी वाँकड़ी सोरठडी तरवार=कमर में बाँकी कटारी और सोरठ देश की बनी तलवार बँधी है।

में आता है जहाँ यह अपने असली रूप में प्रचलित है। शहरों में इस पर हिन्दी-उर्दू का रंग चढ़ गया है जिसकी वजह से यह बहुत कर्णकटु और अटपटी लगती है। मेवाड़ी में साहित्य भी है और साहित्यिक परंपराएं भी बहुत पुरानी हैं। चित्तौडगढ के कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में लिखा है कि महाराणा कुम्भा (स० १४६०-१५२५) ने चार नाटक बनाये जिनमें मेवाड़ी का भी प्रयोग किया गया था[६]। राजस्थानी की बोली में साहित्य-निर्माण का यह सब से पहला ऐतिहासिक उल्लेख है। मेवाडी का नमूना निम्न है—

एक मूजी तीरै थोड़ाक धन हो। वणी नै हमेसाँ भौ लाग्यौ रेतौ कै दुनियाँ मातर रा चोर और धाडेती म्हारा हीज धन ऊपरै आँख लगायाँ है। नी जाणै कदी वी लूटी लेला। वणी आपणा धन नै सकट ऊ बचावा रै वास्तै आपणौ हँगळोई वेच-खोचनै होना री एक ईंट मोले लीदी। वणी मूजी घर मे एक छानै री ठौडै गाड राखी। पण अतरा ऊँ ज सबर नी राख नै वो रोज वणी ठकाणौ जाइनै देखतौ कै कोई होना री ईंट नै चोरीनै तो नी ले गियो है। वणी नै अणी तरेऊ दन परत एक ठावी जगा जातो देख नै वडा एक चाकर नै कईक भैम पड्यौ। वो मौको देखनै एक दन वणी जगा गियो और खोदनै होना री ईंट ले ग्यो। मूजी आपणै रोजीना री वेळाँ जदी वठै पूगौ जठै ईंट गड़ी थकी ही तो देख्यौ कै ईंट नै कोई चोरी ले गियो है। तो दख रौ मारयौ वैंड्या ज्यू व्हे नै वो घणा जोर-जोर ऊँ रोवा-रीकवा लागो। वंडो यो रोवणो हामळ नै एक पाड़ोसी वणी तीरै आयो और वणी रा दखरी वजै पूछवा लागौ। आखर मे वणी मूजी नै भाटा रौ बटको देनै कियो-- "भाई! अबे रोवे-रीके मती। यो भाटा रौ बटको वणी ठकाणै गाड़ दे और मनमे समझ लै कै वा थारी होना री ईंट हीज गड़ी है। क्यू कै जदी थैं धार लीदी है कै वणी ऊ कई फायदो नी उठावेला तो थारै वास्तै जसी होना री ईंट है वस्यो ही भाटा रौ बटको।"

धन नै काम में नी लावा ऊं धन रौ व्हैणो और नी व्हैणो बरोबर है।

---

६ येनाकारि मुरारेसगतिरस प्रस्यन्दिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविंदके।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय—
वाणी गुम्फमय चतुष्टयमय सन्नाटकानां व्यधात्॥१५८

ढूंढाड़ी

ढूंढाड़ी जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश को छोड़ कर सारे जयपुर राज्य, लावा, किशनगढ़-टोंक के अधिकाश और अजमेर-मेरवाड़े के उत्तर-पूर्वी भाग मे बोली जाती है। इस पर गुजराती और मारवाड़ी दोनों का प्रभाव समान रूप से पाया जाता है। साहित्य की भाषा में ब्रजभाषा की भी कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ढूंढाड़ी में प्रचुर साहित्य है। सत दादू और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाएँ इसी भाषा मे हैं। यह साहित्य गद्य और पद्य दोनों में मिलता है। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी बाइबिल आदि अपने धर्म-ग्रन्थों के अनुवाद इस भाषा मे कर इसकी सवृद्धि की है। नमूने- --

(क) एम मूजी कनै थोडो-सो धन छो। ऊँ नै हर भगत यो ही डर लग्यो रहै छो क दुनिया भर का सगळा चोर-धाडेती म्हारा ही धन पर आँख गाड़ मेली छै। काइ ठीक कद आ'र लूट लेला। आपका धन नै ई आफत सैं बचावा कै ताँई वो एक उपाय करयो। आप को सारो टट्ठवारो बेचकर वो एक सोना की ईंट मोल ली। अर ऊँनै आपकी जगा मैं एक ओला मे राख दी। पण ई सैंभी ऊँको मन भरयो कोनै। वो रोजीना उट्ठे जा'र देख्यातो क सोना की ईंट नै कोइ चोर'रतो न ले गो। ऊँ नै रोजीना एक ही जगा जातो देखबासैं ऊँका नौकर न वैम होगो। एंक दिन वो भी उट्ठे ही गयो अर खोद'र सोना की ईंट निकाल लेगो। भगत पर जद मूजी उट्ठे गयो जट्ठे ईंट गड़ी छी तो ठीक पडीक ईंट नै तो कोई चोर'र लेगो। ई दुःख को मारयो वो गैलो-सो हो'र खूब जोर मे हाय बोड़ो करबा लाग्यो। ऊं को रोबौ सुण'र एक पाड़ोसी ऊँ कनै आयो पाछल दाय एक भाटो मूजी नै दे'र वो बोल्यो—"दादा! अब रोवै तो मतना ई भाटा का टुकडा नै ई जगा गाड़ दे और इनैही गड़ी हुई सोना की ईंट समझ ले। क्यों स जद तू मन मैं धार बैठ्यो छै क ऊँसै कोई फायदो नही उठाणो तो थार भावै जसी सोना री इंट उस्यो ही भाटा को टुकड़ो छै।"

धन नै काम मैं न ल्याग्र सैं धन को होवो न होवो इकसार छै।

(ख) पीया म्हाँका जी! थे चाल्या परदेश घराँ कद आवोला

ओ जी म्हाँका नाव!

गोरी म्हाँ की ए! आवाँ छठड़ै मास थानै तो तरसावॉला

ओ ए म्हाँ की नार!

पीया म्हाँका जी ! तरसे लीर बलाय पिहर उठ ज्यावाँला
ओ जी म्हाँका नाव !
गोरी म्हाँ की ए ! पीहरिया को लोग मसकरी गाळो छै
ओ ए म्हाँ की नार !
पीया म्हाँका जी ! नीची करल्याँ नाड़र काको ताऊ कहल्याँला
ओ जी म्हाँका नाव !
गोरी म्हाँ की ए ! भावज बोलै बोल हियौ भर आवै लो
ओ ए म्हाँ की नार !
पीया म्हाँका जी ! रुणझुण बहल जुपाय सासरियै उठ आवाँला
ओ जी म्हाँका नाव ![७]

ढूढाडी का जो रूप बूंदी-कोटे में प्रचलित है वह हाड़ोती नाम से प्रसिद्ध है। इसमें और ढूढाड़ी में नाम मात्र का अंतर है। शब्द-कोष कौर उच्चारण शैली में थोडी-सी भिन्नता है। हाडोती में कुछ ऐसे शब्द देखने में आते हैं जिनका सम्बन्ध किसी आर्य या सेमेटिक भाषा से स्थिर नहीं होता। उच्चारण-शैली में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो न तो संस्कृत और न अर्बी-फारसी में पाई जाती हैं। अनुमान होता है कि अतीत में किसी समय इस भाषा का हूण, गुर्जर अथवा अन्य किसी विदेशी जाति की भाषा से संपर्क रहा है और फल स्वरूप उसी के शब्द इसमें मिल गये हैं। इसमें लिखित साहित्य नहीं है। नमूना—

एक मूंजी के थोडी पूंजी छी। ऊँनै सदा डर लागबो करै छो क ससार भर का सारा चोर अर धाडैती म्हारा ही धन की आड़ी चोगता-झाँकता रहे छै, न जाणै कद आ'र वै लूट लैगा। ऊँनै अपणो धन आफत सूं बचावा वेई सूना की एक इंट मोल ली। अपणो सब कुछ बेच-खोज'र ऊँनै वा ईंट घर की एक गपताऊ ठोर मे गाड़ दी। पण अतना पै भी संतोस न पा'र ऊ रोजीना ऊं ठांग पै जा'र देखतो क कोई ऊं सूना की ईंट नै चोर'र तो नह ले गियो। ऊंनै अशा रोजीना एक ही ठोर पै जातो देख'र ऊँका एक चाकर कै कुछ वैम पड़ गियो। ऊ डाण देख'र एक दिन ऊं जाग पै गियो अर खोद'र सूना की ईंट नै काड ले गियो। मूजी जद अपणा ठीक ऊं ही बगत पै ऊं ठोर

७ नाव = नाह = पति । मसकरी गाळो = मसखरा । नाड = गर्दन । रुणझुण बहल जुपाय = रनझुन बजता हुआ रथ जुतवाकर ।

पै पूग्यो जठै सूना की ईंट घुसाड़ राखी छी तो देखी ए ईंट नै कोई चोर'र ले गियो। जद तो चंता की मारी उ गैल्यो सो हो'र बड़ा जोर सू रोवा-चल्ळावा लाग्यो। ऊँ को यो रोवो-वरळावो सुण'र एक पाड़ोसी ऊं के नखे आया, अर ऊं का दुख कै बेई पूछ्वा लाग्यो। आखर मं ऊंनैऊ करपण कै. ताई एक भाटा को टूकड़ो दे'र की—"भाया! अब जादा रोवै—चल्लावै मत। यो भाटा को टूकड़ो ई हीं ठाम पै गाड दै अर मन मं समझ लै क या थारी सूना की ईंट ही गड री छै। क्यूक जद तने या ही वच्यार ली छी कऊं सू काई फायदो न उठावणो तो थारै भावैं जमी सूना की ईंट छी उसो ही यो भाटा को टूकड़ो।"

धन नै काम मं न लेवै ना वन को होवो अर न होवो एक सारखो ही छै।

मालवी

माळवी समस्त मालवा-प्रान्त की भाषा है, और मेवाड़, मध्य-प्रान्त आदि के भी कुछ भागों में बोली जाती है। अपने सारे क्षेत्र में इसका प्रायः एक ही रूप देखने में आता है। इसमें मारवाड़ी और ढूंढाड़ी दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं। कहीं-कहीं मराठी का भी प्रभाव झलकता है। यह एक बहुत कर्णमधुर और कोमल भाषा है। विशेष कर स्त्रियों के मुँह से यह बहुत मीठी लगती है। मालवे के राजपूतों में इसका एक विशेष रूप प्रचलित है जो रांगडी कहलाता है। यह कुछ कर्कश है। माळवी में भी थोड़ा-सा साहित्य है। चन्द्रसखी, नटनागर आदि की रचनाओं में इसका कहीं-कहीं अच्छा रूप देखने में आता है। प्राचीन पट्टों-परवानों से भी इसके वास्तविक स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। नमूने—

(क) एक मूँजी रे कनै थोड़ो माल थो। वणी ने हदाई ओ डर लाग्यो रेतो-थो के आखी दुनिया रा चोर नै डाकू म्हाराज धन पर आँख्यों लगायाँ थका है, नी मालम कदी आई ने वी लूटी लेगा। वणे आपणा माल-मत्ता नै ईं कट कट ती बचावाने घर रा सब तागडा बेचा-बेची करी नै होना री एक ईंट मोल लीदी। वणी ईंट नै वींए घर री एक छाने री जगा में गाड़ी राखी। पण अतरा पर भी वींनै धीरप नी आई नै रोज वणी जगा पर जाई नै देखतो के कठै होना री वा ईंट तो कोई चोरी नै नीग्यो। वणी नै अणी तरे रोज-रोज एकज जगा पर जातो देखी ने वीरा एक नौकर ने कइंक भैम पड्यो। सोको देखी नै ऊ एक दन वणी जगा ग्यो और होना री ईंट खोदी नै काढ़ी

ग्यो। मूंजी जदी आपणी वंधी वगत वणी जगा पोन्यो जठै ईंट गड़ी थकी थी तो देख्यो कै ईंट नै कोई चोरी ग्यो है। पछै तो दुख रे मारे वेंडो वई नै ऊ घणा जोर-जोर ती हागड़ा पाडी पाडी नै रोवा लागो। वींगे रोवणो-रीकणो हुणी नै एक पाडोसी वी कनै आया नै ई दुख रो कारण पूछवा लागो। आखर वणो मूँजी नै भाटा रो एक टुकडो दई नै कीयो—"ए भई! अबे रो- मती। यो भाटा रो टुकडो वणीज जगा गाडी दे नै मन मे हमजी ले के या थारी होना री ईंट ज गडी थकी है। क्यू कै जदी थे यो थारी लीदो कै वणी ती कई फायदो नी उठावणो तो थारे मावते तो जमी वा हाना री ईंट थी वसोज यो भाटा रो टुकड़ो है।"

धन नै नी वापरै तो धन रो वेणो नी वेणो वरोवर है।

(ख) मिलता जाजो रे मुरारी था की सूरत ऊपर वारी।
जो थें मारो नाम नहीं जाणो मारो नाम वृषभानी।
सूरज सामी पोळ हमारी माणक चोक निशानी।
वृषभान घर दस दरवाजा नहीं चोड़े नहीं छाने।
मारे आगन पेड कदम को ऊपर कनक अटारी।
थें जावो काना धेनु चरावा मै जाऊँ जमुना पानी।
था के मारे प्रीत लगी है सारी दुनीया जानी।
चन्द्रसखी व्रजलाल कृष्ण छव हरी चरण वलहारी।
ऐसी प्रीत निभाजो काना जेसो दूध में पानी॥

मेवाती मेवाती अलवर-भरतपुर राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग और दिल्ली के दक्षिण में गुड़गाँव में बोली जाती है। इस भाषा-क्षेत्र के उत्तर में बाँगड़ू, पश्चिम में मारवाड़ी एव ढूढाड़ी, दक्षिण में डाँगी और पूर्व मे व्रजभाषा का प्रचार है। इस पर व्रजभाषा का प्रभाव बहुत अधिक देखने मे आता है। इसमें भी थोड़ा-सा साहित्य है। चरणदासी पथ के जन्मदाता सन्त चरणदास और उनकी दो शिष्याओं-दयावाई और सहजोबाई-की रचनाएँ इसी भाषा में हैं। परन्तु इस समय वह साहित्य अपने असली रूप में नहीं मिलता। मुद्रक-प्रकाशकों ने उसे बहुत भ्रष्ट कर रखा है। नमूने—

(क) एक माँखीचूस के पे कछु माल-मतो हो। वा लू सदा याई डर वणो रह हो कै सारी दुनियाँ का चोर और लूटणियाँ मेराई धन की टोह में हैं;

कहा थाह जाणै कब लूट लें। या सोच वा नै अपणा माल मत्ता लू बचाण की खातर घर को अट्टस कुट्टस बेच एक सोना की ईंट मोल ली। वा ईंट लू वानै घर का कूणा मे एक अबीड़ी ठौर मे गाड़ दी। पण वा पै वी वालू थ्यावस नाय आई। वा गेजीना वाई अबीड़ी ठौर पै जाकै देखो करै हो कै कोई सोना की ईंट लू चोर कै तो ना लेगो है। वा लू या तरै हर हमेस जातो देख वाई का नौकर लू कछु सुबो हुयो। उ टहलिया मौको पा एक दिना हुंई रै ठाण पै लूगो। और हूँ सु सोना की ईंट खोद अपणी आमेज मे करी। उ मॉखीचूस हुंई ठौर पै अपणा लाग्या बन्धा टैम पै पहुँचो तो कहा देखै है कै कोई ईंट लू चोर लेगो है। वा को या अमसोच कै मारे चित चिल्ला सूं उतर गो। उ भारी जोर जोर सू बिलख-बिलख कै रोण लगो। वा लू फूट-फूट कै रोतो सुण पोडोसिया नै वा सू रोण की बात पूछी। अखीर मे वानै वा मॉंखीचूस लू एक रोडो दे कै कही—"भाई! अब रोवै-पुकारै मत या भाटा का रोडा लू उई रै ठाण मैं गाड़ दै और जाण लै कै तेरी सोना की ईंट हुंई गड़ रही है। क्यूक जब तैनै या पुख्ता इरादो कर लियो है कै वा सू कोई फायदो उठाणो ई नायतो तो लू जिसी सोना की ईंट उसो भॉटा को रोड़ो"।

• धन को मौजू खरच न करण सूं धन को होणो न होणो बराबर है।

(ख) सुपना में छळ ली बन्दी आधी-सी रात
पिया मेरो चौपड को खिलारी रे!
तोड़ू तो मरोड़ू चरखा दे दूॅ तो मे आगं
चरखो मेरी छाती को जळावा रे!
छोटी सी मक्कोली जॉ मे छोटा छोटा बैल
छोटो सो बलम गढ वाळो रे!
खेलण लू खिदा मत सासू बणिया की कै लार
बणिया की नै रूकण सू बैलायो रे।
हाथन मे पछेली तो पै चूड़ी कैसे नॉय
दुनिया तो लू रांडड़ी बतावै रे।
काया पै तो मत कर बडी गरब गुमान
गरब ही रब नै गाळौ रे।
मोडी तो लूटादूं रुवाजे तेरे दरबार
बिछटो तो मिला दै बिणजारो रे[१]।

१.आधी-सी रात्रि में चौपड़ के खिलाडी मेरे प्रीतम ने मुझे स्वप्न में छल लिया। (सपने

डूंगरपुर और बाँसवाडा के सम्मिलित राज्यों का प्राचीन नाम वागड़ है। वहाँ की भाषा वागड़ी कहलाती है जो मेवाड के दक्षिणी भाग एवं सूंथ राज्य के उत्तरी भाग में भी बोली जाती है।[१०] वागडी पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक है। इसमे 'च' और 'छ' का उच्चारण प्राय 'स', और 'स' का प्रायः 'ह' होता है। इसमे भी कुछ साहित्य है जो अप्रकाशित है। वागडी के नमूने—

वागडी

(क) एक सामटा ने थोड़ोक धन हतो। अेने दाह्डी ई बीक लागी रेती के हेती जगत ना हंगरा सोर नै डाकू मागज धन ऊपर नजर राखी रया है। ने जारेँ कारे आवीनै ई लूटी लहे। अेणे आपडा धन नै आफत हाँ बचाववा ना हारु आपडो हॅगरो वेसी करी ने होनानी एक ईंट वेसाती लीदी। अेणी ईंट नै अेणे घरनी एक सानी जगा मये खोतरी घाली। अपण अटलो करवा उपरे राजी ने थई नै ई दाहडी अेणी जगा ऊपर जाइनै देकतो के कोई होना नी ईंट नै सारी तो नै लईग्यों है। अेने अेमज दाहड़ी दाहडी एकज जगा ऊपर जातो देकीनै ऐने एक नौकर नै कयंक शक थ्यो। ई मोको देकीनै एक दाडो अेणी जगा ऊपर ग्यो नै खोतरी नै होना नी ईंट काडी लई ग्यो। सामटो दाह्डी ना वजू जारे अेणी जगा ऊपर ग्यो ज्यँ ईंट हँपाड़ी हती। अेणे एँयँ जई नै देक्यो कै ईंट नै तो कोईक सोर सोरी लई ग्यो हे। तारे दुकनो मारयो गाडा हरको थई नै खूब जोर थकी रोवा ने डाडे करवा लाग्यो। अेनो ई रोवो नै ड़ाड़े करवो हामरी नै एक अेनो पाड़ाई अेने पायेँ आव्यो नै अेने दुक

में मैं अपना चर्खा कातने में व्यस्त थी। उसने छलने मे मेरे प्रीतम का साथ दिया)। हे छाती जलाने वाले चर्खे! मै क्यों न तुम्हे तोड-मरोडकर आग में दे दूँ? प्रियतम सपने मे छोटी-सी मझोली (यान) में बैठ कर आए। उसके छोटे-छोटे बैल थे और उसको चलाने वाला भी मेरा छोटा-सा बालम था। ऐसे छोटे-से प्रियतम को हे सास! बनिये की लड़की के साथ कर्णा खेलने को मत भेजना। वह उसे रुकावट देकर बहला लेगी। (सवेरे हाथ मे चूड़ियाँ न देख सास ने कहा) तेरे हाथो में केवल पछेली (गहना विशेष) ही कैसे रह गई। चूड़ियों का क्या हुआ? चूड़ियों के बिना दुनिया तुझे विधवा बताएगी। काया का गर्व मत कर। ईश्वर ने मेरा गर्व को गाल दिया है। (स्वप्न मे जिस प्रीतम ने छला था)। हे ख्वाजा साहब! उस बिछुड़े प्रियतम से मिला दे। मै तेरे दरबार म अन्धे पशु भेंट चढाऊँगी।

१०. डा० ग्रियर्सन ने वागडी को भीली नाम दिया है। परन्तु उनका दिया हुआ यह नाम असंगत है। कारण कि भीलों की कोई अलग निश्चित भाषा नहीं है। डूंगरपुर-बाँसवाडा मे जो भाषा आमतौर से बोली जाती है उसी का व्यवहार वहाँ के भील लोग भी करते हैं। सिर्फ उच्चारण आदि की थोड़ी-सी भिन्नता के कारण वह एक पृथक् भाषा प्रतीत होती है।

नो कारण पूस्योम । आकर यें अेणा सामटा नै अेक पाणा नो वडको आली ने क्यू कै—"भाई, हवे नके रोवा ने डाडे नके करो । आ पाणा नो वड़को अेणीज जगा ऊपर गाडी दो नै मन मये हमजी लो के ई तमारी होना नीज ईट गड़ेली है । केम के तमें नक्को करी लीठो हे के तमे अेणा थकी कयेए फायदो ने उठाव हो तारे तमारा हारु जेवी होना नी ईट हे अेवोज आ पाणा नो वडको हे"।

धन नै ने वेपरावा थकी वन,नो हो वो नै ने होवो बराबर ज हे ।

(ख) लका ते गढ सोनुं वापरेयुरे, के आव्यु वागडिये देसरे
मारी मारा सूँ मारूँ मन रस्यूं रे ।
केणे देख्यु ने केणे मूलव्युँ रे, केणे खरस्यें दाम रे,
मारी मारा सुँ मारूँ मन रस्युँ रे ।
जेठे देख्यु ने ससरे मूलव्यु रे, ओजी साहेबे खरस्यूं दाम रे,
मीरा मारा सुं मारूँ मन रस्यु रे ।
सोकसी नो बेटो मारो भाइळो रे ए वीरा मने सोनु तोली आळरे
मारी मारा सुँ मारुँ मन रस्युँ रे ।
सोनीड़ा रा बेटो मारो भाइलो रे, ए वीरा मने मारा घड़ी आल रे,
मारी मारा सुँ मारुँ मन रस्युँ रे ।
पद्धुआ रो बेटो मारो भाइलो रे,ए वीरा मने मारा गाँठी आल रे,
मारी मारा सुँ मारूँ मन रस्युँ रे ।
जासीडा नो बेटो मारो भाइलो रे ए वीरा मने मूरत जोई आल रे,
मारी मारा सुँ मारुँ मन रस्युँ रे[११]।

लिपि राज्यस्थानी लिपि अधिकतर देवनागरी लिपि से मिलती है । कुछ अक्षरों की बनावट में अंतर अवश्य है पर यह अन्तर भी अब दिन-दिन मिटता जा रहा है ।

---

११ मेरा मन माला से लगा हुआ है । अतः इस माला के लिए लका से वागड देश में सोना आया है ॥१॥ इस सोने को किसने देखा, किसने मोलाया और किसने दाम खर्च कर खरीदा ॥२॥ जेठ ने देखा, ससुर ने मोलाया और पति ने दाम खर्चकर खरीदा ॥३॥ चौकसी (सोने की परीक्षा करने वाला) का पुत्र मेरा भाई है । अतएव हे भाई ! तू मुझे सोना तोल दे ॥४॥ सुनार का पुत्र मेरा भाई है । अत. हे भाई ! तू मुझे सोना घड दे ॥५॥ पटवे का पुत्र मेरा भाई है ! अतः हे भाई तू मुझे माला गाँठ दे ॥६॥ ज्योतिषी का पुत्र मेरा भाई है । अतः हे भाई ! तू मुझे (माला पहिनने का) महूरत देख दे ॥७॥

यह लिपि लकीर खींचकर घसीट रूप में लिखी जाती है। राजकीय अदालतों आदि मे इस लिपि का प्रायः विशुद्ध प्रयोग होता है। परन्तु महाजन लोग अपने वही-खातों में इसका शुद्ध प्रयोग नहीं करते। उनकी इस अशुद्ध लिपि-शैली का नाम ही जुदा पड़ गया है। इसे महाजनी अथवा वाणियावटी लिपि कहते हैं। और इसके अक्षर 'मुड़िया' कहलाते है। इस में मात्राऍ नहीं रहतीं। यह एक तरह शॉर्टहैंड का काम देती है।

कहा जाता है कि इन मुड़िया अक्षरों के आविष्कर्ता मुगल सम्राट् अकबर के अर्थ-सचिव राजा टोडरमल थे[12]। ऐसा कहनेवाले अपने कथन की पुष्टि मे निम्नलिखित दोहा भी उद्धृत करते हैं जिसे वे खुद टोडरमल का बनाया हुआ बतलाते हैं—

देवनागरी अति कठिन, स्वर व्यंजन व्यवहार।
ताते जग के हित सुगम, मुड़िया कियो प्रचार॥

डिंगल

कहा जा चुका है कि कि राजस्थानी का एक रूप डिंगल नाम से भी प्रसिद्ध है। यह नाम पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाड़ी के साहित्यिक रूप को दिया गया है और बहुत प्राचीन नहीं है। कोई उन्नीसवीं शताब्दी से यह व्यवहार मे आने लगा है, और जोधपुर के कविराजा बाँकीदास के 'कुकवि बत्तीसी' नामक ग्रंथ मे, जो सं० १८७१ मे लिखा गया था, इसका सर्वप्रथम प्रयोग देखा जाता है[13]—

डींगलिया मिलियॉ करै, पिंगल तणौ प्रकास।
संसकृती ह्वै कपट सज, पिंगल पढियाँ पास॥

बाँकीदास के बाद उनके भाई या भतीजे बुधाजी ने अपने 'दुवावेत' मे दो तीन जगह इस शब्द का प्रयोग किया है—

मत्र ग्रंथ समेत गीता कॅ पिछाँणै।
डींगल का तो क्या संस्कृत भी जॉणै॥१५५॥

---

१२ बालचंद मोदी देश के इतिहास मे मारवाड़ी जाति का स्थान, पृ० ७३०

१३. बाँकीदास ग्रन्थावली भाग दूसरा, पृ० ८५

और भी साँदुओं मैं चैन अरु पीथ।
डींगल मैं खूब गजब जस का गीत ॥१५६॥
और भी आसीयू मै कवि वक।
डींगळ पींगळ संस्कृत फारसी मैं निसक ॥१५७॥

तब से बराबर इस नाम का प्रयोग होता आ रहा है और लोग मारवाड़ी भाषा-कविता के लिए इसी शब्द का प्रयोग करते विशेष देखे गये हैं।

कुछ लोग डिंगल को मारवाड़ी से भिन्न चारणों की एक अलग ही भाषा बतलाते हैं। परन्तु उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है। वस्तुतः डिंगल और मारवाड़ी में उतना ही अंतर है जितना साहित्यिक हिन्दी और बोलचाल की हिन्दी में है।

मारवाड़ी का डिंगल नाम कैसे और क्यों पड़ा, इन प्रश्नों पर बड़ा विवाद है और अपनी-अपनी पहुँच तथा बुद्धि के अनुसार लोगों ने भिन्न-भिन्न मत दिये हैं। प्रधान-प्रधान मत और उनकी समीक्षाएँ नीचे दी जाती हैं।

पहला मत—डिंगल शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था। ब्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी। पर डिंगल इस सम्बध मे स्वतत्र थी। इसलिये इसका यह नाम पडा।[१४]—डा० एल० पी० टैसीटरी

समीक्षा—डा० टैसीटरी ने डिंगल को गँवारू का द्योतक मान कर अपने मत का प्रतिपादन किया है। परन्तु उनकी यह मान्यता अयुक्त है। कारण कि प्रारभ में डिंगल गँवारो की भाषा नही, बल्कि पढ़े-लिखे चारण-भाटों की भाषा थी, जिनका और जिनकी कृतियों का राजदरबारों में बड़ा सम्मान हुआ करता था। और, पढ़े-लिखे लोगों तथा राजदरबार की भाषा कभी गँवारू नहीं कही जा सकती। दूसरे, उनका यह कहाना भी ठीक नहीं है कि डिंगल-भाषा अनियमित और ब्रजभाषा के मुकाबले मे अमार्जित थी। अर्थात् साहित्य-शास्त्र के नियमों से मुक्त थी। डिंगल के प्राचीन ग्रथों तथा फुटकर गीतादि से स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण की विशुद्धता के साथ-साथ छंद, रस, अलकार आदि काव्यागों का डिंगल कविता में भी उतना

---

१४. Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, Vol X, p. 376

ही ध्यान रखा जाता था, जितना ब्रजभाषा की कविता में। हाँ, शब्दों की तोड़-मरोड़ ब्रजभाषा की अपेक्षा डिंगल में अवश्य कुछ अधिक पाई जाती है, पर इसीलिए उसे गँवारू कह बैठना हमारे खयाल से युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता है।

दूसरा मत—प्रारम्भ में इसका नाम डगळ था, पर बाद में पिंगल शब्द के साथ तुक मिलाने के लिये डिंगल कर दिया गया। डिंगल किसी भाषा का नाम नहीं है। कविता-शैली का नाम है।[15]—हरप्रसाद-शास्त्री

समीक्षा—शास्त्री-जी ने डिंगल शब्द की व्युत्पत्ति डगळ से बतलाई है और अपने मत के समर्थन में एक प्राचीन छंद का निम्नलिखित थोड़ा-सा अंश भी उद्धृत किया है जो उन्हें जोधपुर के कविराजा मुरारिदान द्वारा प्राप्त हुआ था। इस छंद का रचना-काल शास्त्रीजी ने चौदहवीं शताब्दी बतलाया है—

> दीसे जंगल डगल जेथ जल बगल चाटे।
> अनहुता गल दिये गला हुता गल काटे॥

ज्ञात होता है, यह पूरा छंद शास्त्रीजी के देखने में नहीं आया। इसका अर्थ भी उन्होंने नहीं दिया। केवल यही कहकर छोड़ दिया है कि 'इससे स्पष्ट है कि जंगल देश अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी'। यदि शास्त्रीजी को पूरा छंद पढ़ने को मिल जाता तो डिंगल की उत्पत्ति डगळ से बतलाने की भूल उनसे न हुई होती। क्योंकि इसमें भाषा का कहीं जिक्र ही नहीं है। न यह चौदहवीं शताब्दी का लिखा हुआ है। यह अँल्लूजी चारण का लिखा हुआ है जो १७ वीं शताब्दी में हुए हैं। इस में ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता का बखान किया गया है। पूरा छप्पय विशुद्ध रूप में यहाँ दिया जाता है—

> दीसै जंगळ-डगळ जेथ जळ बगलां चाढै।
> अणहूंतां गळ दियै, गळा हूंतां गळ काढै॥
> मच्छगळागळ माँहि, ग्वाळ ह्वै गळी दिखाळै।
> गळी डाळ फळ गजै, गजी डाळाँ फळ गाळै॥

---

[15] Preliminary Report on the Operation in search of Mss of Bardic Chronicles, p 15.

नगळै असुर सुर नाग नर, आपण चै कुळ ऊधरै।
अनत रे हाथ मगळ-अमगळ, कई भगळ विद्या करै[१६]

इससे स्पष्ट है कि डिंगल का डगळ से कोई सबंध नही है। आगे शास्त्री जी ने डिंगल को एक भाषा नहीं, बल्कि काव्य की एक शैली मात्र माना है। परन्तु यह भी उनकी स्पष्ट गलती है। डिंगल एक बहुत उन्नत भाषा है जिसका पृथक् व्याकरण, पृथक् छन्द-शास्त्र एव पृथक् काव्य-परिपाटी है और जो हजारो शब्द-मुहावरों से समृद्ध है। एक समय था जब यह सारे राजस्थान की साहित्यिक भाषा थी।

तीसरा मत — डिंगल मे 'ड' वर्ण बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि यह डिंगल की एक विशेता हो गई है। 'ड' वर्ण की इस प्रधानता को ध्यान मे रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रखा गया है। जिस प्रकार बिहारी लकार प्रधान भाषा है उसी तरह डिंगल भी डकार प्रधान भाषा है।[१७]—गजराज ओझा

समीक्षा—यह मत भी निराधार है। डिंगल के दो चार पद्यो मे कहीं 'ड वर्ण की अधिकता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी बुनियाद पर इसका डिंगल नाम पड़ने की क्लिष्ट कल्पना कर लेना सिवा तर्कदोष के और कुछ नही है। ससार में अनेक भाषाएं प्रचलित हैं। परन्तु किसी खास वर्ण की प्रधानता के कारण किसी भाषा का कोई नाम रखा गया हो ऐसा अभी तक सुनने मे नहीं आया। बिहारी मे लकार की प्रधानता शायद हो। पर इससे क्या हुआ? इसका प्रभाव उसके नामकरण पर तो कुछ नहीं पड़ा। कहलाती तो वह 'बिहारी' ही है। दूसरी आपत्ति इस मत को स्वीकार कर लेने मे यह है कि हमे मान लेना पड़ता है कि पिंगल के साम्य पर डिंगल शब्द का निर्माण हुआ, जिसका कोई प्रमाण नहीं है।

---

१६ जहा उजाड और मिट्टी के ढेले दिखाई देते है वहा चारों ओर बगलो तक पानी चढ आता है। जिनके पास भोजन नहीं है उनको वह भोजन देता है और जिनके पास भोजन है उनके गले म भोजन निकाल लेता है। अराजकता के समय वह ग्वाला बनकर मार्ग दिखाता है। वह गली हुई डालियों पर फल लगाता है और जिन डालियों पर फल लगे हुए होते है उनको गला देता है। वह असुर, सुर, नाग और नर को निगल जाता है और अपने कुल अर्थात भक्त समुदाय को बचा लेता है। मगल और अमगल ईश्वर के हाथ है। वह अनेक इन्द्रजालिक क्रियाएँ करता रहता है।

१७ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग, १४, पृ० १००-१०,

चौथा मत—डिंगल शब्द डिम+गळ से बना है। डिम का अर्थ डमरु की ध्वनि और 'गळ' का गला होता है। डमरु की ध्वनि रणचंडी का आह्वान करती है तथा वह वीरों को उत्साहित करनेवाली है। डमरु वीर रस के देवता महादेव का बाजा है। गले से जो कविता निकलकर डिम्—डिम् की तरह वीरों के हृदय को उत्साह से भरदे उसी को डिंगल कहते हैं। डिंगल भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है। इसलिए वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध हुई[१८]। —**पुरुषोत्तमदास स्वामी**

समीक्षा—महादेव को वीर रस का देवता और डमरू की ध्वनि को उत्साह वर्धक मानकर इस मत की कल्पना की गई है। पर न तो महादेव वीर रस के देवता हैं, न डमरु की ध्वनि कहीं उत्साह-वर्धक मानी गई है। वीर रस के देवता महादेव नहीं, इन्द्र हैं। महादेव रौद्र रस के अधिष्ठाता हैं। फिर डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साह- वर्धक और गले से निकली हुई कविता का गठबंधन तो बिलकुल युक्ति शून्य और हास्यास्पद है। अतएव इस मत का निराधार होना स्पष्ट सिद्ध है।

पाँचवाँ मत—डिंगल के कवि पिंगल को पांगळी (पंगु) भाषा मानते हैं और पिंगल के मुकाबले में डिंगल को उडनेवाली भाषा कहते हैं। क्योंकि पिंगल की अपेक्षा डिंगल के व्याकरण, छंदशास्त्र आदि के नियम अधिक सुगम हैं और कवि की इच्छानुसार शब्दों का मनमाना प्रयोग करने की सुविधा भी इस में बहुत है। डगळ शब्द से जो डिंगल भाषा की उक्त विशेषताओं का सूचक है डिंगल शब्द बना है। डग=पख। ल= लिये हुए। डगल=पख लिये हुए =पखवाली=उडनेवाली=स्वतंत्रता से चलनेवाली अर्थात् सुगमता से काम में आनेवाली।[१९]—उदयराज

समीक्षा—डिंगल भाषा के व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि के नियमों को पिंगल के व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि के नियमों से अधिक सरल बतलाकर इस मत की सार्थकता सिद्ध करने की कोशिश की गई है। परन्तु वस्तु-स्थिति दूसरी ही है। बिलकुल इसके विपरीत है। सच तो यह है कि डिंगल-व्याकरण और छंद-शास्त्र आदि के नियम पिंगल व्याकरण और छन्दशास्त्र आदि के नियमों से अधिक सरल नहीं बल्कि अधिक जटिल हैं। साथ ही संख्या में

---

१८. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, पृ० ३७५

१९. क्षात्र-धर्म-संदेश, वर्ष १, अंक ६-७, पृ० १८

भी ज्यादा हैं। उदाहरण के लिए छंदों ही को लीजिए। पिंगल में जितने छन्द हैं उतने तो डिंगल में हैं ही। इनके अलावा गीत जाति के ६४ छन्द और भी हैं जिनका पिंगल में कहीं पता नहीं है। जैसे—पालवणी, भाषड़ी आदि। इसके सिवा डिंगल में वैणसगाई का नियम ऐसा कठोर है कि जिसके सामने पिंगल काव्य के सब नियम-बंधन मिलकर भी कुछ नहीं के बराबर है। डिंगल के कवि अपने काव्य-ग्रन्थ आदि इसलिए इस भाषा में नहीं लिखते थे कि व्याकरण, छंद आदि की दृष्टि से यह पिंगल से अधिक सुगम थी, बल्कि इसलिए लिखते थे कि यह उनके प्रदेश की भाषा थी। यदि डिंगल वास्तव में पिंगल से सरल होती तो राजस्थान से बाहर के पिंगल के कवि भी अवश्य इस भाषा में काव्य-रचना करते। परन्तु किसी ख्यातनामा कवि ने ऐसा नहीं किया। आगे 'डगळ' से डिंगल की व्युत्पत्ति बतलाई गई है जो भाषाशास्त्र की दृष्टि से अग्राह्य है। भाषाशास्त्रानुसार किसी शब्द में मात्रा और अनुस्वार दोनों की वृद्धि एक साथ नहीं होती। इनका लोप अवश्य होता है। जैसे, डिंगल अथवा डींगळ का डगळ तो हो सकता है पर डगळ का डिंगल या डींगळ नहीं हो सकता। अतः यह मत भी आधार-शून्य एवं खींचातानी का है और भाषाशास्त्र के सर्वसम्मत सिद्धान्तों के विरुद्ध भी है।

इनके अतिरिक्त दो एक मत और भी राजस्थान में प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए कुछ लोग इसे 'डिंभ+गळ' से कुछ 'डिग्गी+गळ' से और कुछ 'डॉग' से बना हुआ बतलाते हैं। स्वर्गीय पंडित रामकरणजी आसोपा और ठाकुर किशोर सिंहजी बारहठ ने इसकी उत्पत्ति क्रमश: 'डगि' और 'डीङ' धातुओं से बतलाई है। डा० ग्रियर्सन और डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि जो लोग ब्रज-भाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी, और इससे भेद करने के लिए मारवाड़ी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढ़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा है। परन्तु सार की बात इनमें भी कुछ नजर नहीं आती। इसलिए इनके विषय में यहाँ कुछ कहना अपना और पाठकों का समय नष्ट करना है।

यथार्थतः 'डिंगल' शब्द डींगळ का परिवर्तित रूप है। प्रारम्भ में जिस समय मारवाड़ी के लिए इस शब्द का प्रयोग होना शुरू हुआ उस समय यह 'डींगळ' ही बोला और लिखा जाता था। बाद में धीरे-धीरे 'डिंगल' हो गया जिसका मूल कारण डा० ग्रियर्सन आदि अंग्रेज लेखक हैं। 'डिंगल' शब्द के उच्चारण से अपरिचित होने के कारण इन्होंने 'डिंगल' और 'डींगळ' के उच्चारण में कोई भेद नहीं किया। और अपने ग्रंथों में दोनों की हिज्जः एक ही तरह से लिखी,

Pingala और Dingala। Pingala का उच्चारण हिन्दीवाले 'पिंगल' करते आ रहे थे। इसीलिए यह समझकर कि 'डींगळ' भी इसी तरह बोला जाता होगा उन्होंने इसे 'डिंगल' बोलना और लिखना शुरू कर दिया। राजस्थान के पढ़े-लिखे लोगों ने इनका अनुकरण किया और अब यह शब्द इसी रूप में चल पड़ा है। परन्तु राजस्थान के वृद्ध राजपूत-चारणों में, जिनमें डिंगल साहित्य का विशेष आदर और प्रचार है, इसका शुद्ध रूप आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है। वे लोग इसका उच्चारण 'डिंगल' कभी नहीं करते, 'डींगळ' ही करते हैं।

यह एक अनुकरणात्मक शब्द है जो शीतल, बोझल, धूमल आदि शब्दों के अनुकरण पर डिंगल साहित्य में वर्णित अत्युक्ति-पूर्ण[20] वृत्तों को ध्यान में रखकर उसकी इस विशेषता के द्योतनार्थ गढ़ लिया गया है। इसकी उत्पत्ति 'डींग' शब्द के साथ 'ल' प्रत्यय जोड़ने से हुई है। और इसका अर्थ है, डींग से युक्त अर्थात् अतिरंजना-पूर्ण। इस तरह शब्द के साथ ल-प्रत्यय जोड़कर बनाये हुए कई शब्द और भी डिंगल भाषा में देखने में आते हैं। जैसे—

अकबरिये इक बार, दागळ की सारी दुनी।
अणदागळ असवार, चेटक राण प्रतापसी[21] ॥१॥

—विरुदछहत्तरी,

---

[20] In fact, generally speaking, there is probably no bardic literature in any part of the world, in which truth is so marked by fiction or so disfigured by hyperboles, as in the bardic literature of Rajputana In the magniloquent strains of a charan, everything takes a gigantic form, as if he was seeing the world through a magnifying glass every skirmish becomes a Mahabharata, every little hamlet a Lanka, every warrior a giant who with his arms upholds the sky—Dr L P Tessitori (Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, Vol. XIII 1917, p. 228)

[21] अकबर ने एक ही बार में सारी दुनिया को (दागल) कलंकयुक्त अथवा दागदार बना दिया। सिर्फ चेटक घोड़े का असवार राणा प्रतापसिंह (अणदागल) बिना दागवाला है।

काटळ आवध मुझ कर, मन मदाइणी अन्न।
आवध राखे ऊजळा, मैला ज्यारा मन्न[२२] ॥२॥
—कायरबावनी

बोलचाल की मारवाड़ी की अपेक्षा यह साहित्यिक भाषा डिंगल समझने में कुछ कठिन थी और संस्कृत जैसी सुघटित भी न थी। अतः अत्युक्ति के भाव के अतिरिक्त दूरूहता एवं अनगढता के भी भाव इस 'डिंगल' शब्द के साथ लिपटे हुए हैं। परन्तु सामान्य जनता इसके ये तीनों अर्थ ग्रहण नहीं कर पाती। सिर्फ वही लोग कर पाते हैं जो सुशिक्षित हैं और जिनका डिंगल भाषा व साहित्य से गहरा परिचय है। आमजनता इससे केवल अनगढता का अर्थ लेती है। क्योंकि अन्य प्रसंगों में इस शब्द का प्रयोग वह बहुधा इसी अर्थ में करती है। जैसे—'या तो एक डींगळ बात है,' 'मैं तो डींगळ मनख हूँ' इत्यादि। अस्तु।

प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल

डा० टैसीटरी ने डिंगल भाषा के दो स्वरूप माने हैं (१) प्राचीन डिंगल और (२) अर्वाचीन डिंगल। लगभग तेरहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक की डिंगल को उन्होंने प्राचीन डिंगल और सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से लेकर आज तक की डिंगल को अर्वाचीन डिंगल बतलाया है[२३]। यह स्वरूप भेद और सीमा-निर्देश उन्होंने डिंगल में प्रयुक्त कुछ शब्दों की हिज्जे और उच्चारण संबंधी कुछ विशेषताओं के आधार पर किया है, व्याकरण के आधार पर नहीं। उनके कथनानुसार प्राचीन डिंगल और अर्वाचीन डिंगल में मुख्य भेद यह है कि प्राचीन डिंगल में जहाँ 'अइ' और 'अउ' का प्रयोग होता था वहाँ अर्वाचीन डिंगल में क्रमशः 'ऐ' और 'औ' का प्रयोग होता है। अपनी इस बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने संपादित प्राचीन डिंगल ग्रंथों तथा फुटकर गीतादि में सर्वत्र 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' और 'औ' के स्थान पर 'अउ' का प्रयोग किया है और माथै, चकवै जैतसी, राठौड, गैद्र, चित्तौड, फौज, चूंडौ, जोधौ

---

२२ (कोई कायर अपनी स्त्री से कहता है।) मेरे हाथ में (काटल) जंगदार शस्त्र है और मेरा मन आकाश-गंगा के समान स्वच्छ है। अपने शस्त्रों को उज्ज्वल अथवा मंजे हुए तो वे लोग रखते हैं जिनके मन मैले हैं।

२३. वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी री महेसदासौतरी, भूमिका पृ० ४।

इत्यादि शब्दो को क्रमशः माथड, चकवइ, जइतसी, गठउट, रउद्र, चितउड, चूटउ जोधउ इत्यादि कर के लिखा है।

भाषा एक परिवर्तन शील वस्तु है। अन्य वस्तुओ की तरह इसका रूप भी सर्वदा बदलता रहता है। इसलिए आज की और आज से २००-४०० वर्ष पहले की डिंगल मे अन्तर होना स्वाभाविक है। परन्तु जिस आधार पर डॉ० टैसीटरी ने प्राचीन और अर्वाचीन डिंगल का भेद खडा किया है वह उनका मनमाना और डिंगल की प्रकृति एव उच्चारण शैली के विपरीत है। पहली बात तो यह है कि डिंगल मे साहित्य-रचना का श्री गणेश ही पद्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे स०१४६० क बाद हुआ है और इसलिए प्राचीन डिंगल का चार सौ वर्षों का जो काल (स० १२५७ सं० १६५७) उन्होंने निश्चित किया है वही गलत है। इस काल को अधिक स अधिक दो सौ वर्षों का माना जा सकता है। दूसरे, शब्द-रचना का उनका उक्त तरीका भी ठीक नहीं है। सिर्फ डिंगल का प्राकृत-अपभ्रंश से संबंध बतलाने के लिए इसकी कल्पना कर ली गई है। इसमे सन्देह नहीं कि डिंगल अपभ्रंश के द्वारा प्राकृत से निकली है। परन्तु इस बात को सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि डिंगल मे प्राकृत-अपभ्रंश की सभी विशेषताओ के विद्यमान होने की क्लिष्ट कल्पना करली जाय। हिंदी की तरह डिंगल की भी एक बहुत बडी विशेषता यह है कि इसमे भी जो शब्द जिस तरह बोला जाता है ठीक उसी तरह लिखा भी जाता है। राजस्थान मे कोई भी जइतसी, राठउड़ आदि नहीं बोलता। न कोई लिखता है। सभी जेतसी, राठौड आदि लिखते और बोलते हैं। यदि कोई यह कहे कि इनका उच्चारण आज कल तो जइतसी, राठउड आदि नहीं होता, पर प्राचीन काल मे शायद होता हो तो इसका उत्तर यह है कि डिंगल के बहुत से प्राचीन ग्रंथ एव फुटकर पद्य मिल चुके हैं और उनमे जेतसी, राठौड़ आदि रूप ही लिखे मिलते हैं। यह दूसरी बात है कि प्राकृत-अपभ्रंश से मिलते जुलते प्राचीन रूपो का व्यवहार भी डिंगल के कवियों ने परम्परा के विचार से यत्र-तत्र किया हो। परंतु इन थोड़े से प्राचीन रूपों के आधार पर कोई व्यापक सिद्धान्त कदापि स्थिर नहीं किया जा सकता। यदि डॉ० टैसीटरी ने अपना यह शब्द विधान कुछ शब्दो तक ही सीमित रखा होता तब भी कुछ ठीक था। परन्तु उन्होंने तो चित्ताड, नागोर, जोधो इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाओ तक को चितउड़, नागउर, जोधउ इत्यादि बनाकर उनके प्रकृत रूप का विकृत कर

दिया है। अच्छा हुआ कि दो-एक व्यक्तियों को छोड़कर राजस्थान के विद्वानों में से किसी ने डा० टैसीटरी की चलाई हुई इस गलत पद्धति का अनुकरण नहीं किया और यह एक पोथियों ही की बात रह गई।

डिंगल भाषा से संबंधित जातियाँ

डिंगल भाषा का उदय और उत्थान होने से पूर्व राजस्थान के राज दरबारों में मुख्यतः संस्कृत भाषा का दौर-दौरा था। प्रत्येक राजसभा में संस्कृत के पंडित और कवि रहा करते थे जो राजकुमारों को शिक्षा देते और प्रशस्तियों आदि लिखते थे। परन्तु बाद में जब डिंगल अच्छी तरह से विकसित होकर प्रौढ़ावस्था को पहुँच गई तब इसका भी राजदरबारों में प्रवेश हुआ और संस्कृत के साथ-साथ इसे भी सम्मान मिलने लगा। डिंगल को राजसभाओं में पहुँचाने में मुख्य हाथ चारण आदि कुछ विशेष जातियों के लोगों का था जो राजा-महाराजाओं की प्रशंसा में ग्रंथ तथा फुटकर गीत आदि लिखते और उन्हें सुना-सुनाकर अपनी उदरपूर्ति करते थे। धीरे-धीरे डिंगल का प्रचार बढ़ा और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अन्य जातियों के लोग भी इसमें साहित्य-रचना करने लगे। परन्तु इन दूसरी जातियों का रचा हुआ डिंगल साहित्य बहुत थोड़ा है। वस्तुतः डिंगल भाषा साहित्य-सृजन का मुख्य श्रेय चारण[२४] जाति को और उसके बाद भाट, राव, मोतीसर और ढाढी जातियों को है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियाँ विश्व-विख्यात हैं और इनके विषय में अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। परन्तु चारण, भाट, राव आदि जातियों के बारे में लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ दीख पड़ता है। कोई-कोई तो चारण और भाट जाति को एक ही समझते हैं। इतना ही नहीं, जहाँ कहीं अंग्रेजी के 'बार्ड' शब्द का अनुवाद करना होता है वहाँ कुछ लोग इसका अनुवाद 'चारण' और कुछ 'भाट' करते हैं। वस्तुतः ये दोनों ही पर्याय गलत हैं। क्योंकि अंग्रेजी का 'बार्ड' शब्द जहाँ किसी जाति विशेष का सूचक नहीं है वहाँ 'चारण' और 'भाट' शब्द दो भिन्न जातियों के सूचक हैं। इस तरह की

२४ राजस्थानी के प्राचीन ग्रंथों में चारण के लिए देहग, कव, कवि, कविजण, गढवी, गुणियण, नाकव, दूआ, नीपण, पात, पोलपात, बारहट, भाणव, मागण, रेणव, वीदग और हेतव शब्दों का प्रयोग भी देखने में आता है।

भ्रान्तियों को दूर करने के लिए डिंगल भाषा-साहित्य से विशेष सम्बन्ध रखनेवाली उल्लिखित पाँचों जातियों का संक्षिप्त परिचय हम यहाँ देते हैं।

चारण

"चारयन्ति कीर्तिम् इति चारणाः"। अर्थात् कीर्ति का सञ्चार करते हैं इसलिए इनकी संज्ञा चारण है। यह एक बहुत प्राचीन जाति है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, और श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में अनेक स्थानों पर इस जाति का उल्लेख मिलता है। स्वर्गीय चारण इतिहासवेत्ता कविराजा श्यामलदास ने अपने "वीरविनोद" नामक ग्रंथ में अपनी जाति का परिचय देते हुए लिखा है कि 'यह जाति सृष्टि सृजन-काल से पाई जाती है, क्योंकि हमारे भारतवर्ष का पहिला मुख्य शास्त्र वेद माना गया है उसमें भी चारण जाति का नाम मिलता है[25]। श्यामलदास का संकेत यजुर्वेद के इस मंत्र की ओर है—

यथेमा वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणायच्। [26]
अध्याय २६, मं० २

परन्तु इसका अर्थ उन्होंने गलत समझा है। 'चारणाय' शब्द यहाँ चारण जाति का द्योतक नहीं है। वेदों के सुप्रसिद्ध तीनों भाष्यकारों-सायण, उव्वट और महीधर-ने इसका च × अरणाय पदच्छेद करके 'अरणाय' का अर्थ प्रिय न लगनेवाले' किया है। प्रसंग और विषयानुक्रम को देखते हुए इन विद्वानों के इस अर्थ में किसी प्रकार की शंका व मतभेद की गुंजाइश नहीं है।

अतीत में किसी समय यह जाति गन्धमादन पर्वत पर रहती थी। जब महाराज पृथु ने यज्ञ किया तब उन्होंने चारणों को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए बुलाया, और यज्ञ की समाप्ति पर उनको तैलंग देश दक्षिण में दिया। तब से ये लोग गंधमादन पर्वत को छोड़कर तैलंग देश में रहने लगे। कोई आठवीं शताब्दी तक ये तैलंग देश में रहे। बाद में सिन्ध प्रान्त में जाकर बस गये जहाँ से धीरे-धीरे कच्छ, काठियावाड़, राजस्थान, मालवा आदि प्रान्तों में फैले हैं। राजस्थान में इनकी सब से अधिक संख्या मारवाड़ में है। परन्तु मेवाड़, जयपुर, कोटा, बूँदी आदि अन्य रियासतों में भी ये बहुत संख्या में पाये जाते हैं।

---

२५ वीरविनोद; प्रथम भाग, पृ० २६८

२६ मैं जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा वैश्य आदि अपने प्रिय लगनेवाले और (अरणाय) प्रिय न लगनेवाले जनों के लिए इस कल्याणकारिणी वाणी को बोलूं।

चारण जाति चार भागों में विभक्त है -- मारू, काछेला, सोरठिया और तुम्बेल। इनके ये नाम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बसने के कारण पड गये हैं। उदाहरणार्थ, मारवाड़ में रहने के कारण वहाँ के चारण मारू और कच्छ में रहने के कारण वहाँ के काछेले कहलाने लगे हैं। राजस्थान में मारू चारण अधिक मिलते हैं। इनकी कई शाखा-प्रशाखाएँ हैं। जैसे आशिया, टापरिया, रोहडिया इत्यादि।

चारण लोग अपने को चार वर्णों से बाहर देव जाति में मानते हैं। ये शाक्त मतावलबी हैं, देवी को जोगमाया के नाम से पूजते हैं और अपने ही में से बहुत सी औरतों को शक्ति अर्थात् देवी का अवतार मानते हैं और उनकी पूजा भी देवियों के समान करते हैं। कहते हैं कि इस जाति में कई लाख देवियों का जन्म हुआ है जिनमें सब से पहली देवी हिंगुलाज मानी जाती हैं। इन देवियों में करणीजी का स्थान सब से ऊँचा माना गया है। करणी जी की शपथ चारणों में बहुत प्रामाणिक समझी जाती है। चारण लोग अपनी संतानों के नाम भी कभी-कभी इन देवियों के नाम पर रखते हैं। जैसे, हिंगुलाजदान, करणीदान, आवडदान आदि। ये नाम क्रमशः हिंगुलाज, करणी, आवड आदि इनकी आराध्य देवियों के नाम पर रखे गये हैं।

राजस्थान के चारणों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेष-भूषा, खान-पान आचार-व्यवहार आदि सब यहाँ के राजपूतों से मिलते-जुलते हैं। केवल एक बात में भेद है। राजपूतों में ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है और छुटभाइयों को उनकी आजीविकार्थ कुछ मिल जाता है। परन्तु चारणों में पिता की सम्पत्ति का बँटवारा सभी पुत्रों में बराबर होता है। छोटे बड़े का कोई लिहाज नहीं रखा जाता।

चारण राजपूतों की याचक जाति है। राजपूतों को छोड़कर इस जाति के लोग किसी दूसरी जाति से नहीं माँगते। राजपूत भी चारणों को बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और 'भाभा', 'बारहठजी'[२७] आदि आदर-सूचक

२७ बारहठ उन चारणों को कहते हैं जिनको राजपूत लोग अपनी पोल (स० प्रतोली) का नेग देते हे। जब कोई वर किसी के घर विवाह करने को जाता है तब दुलहिन के पिता का चारण उसके प्रवेश-द्वार पर खड़ा रहता हे। वर जिस हाथी अथवा घोडे पर चढकर तोरण बदाता है उस हाथी अथवा घोडे को लेने का अधिकार उस चारण का होता है। 'बार, दरवाजे को कहते है, और दरवाजे पर हठ कर के नेग लेनेवाला चारण बारहठ कहलाता है। डिंगल साहित्य में प्रयुक्त 'बारठ' 'बारैठ', शब्द इसी 'बारहठ के रूपान्तर है।

शब्दों द्वारा इनको संबोधित करते हैं। राजस्थान की छोटी-बड़ी सभी रियासतों में राजपूतों ने चारणों को गाँव दे रखे हैं जिनसे इनका जीवन निर्वाह होता है। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा अभागा चारण मिलेगा जिसके पास दो चार बीघा जमीन न हो। कइयों के पास तो दस-दस बीस-बीस हजार की वार्षिक आय के बड़े बड़े गाँव हैं। जोधपुर राज्य का मूँधियाड़ ठिकाना तो लगभग साठ हजार का माना जाता है। इन गाँवों पर इनको किसी प्रकार का कोई लगान नहीं देना पड़ता। राजस्थान में इनको 'माफी के गाँव' कहते हैं। अकेले जोधपुर-राज्य में चारणों के लगभग पौने चार सौ गाँव हैं जिनमे इनको अनुमानतः चार लाख रुपयों की वार्षिक आमदनी होती है।

इसके अलावा जब कभी किसी प्रतिष्ठित राजपूत के घर विवाह आदि का कोई शुभ अवसर होता है तब इनको दान मिलता है। इस दान को ये 'त्याग' कहते हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस 'त्याग' के लिए चारण राजपूतों को बहुत तंग किया करते थे। ये राजपूतों से अधिक 'त्याग' लेना चाहते और वे कम से कम देने की कोशिश करते थे। कहा जाता है कि इस 'त्याग' के दुःख से बचने के लिए बहुत से गरीब राजपूत कभी-कभी अपनी कन्याओं को मार भी डालते थे, ताकि न उनका विवाह हो और न त्याग देने की परेशानी का सामना करना पड़े। परन्तु आज कल पढ़े-लिखे चारण 'त्याग' लेना पसद नहीं करते। कुछ सुधार-प्रिय व्यक्तियो ने इसके विरुद्ध आवाज भी उठाई है। सरकार ने भी इस पर थोड़ा सा प्रतिबंध लगा दिया है। इससे इस कुप्रथा मे कुछ कमी अवश्य आई है, पर बिलकुल बद फिर भी नहीं हुई है। किसी न किसी रूप मे जारी ही है।

प्राचीन काल में अधिकांश चारण राज दरबारी हुआ करते थे और कविता करके अपना पेट भरते थे। परन्तु आधुनिक दुनियाँ मे इस तरह के धंधों के लिए अब कोई स्थान नहीं रह गया है। अतः जिन चारणों के पास बड़ी बड़ी जागीरें हैं वे तो घर बैठे अपना जीवन-निर्वाह कर लेते हैं। परन्तु जो गरीब हैं और जिनके पास बड़ी-बड़ी जागीरें नहीं हैं वे खेती, नौकरी, पशु-पालन आदि द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं।

चारण जाति एक राज-भक्त और स्वामि-भक्त जाति है। बहुत दीर्घ काल तक इसने राजपूतों को उनके स्वाधीनता-सग्राम मे सहायता दी है। इसने

चारण जाति चार भागों में विभक्त है -- मारू, काछेला, सोरठिया और तुम्बेल। इनके ये नाम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बसने के कारण पड़ गये हैं। उदाहरणार्थ, मारवाड़ में रहने के कारण वहाँ के चारण मारू और कच्छ में रहने के कारण वहा के काछेले कहलाने लगे हैं। राजस्थान में मारू चारण अधिक मिलते हैं। इनकी कई शाखा-प्रशाखाएं हैं। जैसे आशिया टापरिया, रोहडिया इत्यादि।

चारण लोग अपने को चार वर्णों से बाहर देव जाति में मानते हैं। ये शाक्त मतावलम्बी हैं; देवी को जोगमाया के नाम से पूजते हैं और अपने ही में से बहुत सी औरतों को शक्ति अर्थात् देवी का अवतार मानते हैं और उनकी पूजा भी देवियों के समान करते हैं। कहते हैं कि इस जाति में कई लाख देवियों का जन्म हुआ है जिनमें सब से पहली देवी हिंगुलाज मानी जाती हैं। इन देवियों में करणीजी का स्थान सब से ऊँचा माना गया है। करणी जी की शपथ चारणों में बहुत प्रामाणिक समझी जाती है। चारण लोग अपनी संतानों के नाम भी कभी-कभी इन देवियों के नाम पर रखते हैं। जैसे, हिंगुलाजदान, करणीदान, आवडदान आदि। ये नाम क्रमशः हिंगुलाज, करणी, आवड़ आदि इनकी आराध्य देवियों के नाम पर रखे गये हैं।

राजस्थान के चारणों की रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेष-भूषा, खान-पान आचार-व्यवहार आदि सब वहाँ के राजपूतों से मिलते-जुलते हैं। केवल एक बात में भेद है। राजपूतों में ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है और छुटभाइयों को उनकी आजीविकार्थ कुछ मिल जाता है। परन्तु चारणों में पिता की सम्पत्ति का बँटवारा सभी पुत्रों में बराबर होता है। छोटे बड़े का कोई लिहाज नहीं रखा जाता।

चारण राजपूतों की याचक जाति है। राजपूतों को छोड़कर इस जाति के लोग किसी दूसरी जाति से नहीं माँगते। राजपूत भी चारणों को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और 'भाभा', 'बारहटजी'[२७] आदि आदर-सूचक

---

२७ बारहठ उन चारणों को कहते हैं जिनको राजपूत लोग अपनी पोल (स० प्रतोली) का नेग देते हैं। जब कोई वर किसी के घर विवाह करने को जाता है तब दुलहिन के पिता का चारण उसके प्रवेश- द्वार पर खड़ा रहता है। वर जिस हाथी अथवा घोड़े पर चढ़कर तोरण बंदाता है उस हाथी अथवा घोड़े को लेने का अधिकार उस चारण का होता है। 'बार' दरवाजे को कहते हैं, और दरवाजे पर हठ कर के नेग लेनेवाला चारण बारहठ कहलाता है। डिंगल साहित्य में प्रयुक्त 'बारठ' 'बारैठ' शब्द इसी 'बारहठ' के रूपान्तर हैं।

शब्दो द्वारा इनको सबोधित करते हैं। राजस्थान की छोटी-बडी सभी रियासतों में राजपूतों ने चारणों को गॉव दे रखे हैं जिनसे इनका जीवन निर्वाह होता है। राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा अभागा चारण मिलेगा जिसके पास दो चार बीघा जमीन न हो। कइयों के पास तो दस-दस बीस-बीस हजार की वार्षिक आय के बड़े बडे गॉव है। जोधपुर राज्य का मूँधियाड़ ठिकाना तो लगभग साठ हजार का माना जाता है। इन गॉवों पर इनको किसी प्रकार का कोई लगान नहीं देना पड़ता। राजस्थान में इनको 'माफी के गॉव' कहते हैं। अकेले जोधपुर-राज्य में चारणों के लगभग पौने चार सौ गॉव हैं जिनसे इनको अनुमानतः चार लाख रुपयों की वार्षिक आमदनी होती है।

इसके अलावा जब कभी किसी प्रतिष्ठित राजपूत के घर विवाह आदि का कोई शुभ अवसर होता है तब इनको दान मिलता है। इस दान को ये 'त्याग' कहते हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस 'त्याग' के लिए चारण राजपूतों को बहुत तंग किया करते थे। ये राजपूतों से अधिक 'त्याग' लेना चाहते और वे कम से कम देने की कोशिश करते थे। कहा जाता है कि इस 'त्याग' के दुःख से बचने के लिए बहुत से गरीब राजपूत कभी-कभी अपनी कन्याओं को मार भी डालते थे, ताकि न उनका विवाह हो और न त्याग देने की परेशानी का सामना करना पडे। परन्तु आज कल पढे-लिखे चारण 'त्याग' लेना पसद नही करते। कुछ सुधार-प्रिय व्यक्तियो ने इसके विरुद्ध आवाज भी उठाई है। सरकार ने भी इस पर थोडा-सा प्रतिबध लगा दिया है। इससे इस कुप्रथा मे कुछ कमी अवश्य आई है, पर बिलकुल बद फिर भी नहीं हुई है। किसी न किसी रूप में जारी ही है।

प्राचीन काल में अधिकाश चारण राज दरबारी हुआ करते थे और कविता करके अपना पेट भरते थे। परन्तु आधुनिक दुनियाँ में इस तरह के धंधों के लिए अब कोई स्थान नहीं रह गया है। अतः जिन चारणों के पास बड़ी बडी जागीरें हैं वे तो घर बैठे अपना जीवन-निर्वाह कर लेते हैं। परन्तु जो गरीब हैं और जिनके पास बड़ी-बडी जागीरें नहीं हैं वे खेती, नौकरी, पशु-पालन आदि द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं।

चारण जाति एक राज-भक्त और स्वामि-भक्त जाति है। बहुत दीर्घ काल तक इसने राजपूतों को उनके स्वाधीनता-संग्राम मे सहायता दी है। इसने

दुःख और सुख की, युद्ध और शांति का, निराशा और आशा की सभी तरह की अच्छी और बुरी घड़ियों में राजपूत जाति का साथ दिया है। इसकी वीर वाणी ने अतीत में कई कायरों में जीवन फूका है। कई हताश व्यक्तियों को आशावान बनाया है। कई हारे हुए युद्धो को जिताया है।

राजपूतों के साथ-साथ चारण जाति का भी ह्रास हुआ है। इस समय इस जाति में न तो कोई अच्छे कवि हैं, न विद्वान। दो-एक जो हैं वे भी लकीर के फकीर बने हुए हैं। शिक्षा की भी इस जाति में बहुत कमी है। यदि यह जाति उन्नति करे तो प्राचीन काल की तरह अर्वाचीन काल में भी देश के लिए बड़ी हितकर सिद्ध हो सकती है। क्योंकि देश के लिए जनमत तैयार करने तथा लोगों में उत्साह भरने की एक ऐसी ढब इस जाति में पाई जाती है जो इसी की चीज है, इसी को फबती है।

भाट

भाट शब्द संस्कृत भट्ट का रूपान्तर है। 'शब्द-स्तोम-महानिधि", "शब्द कल्पद्रुम" "शब्दार्थ चिन्तामणि" "बृहत्संस्कृताभिधान" इत्यादि संस्कृत कोषों में 'भट्ट' शब्द के दो अर्थ मिलते हैं. (१) वेदाभिज्ञ पण्डित और (२) स्तुति पाठक जाति विशेष। परन्तु इससे बना हुआ भाट शब्द ये दोनों अर्थ नहीं देता। इससे केवल दूसरे अर्थ अर्थात् उस जाति का बोध होता है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जातियों की वंशावलियाँ रखती है। यह जाति ब्राह्मण नहीं है। भाट सभी जातियों के होते हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के भाट भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। जैसे, राजपूतों के भाट बड़वा और महेसरियों के जागा कहलाते हैं। स्वयं भाटों के भी भाट होते हैं जो 'बही-बंच्या' भाट कहे जाते हैं।

भाटों की कई जातियाँ-उपजातियाँ हैं। इनका मुख्य कर्म अपने यजमानों की पीढियाँ रखना है। परन्तु कोई-कोई भाट ग्रन्थ तथा गीत-कवित्त भी लिखते हैं। भाटों की बहियों पर लोग बहुत विश्वास करते हैं और बहुत से मामलों में सरकार भी इनको प्रमाणिक मानती है।

इनके विवाह आदि के रस्म-रिवाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि अन्य जातियों के समान ही हैं। ये मदिरा, माँस और तमाखू का सेवन करते हैं। इनमें नाता (पुनर्विवाह) भी होता है।

अधिकांश मनुष्य राव और भाट जाति को एक समझते हैं। परन्तु राव

राव

लोग इसे स्वीकार नहीं करते। वे अपने को भाट जाति से भिन्न मानते हैं और अपनी उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ से बतलाते हैं। हमारे विचार मे भी राव और भाट जाति में थोड़ा सा अन्तर है पर यह अन्तर वर्ण का नहीं, कर्म का है। जो लोग पीढी-वशावलियाँ रखते हैं और जिनकी यजमानी ब्राह्मण, वैश्य आदि सभी जातियों के यहाँ है वे भाट कहलाते हैं और जो केवल राजपूतों के याचक या राज दरबारी हैं और पीढी वशावलियाँ रखने का काम नहीं करते वे 'राव' नाम से प्रसिद्ध हैं। यह 'राव' इस जाति की पदवी है जिसमे इसका असली नाम छिप गया है। राजस्थान मे ऐसी कुछ और भी जातियाँ है जिनके नाम उनकी पदवियों में छिप गये हैं। जैसे—पाखेरी, महता, भडारी, कोठारी आदि।

यह राजपूतो की याचक जाति है। उनसे 'त्याग' लेनी है और उनके अलावा दूसरो से नही माँगती। राजपूत लोग इनको भी बडे आदर की दृष्टि से देखते हैं और अपने राजदरबारो तथा घरों में बडा सम्मान देते हैं। उनकी तरफ से इनको सैकडा गाँव मिले हुए हैं जिन पर इनका गुजारा होता है।

इस जाति में डिंगल और पिंगल के कई अच्छे-अच्छे कवि और विद्वान हो गए हैं। इनमे चद वरदाई, किशोरदास, बख्तावरजी, गुलाबजी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गुजरात आदि प्रान्तो म राव जाति इस समय बडी समृद्धावस्था मे है। उधर के राव अब याचक वृत्ति नहीं करते। व्यापार करते हैं और व्यापार के द्वारा बडे धनी-मानी बन गये हैं। परन्तु राजस्थान के रावों की हालत बहुत बिगडी हुई है। अधिकाश लोग गरीब हैं। शिक्षा का अभाव है। और ऊपर उठने की महत्वाकांक्षा भी इनमें कम दिखाई देती है।

मोतीसर

इस जाति का प्रामाणिक इतिहास नहीं मिलता। कहा जाता है कि कच्छ-भुज के राजकवि माउलजी नामक किसी चारण ने अपनी एक कन्या का विवाह माणकजी नामक एक राजपूत के साथ कर दिया था जिसकी सतान मोतीसर कहलाती है। मोतीसरों की सख्या अब बहुत थोड़ी रह गई है और दिन-दिन घटती जा रही है। इनकी आठ खाँपे (शाखाएँ) हैं जिनके नाम इस दोहे मे गिनाए गये हैं:—

बालण खीला बिजमला, रामहिया पड़िहार।
माँगलिया नैं चाँदगा, मकवाणा सरदार॥

मोतीसर चारणों के याचक हैं। जिस तरह चारण राजपूतों के सिवा किसी दूसरी जाति से नहीं माँगते उसी तरह मोतीसर भी चारणों के अतिरिक्त दूसरों के सामने हाथ नहीं पसारते। दशहरे के बाद ये लोग अपने घरों से निकलते हैं और दो चार महीने चारणों के गाँवों में घूम-घामकर अपने गुजारे भर के लिये कुछ ले आते हैं। जब कोई मोतीसर किसी चारण के घर जाता है तब वह उससे उठकर मिलता है और उसके प्रति बड़ा आदरभाव बतलाता है। चारण-मोतीसरों के पारस्परिक व्यवहार के विषय में किसी चारण के बनाये हुए प्राचीन गीत की यह पंक्ति राजस्थान में प्रसिद्ध है —

"मोतीसर म्हारै सिर ऊपर, हूँ म्हाँरै कदमाँ रै हेठ"

मोतीसर बहुत पढ़े-लिखे नहीं होते पर डिंगल भाषा के गीत बनाने में बहुत पटु होते हैं। इनके गीत चारणों के गीतों से भी जोरदार माने गये हैं। कोई-कोई धनवान चारण किसी होशियार मोतीसर को अपने यहाँ नौकर रख लेते हैं और उससे गीत बनवा कर खुद राज दरबार आदि में ले जाकर पढ़ते हैं।

ढाढ़ी

यह ढोलिया से मिलती-जुलती जाति है। केवल इतना अन्तर है कि ढोली ढोल बजाते हैं और ढाढी सारंगी या रबाब बजाते हैं। ढाढियों का कहना है कि हम श्री रामचन्द्र के समय में विद्यमान थे और उनके जन्म-दिन हमको बधाई भी मिली थी। अपने इस कथन की पुष्टि में निम्न लिखित पद्य भी ये जब तब दोहराया करते हैं—

दशरथ रे घर राम जनमियाँ हँस ढाढिन मुख बोली।
अठारा करोड लै चौक मेलिया, काम -करन को छोरी॥

कृष्ण जन्माष्टमी के दिन वैष्णव मन्दिरों में भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने ढाढी-ढाढ़िन बनकर गाने-नाचने की प्रथा भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर बहुत प्राचीन काल से चली आती है। एक आदमी ढाढी का स्वांग भरता है और दूसरा ढाढिन का। फिर दोनों मिलकर खूब नाचते-गाते हैं। इस पर इनको कुछ इनाम-इकराम भी मिलता है।

इस प्रथा से ढाढ़ी जाति की प्राचीनता पर कुछ प्रकाश पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जाति श्रीकृष्ण के समय में विद्यमान थी और उस समय इसका हिन्दू मंदिरों में प्रवेश भी होता था। परन्तु बाद में अस्पृश्यता का जोर बढ़ने से अथवा अन्य किसी कारण से इस जातिवालों का हिन्दू मंदिरों से निष्कासन हो गया और इनका स्थान दूसरी जातियों के लोगों ने ले लिया जो अब इनका स्वांग भरकर इनकी कमी पूरी करते हैं।

आइने-अकबरी में भी इस जाति का उल्लेख हुआ है। अबुलफजल ने लिखा है कि बहुत से ढाढी रणभूमि में शूरवीरों की तारीफ करते हैं और लड़ाई के मैदान को चमकाते हैं। मारवाड़ में इसको 'सिंधू देना' कहते हैं। यह एक राग है जिसे ढोली और ढाढी सेना के आगे-आगे गाते हुए चलते हैं।

उपरोक्त बातों से इतना तो स्पष्ट है कि यह एक प्राचीन जाति है। परन्तु कितनी प्राचीन है, इसका ठीक-ठीक उत्तर देना अशक्य है। अस्पृश्य होने से इस जाति के विषय में प्राचीन हिन्दू ग्रंथों में भी कुछ लिखा नहीं मिलता।

ढाढी हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। मुसलमान ढाढी मलानूर कहलाते हैं। कोई औरंगजेब के समय में ये हिन्दुओं से मुसलमान हुए हैं।

हिन्दू ढाढी जाट, सुनार, छीपी आदि जातियों से माँगते हैं। ये अपने यजमानों की पीढियाँ ज़बानी याद कर लेते हैं और उनकी प्रशंसा के गीत बना-बनाकर भी गाते हैं। इनकी औरतें विवाह, जन्मोत्सव आदि के मौकों पर अपने यजमानों के घरों में गाने-बजाने का काम करती हैं।

डिंगल भाषा का संक्षिप्त व्याकरण

स्वर

अ. आ. इ ई. उ. ऊ. ऋ. ए. ऐ. ओ. औ. अं. अः।

व्यंजन

क. ख. (ष) ग. घ. ङ.। च. छ. ज. झ. ञ.। ट. ठ. ड. ढ. ण.। त. थ. द. ध. न.। प. फ. ब. भ. म.। य. र. ल व.। श ष. स. ह.। ळ व. ड. ढ.

उच्चारण

(१) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं दन्त्य 'ल' और कहीं वैदिक भाषा तथा मराठी, गुजराती आदि के 'ळ' की तरह मूर्धन्य होता है। आजकल

कुछ लोगो मे 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने तथा बोलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो गलत है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के आदि अथवा मध्य मे आता है तब उसके स्थान पर 'ल' लिखने व बोलने से उसके अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं पडता, यद्यपि उच्चारण की अशुद्धता वहाँ अवश्य रहती है। परन्तु बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे हैं जिनको लकारात कर देने से उनका अर्थ बिलकुल बदल जाता है। यथा —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
माळी	जाति विशेष	माली	आर्थिक
महळ	स्त्री	महल	राजप्रासाद
खाळ	पनाला	खाल	चमडा
चचळ	घोड़ा	चचल	चपल
पाळ	बाँध	पाल	बिछाने का कपडा

(२) डिंगल मे बहुत से शब्द ऐसे है जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर जोर देना पडता है। जोर देकर न पढने से उस शब्द का अर्थ कुछ और निकलता है और जोर देकर पढ़ने मे कुछ और हो जाता है। उदाहरणार्थ 'मौर' शब्द को लीजिये। इसमे 'मौ' पर जोर देकर न पढने से इसका अर्थ 'पीठ' होता है, पर जोर देकर पढने से 'मुहर' हो जाता है। इस तरह के कुछ और शब्द देखिये —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
नार	स्त्री	नार	सिंह
कद	ऊँचाई	कद	कब
नाथ	स्वामी	नाथ	नथबंधन
पीर	पीडा	पीर	पीहर

(३) 'व' का उच्चारण डिंगल में दो तरह से होता है, एक संस्कृत 'व' अथवा अंग्रेज़ी w की तरह और दूसरा अंग्रेजी v की तरह। उच्चारण का यह अन्तर बतलाने के लिए लिखने में एक व तो वैसा ही रहने दिया जाता है पर दूसरे के नीचे बिंदी (व़) लगादी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थानों पर भ्रम हो जाने की संभावना रहती है। क्योंकि 'व' के स्थान पर 'व़' और 'व' के स्थान पर 'व' का प्रयोग होने से शब्द का अर्थ बिलकुल पलट जाता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट होगा

कि 'व' के नीचे बिंदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है और बिंदी लगा देने से उच्चारण के अनुसार उसका अर्थ किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वार	दिन, आक्रमण	व़ार	सहायतार्थ चिल्लाना
वीर	बहादुर	व़ीर	वीरोन्माद
वचियो	बच गया	व़चियो	छोटा सा बच्चा
वात	वायु	व़ात	कहानी

(४) डिंगल की वर्णमाला में तालव्य श नहीं है। अतः लिखने में तालव्य श के स्थान पर दन्त्य स ही लिखा जाता है। परन्तु बोलते समय जहाँ जो 'श' अथवा 'स' बोला जाना चाहिये वही बोला जाता है। यथा —

व्याकरण पुराण समृति सासत्र विधि
वेद च्यारि षट अङ्ग विचार।
जाणि चतुरदस चौसठि जाणी
अनत अनंत तसु मधि अधिकार ॥

यह पद्य लिखने में उपरोक्त ढग से लिखा जायगा पर पढते समय इसमें आये हुए विभिन्न सकारों का उच्चारण निम्नलिखित ढग से होगा :—

व्याकरण पुराण समृति शास्त्र विधि
वेद च्यारि षट अङ्ग विचार।
चाणि चतुरदश चौसठि जाणी
अनत।अनत तसु मधि अधिकार ॥

(५) मूर्धन्य 'ष' का उच्चारण डिंगल में प्रायः 'ख' होता है। परन्तु तत्सम शब्दों में कहीं कहीं शुद्ध संस्कृत उच्चारण भी होता है। जैसे- पोष, आषाढ, भीष्म आदि।

(६) डिंगल में 'य' का उच्चारण 'य' और 'ज' दोनों तरह से होता है। जब 'य' किसी शब्द का पहला अक्षर होता है तब इसका उच्चारण प्रायः 'ज' किया जाता है और 'ज' ही लिखा जाता है। परन्तु जब 'य' शब्द के पहले अक्षर के बाद आता है तब वह ज्यों का त्यों 'य' बोला और लिखा जाता है। जैसे— (क) जुद्ध (युद्ध), जोधा (योद्धा), जात्रा (यात्रा),

जमराज (यमराज)। (ख) न्याय, ख्यात, रायजादा, माया, सयन, नयण, गुणियण।

(७) डिंगल में विसर्ग (:) का प्रयोग नहीं होता और अनुनासिक (ँ) का प्रयोग भी अभी-अभी होने लगा है। प्राचीन लिखित ग्रंथों में अनुनासिक के स्थान पर सर्वत्र अनुस्वार ही लिखा मिलता है। जैसे-दांत, आंत, भांत आदि।

(८) राजस्थान वासियों की प्रवृत्ति अनुस्वार प्रयोग की ओर कुछ विशेष देखने में आती है। अनेक स्थानों पर जहाँ अनुस्वार की आवश्यकता नहीं होती वहाँ भी ये अनुस्वार का उच्चारण करते हैं। अतः डिंगल में अनेक स्थानों पर अनुस्वार का अनावश्यक प्रयोग देखने में आता है। परन्तु कहीं-कहीं आवश्यक होते हुए भी उड़ा दिया जाता है। दोनों तरह के उदाहरण देखिये—
(क) मांण, भांण, असमान, सैंण, राधा इत्यादि।
(ख) सिंह-सीह या सी (प्रतापसी, जैतसी आदि) साँस-सास, पाँव-पाव इत्यादि।

वर्णागम और वर्णव्यत्यय

(१) डिंगल में ऋ का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता। किसी दूसरे वर्ण के साथ होता है। जैसे--समृति, वृत।

पूरे ऋ के स्थान पर प्रायः रि का प्रयोग देखने में आता है। जैसे, ऋषि-रिषि, ऋतु-रितु।

(२) डिंगल में रेफ का प्रयोग नहीं होता। रेफ या तो पूरे रकार में बदल जाता है या स्थानान्तरित हो जाता है। जैसे—
(क) दुर्लभ-दुरलभ, दुर्ग-दुरग, कीर्ति-कीरत।
(ख) धर्म-ध्रम, कर्म-क्रम, निर्मल-निर्मळ।

(३) डिंगल में अनेक स्थानों पर ए का हे, स का छ और व का म हो जाता है। जैसे—
(क) एक- हेक, एकठा-हेकठा, एकल-हेकल, एव-हेव।
(ख) सावाण-छावाण, तुलसी-तुलछी, सभा-छभा, अपसर-अपछर।
(ग) हैवर-हैमर, किवाड़-किमाड़, रावण-रामण, सुहावणो-सुहामणो।

(४) डिंगल मे 'ए' कभी-कभी 'ओ' मे और 'ओ' कभी-कभी 'ए' मे बदल जाता है। जैसे—
(क) तेग-तोग, गेहूं-गोहूं, बेर-बोर।
(ख) कौरव-कैरव, म्हौल-म्हैल।

(५) डिंगल में पाद-पूर्ति के लिये कहीं-कहीं 'ह' और कहीं कहीं 'र' आगम होता है। जैसे—

(क) समर-समहर, अंबर-अबहर, सजळ-सरजळ, सधीर-सरधीर।
(ख) रजपूती-रजपूतीह, कहियो-कहियोह, रामो-रामोह, मोती-मोतीह।

(६) डिंगल में सुखोच्चारण अथवा पादपूर्ति के लिए शब्द के प्रारंभ में कभी-कभी कोई स्वर जोड देते हैं। जैसे----थाण-आथाण, रण आरण।

(७) संस्कृत-हिन्दी के नकारान्त शब्द डिंगल मे बहुधा णकारांत कर दिये जाते हैं। जैसे-जीवन-जीवण, मान-माण, रानी-राणी।

लिंग

डिंगल मे दो लिंग होते हैं: (१)पुल्लिंग और (२) स्त्रीलिंग। प्राचीन काल मे डिंगल पर गुजराती का प्रभाव बहुत अधिक था जिसके फल स्वरूप डिंगल के प्राचीन ग्रन्थों मे कहीं कहीं नपुंसकलिंग के उदाहरण भी मिलते हैं—

(१) धर धर सिंग-सधर सुपीन पयोधर, घणू खीण कटि अति सुघट।
(२) उग्वग नरों असपति सू कहौ जान का सू कहौं।

परन्तु इनको अपवाद स्वरूप समझना चाहिए। नपुंसकलिंग अब पुलिंग में छिप गया है।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में काम आते हैं। जैसे—टावर, मावीत आदि।

वचन

डिंगल में दो वचन होते हैं. (१) एकवचन और (२) बहुवचन। संस्कृत में जिस तरह द्विवचन होता है, डिंगल मे नहीं होता। हिंदी में एकवचन से बहुवचन बनाना कुछ कठिन नहीं है, पर डिंगल में कुछ कठिन है। डिंगल में एकवचन से बहुवचन बनाने के कुछ साधारण नियम ये हैं—

(१) अकारान्त पुल्लिंग तथा अकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो का बहुवचन अन्त्य स्वर के बदले 'आ' करने से बनता है। जैसे —

(क) पुल्लिंग—नर-नरा, खेत-खेता, कायर-कायरा।

(ख) स्त्रीलिंग—रात-राता, चील-चीला, ऑख-ऑखा।

(२) इकारान्त-ईकारान्त पुल्लिंग तथा इकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में 'ऑ' लगाया जाता है। जैसे—

(क) पुलिंग—कवि-कवियाँ, अरि-अरियाँ, तेली-तेल्याँ।
(ख) स्त्रीलिंग—मूरति-मूरत्याँ, रोटी-रोट्याँ, घोडी-घोड्याँ।

(३) ओकारान्त पुल्लिंग शब्द बहुवचन मे आकारान्त हो जाते हैं। जैसे-घोडो-घोडा या घोड़ा, भालो-भाला या भालां, पोतो-पोता या पोता।

(४) आकारान्त, ऊकारान्त तथा ओकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन में 'वाँ' लगाया जाता है। जैसे—
(क) मा-मावा, भासा-भासावा।
(ख) लू-लूवा, वहू-वहुवा।
(ग) पो-पोवा, गौ-गौवा।

कारक-विभक्तियाँ

डिंगल मे कारकों के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनों रूप देखने में आते हैं। एक 'ए' विभक्ति डिंगल में ऐसी है जो सम्बोधन को छोड़कर शेष सभी कारकों मे पुल्लिंग एकवचन मे लगती है। बहुवचन में प्राय 'ओ' अथवा 'यों' हो जाता है। कर्ता के पुल्लिंग बहुवचन मे विकल्प से 'आ' भी होता है। सबंध कारक में 'ए' के अलावा 'र' विभक्ति भी लगती है। सबोधन के चिह्न डिंगल मे 'रे' और 'रे' हैं।

कर्ता

(१) ढोले करह चलावियौ, करि सिणगार अपार (एकवचन)।

—ढोला मारू रा दूहा

(ढोला ने बहुत शृगार करके ऊँट को चलाया)

(२) समरे मरण सुधारियो, चहुँ थोकाँ चहुँआण (एकवचन)।

—दुरसाजी

(चोहाण समरा ने चारो तरह से अपनी मृत्यु को सार्थक किया।)

(३) कायरडा मंजन करै, आँसू धार सँभार (बहुवचन)।

—कायर बावनी

(कायर आँसुओं की धार में स्नान करते हैं।)

(४) पारख कीधी पँडिताँ, सरब मिले सताँह (बहुवचन)।

—वचन विवेक पचीसी

(सब पडितों और सतों ने मिलकर परीक्षा की है।)

(५) अखियाताँ वाताँ वचै, जग काल डर छड्ड (बहुवचन)।

—सुजस छत्तीसी

(जरा और मृत्यु का डर छोडकर प्रसिद्ध बातें बचती हैं।)

(६) जाया **रजपूताणियाँ**. वीरत दीधी वेह (बहुवचन)

—बाँकीदास

(राजपूतानियों ने जन्म दिया, विधाता ने वीरता दी।)

कर्म—

(१) हाथी **घोड़ाए** मारयौ

(हाथी ने घोडे को मारा)

(२)किरि कठचीत्र पूतळी निज करि, **चीत्रारै** लागी चित्रण (एक वचन))

—वेलि

(मानो काठ में चित्रित की हुई पुतली अपने चित्रकार को अपने हाथों में चित्रित करने लगी हो।)

(३) **घिड़ाँ भड़ाँ चारणाँ भाटाँ**, मुँहगा रखणहार मुवौ (बहुवचन)

—फुटकर

(घोड़ों, बहादुरों, चारणा और भाटों को मुहँगा रखने वाला मर गया।)

(४) नरा न दीणो **नारियाँ**, पैखौ सगत एह (बहुवचन)।

—सूर्यमल

(हे पुरुषो! स्त्रियों को दोष मत दो। यह तो सगत का फल देखना चाहिये।)

करण—

(१) मावीत्र मजाद मेटि बोल **मुखि** (एकवचन)।

—वेलि

(माता-पिता की मर्यादा को मिटाकर मुँह से बोला।)

(२) **रूकै** निरदळिया रवद (एकवचन)।

—राजरूपक

(तलवार से मुसलमानों को नष्ट किया।)

(३) पितनूँ **कमलाँ** पूजही वारण मुख वडभाग (बहुवचन)।

—बाँकीदास

(बड़ भागी गजानन पिता को कमलों से पूजता है।)

(४) सुतौ **रूकाँ** टूका हुवो (बहुवचन)।

—नाथूदान

(बेटा तलवारों से टुकडे-टुकडे हो गया।)

संप्रदान—

(१) कळह करै मन कामणी, थोड़ै थी देतांह (एकवचन)।

—अज्ञात

(हे कामिनी ! थोड़े को या देते समय कलह मत कर)

(२) राजा राणीए जागीर दीधी (स्त्री० लि०)

(राजा ने राणी को जागीर दी)

(३) हंसां नग हरनूं तुचा, द्वांत किरातां दीध (बहुवचन)।

—सीह-छत्तीसी

(हंसों को मोती, शिव को गज-चर्म और भीलों को हाथी दाँत दिए।)

अपादान—

(१) नाखै हियै निसास, पास न राण प्रतापसी (एकवचन)।

—दुरसाजी

(प्रतापसिंह को पास न देखकर हृदय से निश्वास छोड़ता है।)

(२) चिहुरै जळ लागौ चुवण (एकवचन)।

—वेलि

(केशपाश से जल टपकने लगा।)

(३) तात विदेसाँ आवियौ, कौळे दीठा हाथ (बहुवचन)।

—नाथूदान

(पिता विदेशों से आया, मकान के दरवाजे पर कर-चिन्ह दिखाई दिए

सम्बन्ध—

(१) ढोलै मन आणंद भयौ, मारू तणै उछाह (एकवचन)।

—ढोला मारूरा दूहा

(ढोला के मन में मारू के मिलने के उत्साह से आनन्द हुआ।)

(२) भव टाळियै भवांह, भव कीजै भागीरथी (एकवचन)।

—पृथ्वीराज

(जन्म-जन्मान्तर का आवागमन तूने टाल दिया। मेरा भी कल्याण कर।)

(३) पँवारां सदन वरमाळ सू पूजियो (बहुवचन)।

—बाँकीदास

(पँवारों के घर वरमाला से पूजा गया।)

(४) माथै मुगलाळांह वधि वधि खाँड़ा वाहतो (बहुवचन)।

—रतन रासौ

(मुगलों के सर पर बढ-बढकर तलवारे चलाता था।)

(५) हलधर का वाहतॉ हळॉह (बहुवचन)।

—वेलि

(बलराम के चलाए हुए हलों के प्रहार से।)

अधिकरण—

(१) जाळी मगि चढि चढि पथी जोवै (एकवचन)।

—वेलि

(चढ चढ कर जाली से मार्ग में पथिकों को देखती है।)

(२) कत घरै किम आविया (एकवचन)।

—सूरजमल

(हे कत! घर पर क्यों आये?)

(३) पीछोलै पाणी पियॉ (एकवचन)।

—अज्ञात

(तालाब मे पानी पिएँ।)

(४) चंचळॉ चढि महा सरवर री पाळ आइ ऊभी रही। (बहुवचन)

—रतन रासौ

(घोड़ों पर चढकर महा सरोवर की पाल पर आकर खड़ी हुई।)

सबोधन—

(१) ऐ बक-मूनी ऊजळा, मीठा बाला मोर।

—बॉकीदास

(हे बक-रूपी श्वेत मुनि! मधुर भाषी मोर।)

(२) नारायण भज रे नरा, अतरजामी एक।

—हरिरस

(हे मनुष्य! तू अन्तर्यामी श्री नारायण का भजन कर।)

परसर्ग

विभक्तियों के अतिरिक्त डिंगल मे निम्नलिखित पॉच कारकों में परसर्गों का प्रयोग भी होता है। मुख्य मुख्य परसर्ग ये हैं :—

कर्मकारक—नै, प्रति।

करण कारक—करि, सू।

सम्प्रदान कारक—नै, प्रति।

अपादान कारक—कनै, थी, हूँत, हुतॉ, हूँती।

संबंध कारक—रा, री, रे, रो, चा, चूं, चे, चौ, केरी, केरा, केरो, तणा, तणी, तणो।

अधिकरण कारक—मँझार, माँझ, माँ, माँझल, मधि, मे इत्यादि।

कर्म—

(१) धूमकुँवर नै मारियौ, चौपड पासा चौळ।

—प्राचीन

(धूमकुँवर को चौपड़-पासे के खेल मे मार डाला।)

(२) लागै माघि लोक प्रति लागौ. जळ दाहक सीतळ जलण।

—वेलि

(माघ के लगते ही लोगों का जल जलानेवाला और अग्नि शीतल लगने लगी।)

करण—

(१) मुख करि किसू कही जै माहव, अंतरजामी सूं आलोज।

—वेलि

(हे माधव! अंतर्यामी से मन के विचार मुख से कैसे कहे जायँ)

(२) अवधेस रा रूप सूँ रीझि आई।

—सूरज प्रकास

(रामचंद्र के रूप से मोहित होकर आई।)

संप्रदान—

(१) महारुद्र नै सिर पेस करा।

—रतन रासौ

(महादेव को सर भेंट करे।)

(२) प्रभणन्ति पुत्र इम मात पिता प्रति।

—वेलि

(पुत्र माता-पिता को इस प्रकार कहने लगा।)

अपादान—

(१) इंद्र माँगै जिन कनै दक्षिणा

—प्राचीन

(इन्द्र जिन से दक्षिणा माँगता है।)

(२) विहाणै मातलोक थी सुरगलोक जाइस्याँ।

—रतन रासौ

(सुबह मृत्युलोक से स्वर्गलोक जायेगी ।)

(३) रक कुकवि दोनूँ रहै, कोस हूँत[२८] सौ कोस ।

—कुकवि बत्तीसी

(निर्धन और कुकवि दोनों द्रव्य से सौ कोस दूर रहते हैं ।)

(४) कुन्दणपुर हुँता वसाँ कुन्दणपुरी, कागळ दीधो एम कहि ।

—वेलि

(कुन्दनपुर से आया हूँ, कुन्दनपुर में रहता हूँ । यह कहकर पत्र दिया)

(५) हूँ ऊधरी त्रिकूटगढ हूँती ।

—वेलि

(मेरा लंका से उद्धार किया)

संबंध—

(१) महाराज आजरी वेढ रा धणी राठौड़ ।

(महाराज ! आज की लड़ाई के स्वामी राठौड़ ।)

इसड़ी आवाज महासतियाँ रे कानै आई ।

(ऐसी आवाज महासतियों के कान में आई ।)

तीन प्रकार रौ पवन वाजै छै ।

(तीन प्रकार का पवन चलता है ।)

—रतन रासौ

(२) डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह ।
बहता बहै उतावळा, झटक दिखावै छेह ॥

—ढोला मारू रा दूहा

(पहाड़ों के नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम बहते समय तो बड़ी तेज़ी बताता है । परन्तु तुरन्त ही अंत दिखा देते हैं ।)

अदतां केरी अत्थ ज्यूं, कायर री किरमाळ ।
कोड प्रकारा कोस सूं, नहँ पावै नीकाळ ॥

—बाँकीदास

---

२८ इसका प्रयोग कभी-कभी अधिकरण में भी होता है जैसे—
[illegible] ।

— सूरजमल

(नायक कब आ गये हैं, उनके पाँवों में प्रणाम ।)

(करोड़ों प्रकार के उपाय करने पर भी कायर की तलवार और मूँजी का धन अपने कोष से नहीं निकल पाते ।)

चौली केरे पान ज्यूँ दिन दिन पीळी थाइ ।

—ढोला मारू रा दूहा

(मजीठ के पत्तों की तरह दिन दिन पीली पड़ती जा रही है ।)

(३) प्रभू घणा चा पाडिया, दैत्य वडा. चा दत ।

— नागदमण

(प्रभु ने वहुत से बड़े-बड़े राक्षसो के दाँत गिराये ।)

धर ची वाहर करण नूँ, मिलियौ आय मरद ।

—प्राचीन

(देश की सहायता करने के लिए वह वीर आ पहुँचा)

हींदूनाथ दिली चै हाटै, पतो न खरचै खत्रीपण

—राठौड़ पृथ्वीराज

(हिंदुओं का नाथ महाराणा प्रताप दिल्ली के बाजार मे अपने क्षत्रियत्व को नहीं बेचता ।)

कागळ चौ ततकाळ कृपानिधि, रथ बैठा सॉभळि अरथ ।

—वेलि

(पत्र का आशय समझकर कृपानिधि तुरन्त रथ मे जा बैठे ।)

(४) अचरज हुवौ लोक अजमेराँ, वड़ दळ देखे बीक तणा ।

—चानण

(बीकाजी की बडी सेना को देखकर अजमेर के लोगो को बड़ा आश्चर्य हुआ ।)

तिणी वार त्रिया रतनेस तणी, विधि साहस सोल सिंगार वणी ।

—रतन रासौ

(उस वक्त रतनसिंह की पत्नी ने विधिपूर्वक सोलह शृंगार किये ।)

वेष नट तणौ खडौ व्रन वीथियाँ, बटपडो कुँवर व्रजराज वाळो ।

—बाँकीदास

(व्रजराज का कुँवर, लुटेरा कृष्ण, नट के वेष मे व्रन की गलियो मे खड़ा है ।

वीरोचद-सुत अहियापुर वारै, रवि सुत तणौ अमरपुर राज

—प्राचीन

(नागलोक मे बलि मुझे दूर भगाता है और देवलोक मे कर्ण का राज्य है।)

(५) गणपत हँदा बाप रौ, धवळ उठावै भार।

—धवल-पच्चीसी

महादेव का बोझ श्वेत वर्ण का बैल उठाता है।)

वाँ हँदी आसा करै, खैराती खटव्रन।

—दातार बावनी

(उसका दान लेने वाले षट्दर्शन आशा करते हैं।)

सादूळौ खीजै सुणै, जळहर हदौ गाज।

—सीह-छत्तीसी

(सिंह मेघ की गर्जना को सुनकर खीजता है।)

तौ दाता हँदै करग, धन ठहरै चित धार।

—दातार-बावनी

(तब मन मे समझो कि दाता के हाथ में धन रह सकता है।)

अधिकरण—

रिण नहँ भीनी रुधर सूँ, मद सूँ गोठ मँझार

—मावड़िया मिजाज

(युद्ध में रक्त से नहीं भीगी, किन्तु दावत में मदिरा से भीगी।)

मेवाड़ों तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी।

—राठौड़ पृथ्वीराज

(उस में मेवाड़ का राणा प्रताप कमल के फूल के समान है।)

बाहर था जे ऊगरै, भीगा मांझ घरेह।

—ढोला मारू रा दूहा

(जो बाहर थे वे भीग गये और मै घर में भीग रहा हूँ।)

काठी साहँत मूठि मां, कोड़ी कासी मत।

—ढोला मारू रा दूहा

(वे मुट्टी मे कसकर पकड़ते और मै खूब प्रसन्न रहती।)

अरि देखे आराण मै, तृण मुख मांझल त्यांह।

—सूर-छत्तीसी

(शत्रु को युद्ध में देखते ही मुँह मे तिनका ले लेते हैं।)

कीधे मंधि माणिक हीरा कुंदण, मिळिया कारीगर मयण।

—वेलि

(करोड़ो प्रकार के उपाय करने पर भी कायर की तलवार और मूँजी का धन अपने कोष से नहीं निकल पाते ।)

चौली केरे पान ज्यूँ दिन दिन पीळी थाइ ।

—ढोला मारू रा दूहा

(मजीठ के पत्तों की तरह दिन दिन पीली पड़ती जा रही है ।)

(३) प्रभू घणां चा पाड़िया, दैत्य बड़ा चा दंत ।

—नागदमण

(प्रभु ने बहुत से बड़े-बड़े राक्षसों के दाँत गिराये ।)

धर चौ बाहर करण नूं, मिलियौ आय मरद्द ।

—प्राचीन

(देश की सहायता करने के लिए वह वीर आ पहुँचा)

हींदूनाथ दिली चै हाटै, पतो न खरचै खत्रीपण

—राठौड़ पृथ्वीराज

(हिंदुओं का नाथ महाराणा प्रताप दिल्ली के बाजार में अपने क्षत्रियत्व को नहीं बेचता ।)

कागळ चौ ततकाळ कृपानिधि, रथ बैठा साँभळि अरथ ।

—वेलि

(पत्र का आशय समझकर कृपानिधि तुरन्त रथ में जा बैठे ।)

(४) अचरज हुवौ लोक अजमेरां, वड दळ देखे बीक तणा ।

—चारण

(बीकाजी की बड़ी सेना को देखकर अजमेर के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ ।)

तिणी वार त्रिया रतनेस तणी, विधि साहस सोल सिंगार बणी ।

—रतन रासो

(उस वक्त रतनसिंह की पत्नी ने विधिपूर्वक सोलह शृंगार किये ।)

वेष नट तणौ खडो बन बीथियाँ, बटपड़ो कुँवर ब्रजराज वाळो ।

—बाँकीदास

(ब्रजराज का कुँवर, लुटेरा कृष्ण, नट के वेष में वन की गलियों में खड़ा है ।

वीरोचद-सुत अहियापुर वारै, रवि सुत तणौ अमरपुर राज

—प्राचीन

(नागलोक में बलि मुझे दूर भगाता है और देवलोक मे कर्ण का राज्य है।)

(५) गणपत हँदा बाप रौ, धवळ उठावै भार।

—धवल-पचीसी

महादेव का बोझ श्वेत वर्ण का बैल उठाता है।)

वाँ हँदी आसा करै, खैराती खटव्रन्न।

—दातार बावनी

(उसका दान लेने वाले षट्दर्शन आशा करते हैं।)

सादूळौ खीजै सुणै, जळहर हंदौ गाज।

—सीह-छत्तीसी

(सिंह मेघ की गर्जना को सुनकर खीजता है।)

तौ दाता हँदै करग, धन ठहरै चित धार।

—दातार-बावनी

(तब मन में समझो कि दाता के हाथ में धन रह सकता है।)

अधिकरण—

रिण नहँ भीनी रुधर सूँ, मद सूँ गोठ मँझार

—मावड़िया मिजाज

(युद्ध में रक्त से नहीं भीगी, किन्तु दावत में मदिरा से भीगी।)

मेवाड़ों तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी।

—राठौड पृथ्वीराज

(उस में मेवाड़ का राणा प्रताप कमल के फूल के समान है।)

बाहर था जै ऊगरै, भीगा मांझ घरेह।

—ढोला मारू रा दूहा

(जो बाहर थे वे भीग गये और मैं घर में भीग रहा हूँ।)

काठी साहँत मूठि मां, कोडी कासी मत।

—ढोला मारू रा दूहा

(वे मुट्ठी मे कसकर पकडते और मै खूब प्रसन्न रहती।)

अरि देखे आरांण मैं, तृण मुख मांझल त्यांह।

—सूर-छत्तीसी

(शत्रु को युद्ध मे देखते ही मुँह मे तिनका ले लेते हैं।)

कीधै मधि माणिक हीरा कुंदण, मिळिया कारीगर मयण।

—वेलि

(कामदेव रूपी कारीगर नें सुवर्ण में हीरे जड़कर बीच में माणिक मिला दिया है।)

पड़े आगि मैं उड्डि जेहा पतग।

—रतन रासौ

(जैसे पतिंगे उड़कर आग में पड़ते हैं।)

सर्वनाम

डिंगल के सर्वनाम शब्दों के रूप बहुत कुछ अपभ्रंश के सर्वनाम शब्दों के रूप में मिलते हैं। हिंदी की तरह डिंगल में भी सर्वनाम शब्दों के रूप लिंग के कारण नहीं बदलते। भिन्न-भिन्न सर्वनामों के रूप इस प्रकार होते हैं।

पुरुषवाचक सर्वनाम (हूं=मैं)—(तॅं=तू)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	हूॅं, म्हैं	म्हे
कर्म	मॅं, हूॅं, मुझ, अम्ह	म्हाँ
संबध	मुझ, मुझ-झ, म्हारो, मो म, अम्हीणौ	म्हारो, अम्हीणौ अम्हाँ

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	तूॅं, तैं थैं,	थे
कर्म	तटॅं	तुम्ह, तुम्हाँ, थाँ
संबध	तुझ, तुझ-झ, थारो, थारी (स्त्री०)	म्हारो, थाँको, थाँके

निश्चयवाचक सर्वनाम (आ=यह)—(वो, सो=वह)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	ओ, ए, एह, आ	औ, इणाँ, यॉं, एह
कर्म	इण, अण, एह, एण, इणने	इण, अण, एह, इणाँने, आँनै
संबध	इणरा, ईंरा,	इणाँरा, ऑंरा यॉंरा

कारक	एकवचन	बहुवचन
	सो, सु, ऊ, उण, त, तिको, तिका, वो, सोइ, तिणि।	
कर्ता		सो, उणाँ, ते, तिके, व तेह तिणाँ, वाँ।
कर्म	उण, तिणि, तेण, त्याँ, ता, तिणने	उवाँ, त्या, ताँह, तिणाँने
संबध	उणरो, तास, तसु, तस, तिणरा	तिणका, ताँहका, तिणाँरा, उणाँरा, वाँरा।

सबंधवाचक सर्वनाम (जो, जिको = जो)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	जो, जिको, जु, जा, जिका, जे, जिण।	जे, जिका, जिकौ, जिणाँ
कर्म	जिण, जेण, जाँ, ज्याँ, जाँह, जे, जिणानै।	जे, जिका, जिकाँ, जिणाँनै
संबंध	जास, जिणरा, जिणरौ, ज्याँरौ, जिए।	जिणाँरा, ज्याँरा, जिणकौ, ज्याँकौ

प्रश्नवाचक सर्वनाम (कुण = कौन)

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	कुँण, कूँण, कवण, को, का, किण	कुण, किणाँ
कर्म	किणनै, किण, किणि, केण, कवण कीनै,	कीनै, कणाँनै
संबंध	कीरा, किणरा, कुणह	किणाँरा

अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' के रूप डिंगल में 'को' 'कोवि' 'कोय' आदि बनते हैं और निजवाचक 'आप' के 'आपाँ, 'आपण, आपणौ, इत्यादि पाए जाते हैं।

विशेषण

विशेषणों के लिंग, वचन और कारक डिंगल में विशेष्य के लिंग वचन और कारक के समान ही होते हैं। स्त्रीलिंग-सूचक विशेषण प्रायः इकारान्त होते हैं। यथा—

> उर चौडी कड. पातळी, झीणीं पाँसळियाँह
> कै मिळसी हर पूजियाँ, हीमाळै गळियाँह ॥

क्रिया

वर्तमान काल

डिंगल में वर्तमान काल दो तरह से व्यक्त किया जाता है। एक तो मूल क्रिया में 'इ'-विभक्ति लगाकर और दूसरा मूल क्रिया के पीछे छै, छूँ, और छाँ लगाकर। जैसे—

(१) चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारेह।

—ढोला मारू रा दूहा

(चुगती है, फिर अपने बच्चों को याद करती है और चुग-चुग कर फिर याद करती है।)

(२) रोकै अकबर राह, ले हिन्दू कूकर लखाँ।

—दुरसाजी

(अकबर हिन्दू रूपी लाखों कूकरों को लेकर रास्ता रोकता है।)

(३) म्हारी आँखड़ली फरकै छै, ढोलो आवसी

—फुटकर

(मेरी आँख फड़कती है, पति आएगा।)

(४) पूजा रै मिसि अम्बिका रै देहरै नगर बाहिरि हूँ आवूँ छूँ।

—वेलि की टीका

(नगर के बाहिर अम्बिका के मंदिर में मैं पूजा के बहाने आती हूँ।)

(५) माणस हवाँत मुख चवाँ, म्हे छाँ कूं झड़ियाँह।

—ढोला मारू रा दूहा

(मनुष्य हो तो मुख से कहे, हम तो कूँझे हैं।)

भूतकाल—

डिंगल में भूतकाल की क्रिया के रूप प्रायः एक वचन में आकारांत और बहुवचन में आकारान्त होते हैं[२९]। जैसे—

(१) भोळा की डर भागियौ।

—सूर्य्यमल

(हे मूर्ख ! किस डर से भाग आया ?)

(२) ऊभी गोख अवेखियौ।

—वीर सतसई

(झरोखे में खड़ी हुई ने देखा।)

(३) ब्रह्मा विसन महेस इन्द्र सुर साथी आया।

—रतन रासौ

(ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र और देवता साथ में आये।)

भविष्यत काल—

डिंगल में भविष्यत काल स्याँ, सी आदि प्रत्यय लगाकर भी बनाया जाता है और 'ला' प्रत्यय लगाकर भी। जैसे—

(१) दिली जीवंतां जदी देखस्यां, जद यांनै देस्यां जोधांण।

फुटकर

---

२९ 'होना' क्रिया के रूप भूतकाल में लिंग-वचन के अनुसार हुओ, हुआ तथा हुई भी होते हैं और थयो, थया तथा थई भी होते हैं। कहीं-कहीं भयो, भया और भई का प्रयोग भी देखने में आता है।

(हम लोग जीते जी दिल्ली तभी देख सकेंगे जब कि इनको जोधपुर मिल जायगा।)

(२) जोडै हरि अटका रहजासी, आसी वटका कुण अरथ।

—फुटकर

(यह जगन्नाथ के अटकों की तरह हो जायगा फिर ये टुकड़े किस काम आवेंगे।)

(३) बूडैला बुध-वायरा, जळ विच छोड जहाज।

—हरिरस

(वे बुद्धिहीन प्राणी समुद्र में नाव से गिरनेवाले मनुष्य के समान संसार-सागर में डूब जायँगे।)

(४) पाकड जम घातेला फाँसी, पापी इण दिन नै पछतासी।

—फुटकर

(यमराज पकड़ कर फाँसी पर चढ़ा देगा। हे पापी! उस दिन तू पछतावेगा।)

पूर्वकालिक क्रिया—

पूर्वकालिक क्रियाएँ डिंगल में प्रायः क्रिया के अन्त में 'अ' 'इ' 'र' 'एवि' 'नै' 'ह' आदि प्रत्यय लगाकर बनाई जाती हैं। जैसे—

पालिअ (पालनकर), ठानि (ठानकर), जायर (जाकर), प्रणमेवि (प्रणामकर), लिखनै (लिखकर), भरेह (भरकर), इत्यादि।

आज्ञार्थ क्रिया—

आज्ञार्थ क्रियाओं के रूप डिंगल में प्रायः मूल क्रिया के अन्त में 'वै' तथा 'जै' प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं। जैसे—

लिखावै, करावै, दिरावै, दीजै, लीजै, पेखिजै इत्यादि।

क्रिया विशेषण

काल वाचक—

आज, अज्ज, कद, कदै, कालै, नत, तडकै, रातै, जद, तद, पछै, हिव, पुणि, अजै, मोड़ो, वेगो, परभातै।

स्थान वाचक—

किह, किहाँ, केथि, कांही, इहाँ, एथि, तिहाँ, उवाँ, जह, जिह, जहाँ, ऊपरै, नीचै, आगै, पाछै, अठै, उठै, जठै, तठै, वार, पार, नेड़ो, कनै, परै,

दूर, दूरो, वांसै, तले, हेटै, नजीक, पाछलौ, आगलौ, पूरबलौ, माथै, विचलौ, आगल ।

रीतिवाचक—

इम, एम, यूं, जिम, जेम, ज्यूं, जूं, किम, केम, क्यू, जं, जेण, केण, तिण, तिम, तिइ, जथा, तथा, कदास, अचाणक हाँ, किरि, झट, नाहक, हकनाक, जेज, तो, पण, पिण, नीठ, अपूठौ, न, नहं, म मॉ, मति, त. अवस, सही, बेसक, कदैक, जदकद ।

परिमाण वाचक—

घणौ, थोड़ो, कॉईक, कित्तौ, बहु, अत, अत्यन्त, भारी, इतरौ, उतरो, जितरौ, ।

डिंगल साहित्य

"साहित्य किसी देश या जाति के काल विशेष के विचारों और भावों का प्रतिबिंब होता है" यह उक्ति डिंगल साहित्य पर भी ठीक-ठीक घटती है। डिंगल साहित्य मे राजस्थान के सैकड़ो वर्षों के संस्कार, उसका संघर्षमय लोकजीवन तथा उसका इतिहास प्रतिबिंबित है और उसमे उसकी भावनाएं व्यक्त हुई हैं। देश-प्रेम, जातीय गौरव तथा आजादी के झंझावात बहुल संदेशों से यह लबालब भरा हुआ है। इस साहित्य में पटरानियो के अट्टहास, नायक-नायिकाओं के गुप्त मिलन और राज-महलो के विलास-वैभव का वर्णन नहीं है। इसमें है रणोन्मत्त राजपूत वीरो, मरणातुर राजपूत महिलाओ और रणांगण की रक्तरंजित हाय-हत्या का भावमय चित्रण। यह साहित्य जीवन का साहित्य है और सदा जीवन को लेकर आगे बढ़ा है। यह ऐसे लोगो का साहित्य है और ऐसे लोगो द्वारा रचा गया है जिन्होंने तलवार की चोटें अपने मस्तक पर झेली है, जीवन-संग्राम मे जूझकर प्राण दिए हैं।

साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ यह साहित्य इतिहास की दृष्टि से भी परम उपयोगी है। पाश्चात्य विद्वानो ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलाई है कि इसमे इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है। परन्तु उनका यह आक्षेप डिंगल साहित्य पर लागू नहीं होता। डिंगल साहित्य उनके इस कथन का अपवाद है। इतिहास निरपेक्ष सामग्री डिंगल मे मिलती है और प्रचुर मात्रा मे मिलती है। बल्कि कहना चाहिए डिंगल मे

ऐतिहासिक महत्त्व

इतिहास संबंधी सामग्री ही का प्राधान्य है। पन्द्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यतक के लगभग चार सौ वर्षों के दीर्घकाल में यहाँ हिन्दू-मुसलमानो में जो अनेकानेक युद्ध हुए और फलस्वरूप भारत-वासियों के राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक विचारों में जो क्रांतियाँ हुई उनका सविस्तर वृत्तान्त यदि कही मिलता है तो डिंगल साहित्य में। परन्तु ऐसे उपयोगी साहित्य की अभी तक उपेक्षा की गई है। भारतवर्ष के मुसलमान कालीन इतिहास पर जितने भी ग्रन्थ अभी तक लिखे गये हैं उनके प्रणयन में मुसलमानी तवारीखों ही से सामग्री ली गई है और डिंगल साहित्य को बिलकुल छोड दिया गया है। अत: ये इतिहास बहुत कुछ अधूरे, भ्रमात्मक, एकपक्षीय और प्राग्भावपूर्ण हैं। मध्य-युगीय भारत का सच्चा इतिहास लिखने के लिए डिंगल साहित्य की छानबीन भी आवश्यक है।

डिंगल की इतिहास विषयक यह सामग्री गद्य और पद्य दोनों में मिलती है। गद्यात्मक सामग्री अधिकतर ख्यात, वात, विगत और पीढी-वंशावलियो के रूप में प्रचलित है। जैसे—

(१) ख्यात[30]—सीसोदियाँ री ख्यात, राठौड़ाँ री ख्यात, कछवाहाँ री ख्यात, मुहणोत नैणसी री ख्यात, महाराजा मानसिंहजी री ख्यात, जोधपुर री ख्यात, उमरावाँ री ख्यात, बीकानेर री ख्यात, देवलियै रा धणियाँ री ख्यात, चहुवाँण सोनगराँ री ख्यात, जाडेचाँ री ख्यात इत्यादि।

(२) वात[31]—राणै उदैसिंघ री वात, हाड़ै सूरजमल री वात, राणाँ कूँभा चितभरमिया री वात, राव बीकैजी री वात, पाबूजी री वात, राव लूणकरण री वात, जैसलमेर री वात, सोढाँ री वात इत्यादि।

(३) विगत—मेवाड़ रा भाखराँ री विगत, सीसोदिया चूडावताँ री साख री विगत, गेहलोता री च्यौबीस साखाँ री विगत, कछवाहा सेखावताँ री विगत, जोधपुर बीकानेर टीकायताँ री विगत, जोधपुर रा निवाणाँ री विगत, गढ कोटाँ री विगत इत्यादि।

(४) पीढी—ईडर रा धणी राठौडाँ री पीढियाँ, राठौड़ाँ री खाँपाँ री

---

३० 'ख्यात' संस्कृत शब्द 'ख्याति' का रूपान्तर है। राजस्थान में यह 'इतिहास' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

३१. राजस्थानी भाषा में 'वात' कहानी को कहते हैं। यह संस्कृत शब्द 'वार्ता' से बना है।

पीढ़ियाँ, हमीरौत भाटियाँ री पीढ़ियाँ, आहाड़ा री पीढ़ियाँ, भायला री पीढ़ियाँ, चद्रावताँ री पीढ़ियाँ इत्यादि।

(५) वंशावळी—राठौड़ाँ री वंसावळी, झाला री वंसावळी, बीकानेर रै राठौड़ राजावाँ री वंसावळी, रजपूता री वंसावळी, उदैपुर रा राजावाँ री वंसावळी, जैसलमेर रा भाटी महारावळ री वंसावळी इत्यादि।

पद्यात्मक सामग्री क्रमबद्ध काव्य ग्रंथों के रूप में भी पाई जाती है और फुटकर कविता के रूप में भी।

क्रमबद्ध ग्रंथों में अधिकांश ग्रंथ इस तरह के देखने में आते हैं जिनके नाम या तो उनके चरित्र-नायकों के नाम के साथ रासौ, प्रकास, विलास, रूपक और वचनिका जोड़कर रखे गये हैं। या उनमें व्यवहृत छंदों के आधार पर रखे गये हैं। यथा—

(१) चरित्र-नायकों के नाम पर रखे गये ग्रंथों के नाम :

(क) रासौ—रायमल रासौ, राणा रासौ, सगतसिंघ रासौ, रतन रासौ, महाराजा श्री सुजाणसिंघजी रो रासौ इत्यादि।

(ख) प्रकास—राजप्रकास, सूरजप्रकास, भीमप्रकास, रतनजस प्रकास कीरत प्रकास इत्यादि।

(ग) विलास—राजविलास, जगविलास, विजैविलास, रतनविलास, अभयविलास, भीमविलास इत्यादि।

(घ) रूपक—राजरूपक, गोगा दे रूपक, राव रिणमल रो रूपक, महाराजा गजसिंघजी रो रूपक, रतन रूपक इत्यादि।

(ङ) वचनिका—अचलदास खीची री वचनिका, राठौड़ रतनसी री महेसदासोत री वचनिका इत्यादि।

(२) छंदों के आधार पर रखे गये ग्रंथों के नाम :

(क) नीसाणी—गोगेजी चहुवाण री नीसाणी, राठौड़ अजबसिंघ गुज्ञा-सिंघोत री नीसाणी, आँबेर रा महाराजा प्रतापसिंघजी री नीसाणी, राव खंगारजी री नीसाणी, नीसाणी वीरमाण री इत्यादि।

(ख) झूलणा—सोढ़ों रा गुण झूलणा, [illegible] घजी रा [illegible] राव सुरताण देवड़ै रा झूलणा, अमरसिंहजी [illegible] दि।

(ग) बेल—राजकुमार [illegible] री [illegible] जी

राणौ उदेसिंघजी री वेल, राठौड़ देईदास जैतावत री वेल, राजा सूरजसिंघजी री वेल इत्यादि ।

(घ) झमाल—बीदावत करमसेण हिमतसिंघोत री झमाल, झमाल जोरसिंघ चाँपावत री, झमाल आउआ री इत्यादि ।

(ङ) गीत—सींधलाँ रा गीत, पँवाराँ रा गीत, जाड़ैचा रा गीत, राठौड़ रामसिंघजी रा गीत, राजा रायसिंघजी रा गीत इत्यादि ।

(च) कवित्त—महाराज अभैसिंघजी रा कवित्त, पँवार अखैराज राठौड़ रतनसी रा कवित्त, जोधपुर महाराज गजसिंघजी रा निर्वाण रा कवित्त, चहुवाण साँवलदासजी करमसिंघजी रा कवित्त इत्यादि ।

(छ) दूहा—पाबूजी रा दूहा, राव अमरसिंघजी रा दूहा, सागै राणौ रा दूहा, हमीर राणौ रा दूहा, समरसी चहुवाण रा दूहा, लाखै फूलाणी रा दूहा इत्यादि ।

इनके अतिरिक्त पाघड़ी, दवावैत, त्रोटक आदि दो-एक अन्य छन्दों में रचे ग्रंथ भी कुछ मिलते हैं ।

ये ग्रंथ भिन्न भिन्न समय और भिन्न भिन्न स्थानों मे लिखे गए हैं पर इनके लिखने का प्रकार लगभग समान ही है । प्रारम्भ में मंगलाचरण और मुख्य-मुख्य देवी-देवताओं और गुरु की स्तुति की गई है। इसके बाद राजवंशावली शुरू होती है जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लेकर ग्रंथनायक तक के राजाओं के नाम गिनाए गए हैं। बीच में कहीं-कहीं बड़े-बड़े राजाओं का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से भी कर दिया गया है । मुख्य कथा चरित्र नायक के जन्म दिन से प्रारम्भ होती है। चरित्र-नायक के युद्ध, उसकी वीरता, उसके आतंक-पराक्रम, उसके बाहुबल और सैन्यबल का बहुत सजीव एवं वीरदर्प-पूर्ण वर्णन इन ग्रंथों में देख पड़ता है। प्राय. ग्रंथ-नायक की किसी बहुत बड़ी विजय अथवा उसकी मृत्यु के साथ ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

फुटकर कविता दोहा, कवित्त (छप्पय) और गीत छन्दों मे लिखी अधिक मिलती है। इस तरह की कविता को राजस्थान में 'साख री कविता (साखी की कविता) कहते हैं। क्योंकि यह किसी प्राचीन घटना आदि के सत्य होने का प्रमाण अथवा गवाही देती है।

फुटकर कविता

राजस्थान में असंख्य वीर एवं दानी पुरुष हो गये हैं और अनेक युद्ध-घटनाएँ घटी हैं। ये फुटकर दोहे, कवित्त और गीत इन महान व्यक्तियों

तथा ऐतिहासिक घटनाओं के छोटे-छोटे फोटोग्राफ है जो थोडी देर के लिए उनके वास्तविक स्वरूप को हमारी आँखों के सामने ला खड़ा करते हैं। किसी में किसी महत्वपूर्ण प्राचीन घटना-तिथि का उल्लेख है तो किसी मे किसी युद्ध का चित्रांकन और किसी में किसी सुपात्र की वीरता-दानशीलता की प्रशसा या कुपात्र की कायरता-कदर्यता की निंदा[३२]। यथा —

दूहा

(क) तेरा सौ तेरा तवाँ, जनम्यौ ऑसळ धाम।
तेरा सौ सैंतीस मैं, कमधज आयौ काम ॥१॥
पनरै से पैंताळवै, सुद वैसाख सुमेर।
थावर बीज थरप्पियौ, बीकै बीकानेर ॥२॥
पत्तौ पावडियाँ लडै, जयमल महलाँ बीच।
रण आँगण कल्लौ लडै केसर हंदो कीच ॥३॥
कट पड़ियौ ठाकर कनै, असमर भडियौ अग।
लडियौ सग सुरताण रै, रूपावत नै रग ॥४॥
देतौ क्रोड-पसाव नित, धिनौ गोड वछराज।
गढ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचौ दीसै आज ॥५॥
महाराज अजमाल री, जद पारख जाणीह।
दुरगो देसा काढियौ, गोलाँ गागाणीह ॥६[३३]॥

---

३२ राजस्थान में कविता दो तरह की मानी गई है (१) सर और (२) विसर। प्रशसात्मक कविता को यहाँ सर और निन्दात्मक कविता को विसर कहते हैं। उद्धृत दोहों में पाँचवा दोहा सर और छठवा विसर है। क्योंकि इन मे क्रमश. गौड वछराज की प्रशसा और महाराजा अजीतसिंह की निंदा की गई है।

३३ स० १३१३ में धांधल के घर जन्म लिया और स० १३३७ में राठोड़ (पाबूजी) काम गया ॥१॥ स० १५४५ वैशाख सुदी दूज शनिवार के शुभ दिन बीकाजी ने बीकानेर को स्थापित किया ॥२॥ पत्ताजी पौटियों पर, जयमलजी महलों मे तथा कल्लाजी रणागण में लड़ रहे हैं और रक्त का कीचड़ हो गया है ॥३॥ अपने ठाकुर के पास कट कर गिर पड़ा और तलवार से उसके शरीर के टुकड़े हो गये। रूपा के वशज को रग है कि वह सुरताण के साथ लड़ा ॥४॥ गौड वछराज को धन्य है कि जो हमेशा क्रोडपसाव अर्थात एक करोड़ रुपये का दान देता है। और जिसकी वजह से आज अजमेर का गढ सुमेर पर्वत से भी ऊँचा दिखाई दे रहा है ॥५॥ महाराजा अजीतसिंह की परीक्षा जब हुई तब उन्होंने दुर्गादास को देश से निकाला और गोलों को गागाणी गाँव दिया ॥६॥

(ख) अलावदी प्रारम्भ, कीध सोनागर ऊपर ।
हुवौ समर तलहटी, जुड़े चहुवाँण मछर भर ॥
सकतीपुर चौ साम, प्राण सुरताँण सँकायौ ।
गाँजै घड़ गजरूप, चीत आलम चमकायौ ॥
रीजियौ राव कान्हड़ रिणह, कौतक रवि-रथ थंभियौ ।
वरमाल कंठ अपछर वरै, साल्ह विवांणौ मालियौ[३४] ॥

गीत

(ग) बूझै पतसाह पता दे कूची
धरा पलटी न कीजै धौड ।
गढ रा धणी कहै गढ माहरौ
चूंडाहरौ न दियै चित्तौड़ ॥१॥
गोळया नाळ चत्रकोट गाजै वणी
हिन्दु तुरक आवटै घणा ।
जगा सुत न दीयै जीवतो
तीजा लोचन पृथी तणा ॥२॥
झटका झड़ां औझड़ा झाडै
अटका अफ्फा रोदै रिमराण ।
ऊभै पतै चढ्यौ नहिं अकबर
पडियै पतै चढ्यौ पतसाह ॥३॥
पतसाहो साल गया घर आडो
मुगला मारण कियौ मनौ ।

---

३४. एक बार सुलतान अलाउद्दीन ने जालोर पर आक्रमण किया। उस समय चौहाणों की सोनगरा शाखा का कान्हडदेव वहाँ का राजा था। इस युद्ध में उसके एक वीर माल्हा ने बड़ी वीरता दिखाई। उसी का वर्णन इस छप्पय में किया गया है।

अलाउद्दीन ने सोनगरे (कान्हडदेव) पर आक्रमण प्रारम्भ किया। तलहटी में युद्ध हुआ। क्रोध में भर कर चौहाण भिड़ गये। दिल्ली के सुलतान के प्राण शंका में पड़ गये। गज-वाहिनी का गजन कर संसार के चित्त को चमत्कृत कर दिया। रण को देख राव कान्हडदेव बहुत प्रसन्न हुआ। कौतुक देखने को सूर्य का रथ रुक गया। गले में माला डाल कर अप्सराओं ने वरण किया। साल्हा विमान में बैठ गया।

उदयसिंह राणौ इम आखै
धरा पलटी न धणी पतौ[35] ॥४॥

अन्य विषय इतिहास संबधी ग्रथों के अतिरिक्त धर्म, नीति, तत्वज्ञान, वृष्टि-विज्ञान, शालिहोत्र इत्यादि कुछ अन्य विषयो पर लिखे ग्रथ भी डिंगल में मिलते हैं। ये ग्रंथ प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के आधार पर रचे गए हैं और विषय की दृष्टि से मौलिक नहीं हैं। परन्तु भाषा-शास्त्र की दृष्टि से बड़े उपयोगी हैं और राजस्थानी भाषा के क्रमिक इतिहास का ज्ञान कराने मे सहायक हो सकते हैं।

डिंगल-काव्य विशुद्ध काव्य की दृष्टि से डिंगल-साहित्य कैसा है, यह बात भी विचार करने योग्य है। आचार्य मम्मट ने काव्य रचना के यश-प्राप्ति, धन-प्राप्ति इत्यादि छह प्रयोजन बतलाए हैं[36] और अधिकतर इन्ही पर नजर रखकर डिंगल काव्य रचा गया है। अतः प्राचीन भारतीय काव्य-परिपाटी के अनुसार यह ठीक है। परन्तु पाश्चात्य काव्य-मर्मज्ञ इसे उचित नही समझते। उनका कहना है कि धन की आशा से, प्रतिष्ठा के लोभ से, श्रोताओं को प्रभावित करने के अभिप्राय से, अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी सासारिक लाभ की इच्छा से जो कविता

३५—स० १६२४ मे मुगल सम्राट अकबर ने चित्तौड़ पर चढाई की। उस समय महाराणा उदयसिंह वहाँ राज्य करते थे। उन्होंने किले की रक्षा का भार पत्ता और जयमल नामक अपने दो सामन्तों को सौंप दिया और खुद पहाड़ों में चले गये। बहुत दिनों की लड़ाई के बाद अकबर जब किले पर पहुँचा तब वहाँ पत्ताजी ने उसका सामना किया। इस गीत मे उसी का वर्णन है।

बादशाह कहता है कि हे पत्ता! पृथ्वी पलट गई है तू विघ्न मत डाल, किले की चाबी मुझे दे दे। लेकिन गढ का स्वामी, चूडा का वशज, पत्ता, कहता है कि गढ मेरा है। और वह चित्तौड नहीं देता है ॥१॥ चित्तौड पर बहुत बदूक-गोलिया गरज रही है। बहुत हिन्दू-तुर्क उबल रहे हैं। लेकिन जग्गाजी का बेटा, जीते जी चित्तौड नही देता है ॥२॥ (खड्ग आदि के) प्रहार की झड़ियों से वह ओझड़िया काटता है, और हठ करके शत्रु के मार्ग को रोके हुए है। पत्ता जब तक डटा रहा, बादशाह किले पर नहीं चढ सका। पत्ता के धराशायी होने पर ही चढ़ा ॥३॥ बादशाह के लिए शल्य और राणा के घर का रक्षक इस पत्ता को मुगलों ने मार डालने का निश्चय किया। राणा उदयसिंह कहता है कि पृथ्वी के पलट जाने पर भी स्वामी पत्ता नहीं पलटा ॥४॥

३६—काव्य यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य. परनिर्वृतये, कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

की जाती है वह कविता कविता नहीं रह जाती, वाग्मिता बन जाती है[37]। इसी बात को गोस्वामी तुलसीदास ने यों कहा है—

"कीन्हे प्राकृत जन गुण गाना, सिर धुनि गिरा लगत पछिताना'

मत यथार्थ है। और इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो डिंगल-काव्य दोष युक्त है। निःसदेह डिंगल में भी कुछ कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने स्वान्त सुखाय रचना की है। किन्तु ऐमे कवियों की सख्या अधिक नहीं है। एक, दो, तीन और बस।

रस

डिंगल कविता प्रधानतया वीर रसात्मक है। दान-वीर, धर्म-वीर, युद्ध-वीर और दया-वीर सभी का इसमें बहुत सजीव और स्वाभाविक वर्णन मिलता है। वीर रस का वर्णन सस्कृत, हिन्दी, वगला, आदि अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी किया है। परन्तु उनके वर्णन में वह ओज और सचाई नहीं है जो डिंगल के कवियों में पाई जाती है। इसका कारण है। डिंगल के कवि निरे कवि न थे, अपितु योद्धा भी थे। युद्ध सबंधी बातों का उन्हें अनुभूत ज्ञान था। इसके विपरीत सस्कृत आदि के कवि कोरे कवि थे और रणभूमि से कोसों दूर किसी शान्त वातावरण मे बैठ केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अपनी कल्पना द्वारा वीर रस के चित्र अकित किया करते थे जो बहुधा अस्पष्ट, अपूर्ण और अस्वाभाविक होते थे। उनकी कल्पना-शक्ति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न रहता था। अतः जिस तरह उपन्यास-कार किया करते हैं उस तरह इन कवियों ने भी रणभूमि की प्रचडता, युद्ध की भयकरता, सेनाओं की विशालता, शत्रु के आतक, हाथी-घोडों की रेल-पेल इत्यादि वाह्य बातों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो किया और बहुत अच्छा किया। परन्तु वीर-वीरागनाओं के मनोभावों का विश्लेषण उनसे न हो सका जो डिंगल के कवियों ने बड़ी मार्मिकता के साथ किया है। उदाहरण लीजिए—

एक बार कोई युवक किसी युद्ध में गया। उसकी माँ उसी युद्ध में स्वयसेविका के तौर पर घायलों को जल पिलाने का काम करती थी। दुपहरी

---

37. When a poet turns round and addresses himself to another person, when the expression of his emotions is tinged also by that desire of making an impression upon another mind, then it ceases to be poetry and becomes eloquence John Stuart Mill

को जब युद्ध समाप्त हुआ तब वह घायलों को जल देने के लिए अपने घर से रवाना हुई। उसके साथ उसकी पुत्रवधू भी थी। पुत्रवधू के सर पर पानी का एक घडा था और माँ के हाथ मे एक करवा। दोनो रणक्षेत्र में पहुँची। माँ को आई देखकर घायल बेटे ने पुकारा—"माँ पानी"। इस पर माँ ने पूछा—"तुम्हारे कितने घाव हैं बेटा"। "सात घाव"—"बेटे ने उत्तर दिया। इतने मे कोई दूसरा घायल चिल्ला उठा —"मेरे दस घाव हैं"। माँ ने जाकर उसे पानी पिलाया। इस तरह माँ अधिक-अधिक घाववाले योद्धाओं को जल देती रही और बेटे की बारी ही नही आई। बेटा घावों की पीड़ा, दुपहर की गर्मी, और मारे प्यास के तडफ रहा था। माँ की तरफ से निराश होकर उसने अपनी स्त्री को इशारा किया। परन्तु वह क्या करती। विवश थी। पानी पिलाने की 'ड्यूटी' माँ की थी। अपनी निःसहायता प्रकट करती हुई वह बोली—

किण विध पाऊँ आणियौ, बोलता जळ लाव।
बाँटै साम बळोबळी, भालाँ हदा घाव[३८]॥

भाव की बड़ी कोमलता और मर्म-स्पर्शिता है इस दोहे मे। रणभूमि की विकरालता, बेटे की बेचैनी, बहू की असमर्थता और माँ की निष्पक्षता का चित्र आँखों के सामने घूमने लगता है। और मन मे माँ के प्रति श्रद्धा, बेटे के प्रति सहानुभूति और पुत्रवधू के प्रति करुणा के भाव उमड़ने शुरू होते हैं।

और भी

तात विदेसाँ आवियौ, कौळं दीठा हाथ।
एण वधाई हूलसै, सुत-बू बळिया साथ।[३९]

किसी वीर युवक का पिता कहीं परदेश में गया हुआ था। कुछ महीनो के बाद वह वापस लौटा। अपने मकान से जब वह कोई चालीस-पचास

---

३८. तुम्हारे यह कहने पर कि मुझे जल पिला, कैसे मै तुम्हे जल लाकर पिला दूं। सास तो एक के बाद दूसरे को भालो के घावों के अनुपात से जल दे रही है।

३९ पिता जब विदेश से आया तब उसने दरवाजे पर हाथ देखे। इस बधाई से कि बेटा और बहू दोनों साथ-साथ जले है वह बहुत प्रसन्न हुआ।

प्राचीन समय में राजस्थान में यह रिवाज था कि जब कोई स्त्री सती होने के लिए अपने घर से रवाना होती तब अपने घर के दरवाजे के दोनों पार्श्व पर कुंकुम भरे पूरे हाथों के चिन्ह लगा जाती थी। बाद में इन कर-चिन्हों पर पन्नी चढा दी जाती थी और लोग इनकी पूजा करते थे। राजस्थान के गाव-नगरों में अनेक घरों के दरवाजों पर ये चिन्ह आज भी ज्यो के त्यों दिखाई देते है।

गज़ की दूरी पर था तब क्या देखता है कि मकान के दरवाजे की दीवार पर दोनों तरफ कुकुम भरे हाथों की छापे लगी हुई हैं। उसने अनुमान लगा लिया कि उसका बेटा कहीं युद्ध मे मारा गया है और उसकी स्त्री उसके साथ सती हुई है। हाथ के चिन्हों द्वारा प्राप्त हुई इस बधाई से वह बहुत उल्लसित हुआ।

दोहा राजस्थान की सस्कृति की जीती- जागता तस्वीर है। बेटा युद्ध में मारा गया इसलिए वह बहादुर। उसकी पत्नी उसके साथ सती हुई इसलिए वह भी बहादुर। दोनों की मृत्यु पर पिता ने हर्ष प्रकट किया इसलिए वह भी बहादुर। अर्थात् सारा घर का घर बहादुर। बात साधारण है। परन्तु बहुत अनूठे ढग से कही गई है। दोहे में 'बधाई' शब्द बड़े मार्के का है। इसने दोहे को सप्राण बना दिया है। घर का बड़ा -बूढ़ा कुछ दिनों के लिए जब कहीं बाहर जाता है और उसकी अनुपस्थिति में उसके घर में पुत्र-जन्म अथवा इसी तरह की कोई खुशी की बात पैदा होती है तो उसकी खबर सुनाने के लिए घरवाले बड़े आतुर रहते हैं, और जब उसके वापस लौटने के समाचार मिलते हैं तो दौड़कर रास्ते में उसे हर्ष-संवाद सुनाते हैं। यहाँ अवसर पुत्रोत्पत्ति का नहीं है, पुत्र की मृत्यु का है। परन्तु एक समय था जब राज़स्थान में युद्ध में मरनेवाले पुत्र की मृत्यु के दिन भी उतना ही हर्ष प्रकट किया जाता था जितना उसके जन्म-दिन। अतः बहादुर पिता के लिए यह अवसर भी खुशी का ही है। परन्तु इसकी खबर देनेवाला अब घर में कोई नही रह गया है। अतः दरवाज़े पर अंकित सती के हाथों के मूक चिन्ह बधाई देने का काम करते हैं। बड़ी सुन्दर कल्पना है।

डिंगल की वीर रसात्मक कविता में एक विशेषता और भी दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत, हिंदी आदि के कवियों ने स्त्री जाति को शृंगार अथवा करुण रस के आश्रय-आलंबन के रुप में ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझकर स्त्री समाज की बड़ी अवज्ञा की है। वीर रस का वर्णन करते समय उनकी आँख हमेशा पुरुष जाति पर गड़ी रही और कभी यह नहीं सोचा कि स्त्रियाँ भी बहादुर होती हैं, उनमें भी वीरोल्लास का अक्षुण्ण प्रवाह प्रवाहित होता है और मरने मारने की इच्छा उनमें भी उतनी ही प्रबल होती है जितनी पुरुषों में। परन्तु डिंगल-कवियों ने उन्हें नहीं भुलाया। पद्मिनी, करुणावती, जवाहर बाई, कृष्णकुमारी आदि वीर नारियों के असंख्य उदाहरण सामने रहते हुए वे भुलाते भी कैसे ? अतः नारी

समाज की वीर भावनाओं को भी उन्होंने अपनी कविता में ला उतारा जो विश्व-साहित्य को उनकी एक अपूर्व देन है। उदाहरण—

हाकलियाँ पाराथियाँ, हियौ ध्रमकै त्याँह।
आभरणौ नहँ बँधियौ, गोरी काळांड़ाँह ॥१॥
मतवाळा घूमै नहीं, नहँ घायल घरणाय।
बाळ सखी ऊ देसड़ौ, भड बापड़ा कहाय ॥२॥
देवै गीधण दुरखडी, समळी चपै सीस।
पंख झपेटाँ पिउ सुवै, हूँ बलिहार थईस ॥३॥
धव घावाँ छकिया घणाँ, हेली आवै दीठ।
मारिगियौ कँकू वरण, लीलौ रग मजीठ ॥४॥
नहँ पड़ोस कायर नराँ, हेली वास सुहाय।
बळिहारी उण देस री, माथा मोल विकाय ॥५॥
पंथी हेक सदेसड़ौ, वावल नै कहियाह।
जायाँ थाळ न वज्जिया, टामक टहटहियाह ॥६॥
घोड़ै चढ़णौ सीखिया, भाभी किसड़ै काम।
बब सुणीजै पार रौ, लीजै हाथ लगाम ॥[४०]॥ ॥७॥

---

४० प्राचीन समय में जब कोई स्त्री सती होने को अपने घर के बाहर निकलती तब उसके सर के बाल खुले रहते थे और उस पर कोई आभूषण नहीं रहता था। इसी भाव को लेकर यह दोहा कहा गया है।

जिनकी हुँकार से बड़े-बड़े बहादुरों के दिल दहल जाते हैं। उनकी स्त्रियां भी अपने काले केशों पर आभूषण नहीं पहिनतीं। (कारण कि सर पर आभूषणों के होने से उनको खोलने में समय लगता है और सती होने में देरी पड़ती है। कवि के कहने का अभिप्राय यह है कि वीर पुरुष की स्त्रियां भी वीर होती हैं। वे भी मरने को पहले ही से तैयार रहती हैं) ॥१॥ हे सखी! उस देश में आग लगा दे जहाँ मतवाले योद्धा नहीं घूमते हैं। घायल नहीं चक्कर खाते हैं और जहाँ बहादुर को 'बेचारा' कहा जाता है ॥२॥ मैं उस स्थान पर बलिहारी जाती हूँ जहाँ गिद्धनी थपथपी देती है। चील सर चापती है और पति पखों की झपेटों मे सोते हैं ॥३॥ हे सखी! पति बहुत से घावों से छके हुए आते नजर आ रहे हैं। रास्ता (रक्त के बहने से) कुंकुम-वर्ण का और उनका श्वेत अश्व मजीठ के रंग का हो गया है ॥४॥ हे सखी! मुझे कायर पुरुषों का पड़ोस अच्छा नहीं लगता। मैं उस देश पर बलिहारी जाती हूँ जहाँ मस्तक मोल बिकते हैं ॥५॥ हे पथी! मेरे पिता को एक सदेशा कह देना-जिस समय मैं पैदा हुई थी उस समय थाली भी नहीं बजी पर इस समय (जब कि मैं सती होने को जा रही हूँ) मेरे आगे ढोल बज रहे हैं ॥६॥ हे भाभी! घोड़े पर चढ़ना किस लिए सीखा था? दुश्मन की बब सुनाई दे रही है। लगाम को हाथ म ले लो ॥७॥

इसके साथ-साथ सेना, युद्ध आदि वीर रस से संबद्ध अन्यान्य ऊपरी बातों का भी डिंगल के कवियों ने बड़ा भव्य, मनोहर और रोमहर्षण वर्णन किया है।

वीर रस की प्रधानता देखकर कुछ लोगो ने यह निष्कर्ष निकाला है कि डिंगल भाषा जितनी वीर रस के लिए उपयुक्त है उतनी दूसरे रसों के लिए नहीं है। परन्तु यह उनकी भ्रान्त धारणा है। वीर रस के अतिरिक्त शृंगार आदि अन्य रसों के निरूपण की क्षमता भी डिंगल मे पूरी-पूरी पाई जाती है और अन्य रसों की भी बड़ी सरस, भावपूर्ण एव विशिष्ट कविता डिंगल में हुई हैं :—

शृंगार रस —

[क] घण चौतरफ घटा घुमसारै। केकी मसत होय कोहौकारै॥
सुजळ अथाह फैलियौ सारै। पण आली कद पीव पधारै॥
उच्चट जीव लग रही उदासी। व्याप अन्त उर बाढ व्यथासी॥
देखू वाट ए री सुण दासी। आ कह री वालम कद आसी॥
निरख रहूँ इकटक नैणा सूँ। बौहौ मनवार करूँ बैणा सूँ [41]॥

[ख] नैण थकाणाँ मग निरख, कई सिधाणा कोल।
पण न थकाणा राज रा, वाट झकाणा बोल॥१॥
मैं जोबन री मार, मदमाती जाणी नहीं।
तिथ तूटै सौ बार, वार न टूटै वींझरा॥२॥
टोळी सूँ टळियाँह, हिरणाँ मन माठा हुवै।
वालम बीछडियाँह, जीवै किण विध जेठवा॥३॥
दुनियाँ जोडी दोय, सारस नै चकवा सुणयाँ।
मिल्यौ न तीजो मोय, जो जों हारी जेठवा॥४॥ ॥[42]॥

---

४१ चारों ओर घनघोर घटा छाई है और मोर मस्त होकर कुहुक रहे हैं। अपार जल सर्वत्र फैल गया है। पर हे सखी! पति कब आएँगे। मन उच्चट गया है। उदासी लगी हुई है और अन्तस्थल में व्यथा की बाढ सी आ गई है। हे दासी! मैं वाट देख रही हूँ। यह वता कि प्रीतम कब आएगे। मै नेत्रों से टकटकी लगाकर उनको देखूँगी। वचनों से बहुत मनुहार करूँगी।

४२ मार्ग देखते-देखते आँखें थक गई हैं और तुम्हारी कई प्रतिज्ञाएँ यों ही निकल गई है। लेकिन प्रतीक्षा करवानेवाले तुम्हारे ये वचन अभी तक नहीं थके हैं॥१॥ मुझ मदमाती ने यौवन की मार को नहीं समझा था। हे वींझरा! तिथि तो सौ बार टूटती

करुण रस

तूँ क्यूँ कूकै कूकडा, झलती मांझळ जोग।
विहँग थनै ई वींटियौ, बाघा तणौ विजोग ॥१॥
की कह की कह की कहूँ, की कह करूँ बखाण।
थारौ म्हारौ नह कियौ, औ बाघा अहनाण ॥२॥
चाल मना रै कोटड़ै, पगदे पॉवडियॉह।
बाघा सूँ बातॉ करॉ, दे गळ बॉहडियॉह ॥३॥
वडा बावडी तणॉह, नीमाणा नीलो थयौ
बाघा वीछडतॉह, साख तणा सूखो नहीं ॥४॥
बाघा जी रै कोटडै, टंकी लाल कबाण
साजनियॉ सालै नहीं, सालै आहीठॉण[४३] ॥५॥

हास्य रस

पिऊ समर मे जावता, पाछा गया पधार।
मॅडियौ दीठौ भींत पर, भाला सहित सवार ॥१॥
पीव इमा रण चढ़िया, हथ लीधी तरवार।
दीठो तन री छाँहिली, ऊभा पाड़ै वार [४४] ॥२॥

है पर वार नहीं टूटता ॥२॥ हे जेठवा ! अपनी टोली से बिछुडते हुए हिरणों के भी (जो पशु हैं) मन उदास हो जाते है तो फिर मनुष्य योनि वाली मैं अपने वालम के बिछुडने पर कैसे जीवित रह सकती हूँ ॥३॥ हे जेठवा ! इस ससार मे जोडी दो ही की सुनी है। सारस की और चकवे की। सारे ससार को खोज-खोजकर हार गई पर तीसरी नहीं मिली ॥४॥

४३ हे मुर्गे ! इस अर्द्ध रात्रि में तू क्यों कुरलाहट कर रहा है। क्या तुझे भी बाघजी के वियोग ने घेर लिया है ॥१॥ मैं अब क्या-क्या कहूँ और बाघजी का क्या बखान करूँ उसकी तो पहिचान ही यह थी कि वह किसी वस्तु के लिए यह मेरी और यह तेरी ऐसा नहीं कहता था ॥२॥ हे मन ! इन सीढियों पर पैर रखकर कोटडे को चल। वहाँ पर बाघजी के गले मे बाहें डालकर बातें करेंगे ॥३॥ हे बावडी के ऊपर वाले निर्लज्ज बरगद ! बाघजी का चिरवियोग होने पर भी तेरी शाखा और तना सूखे नहीं ? और तू हरा-भरा ही है ॥४॥बाघजी के कोटड़े मे उनकी लाल कमान टगी हुई है। मित्र का वियोग इतना नहीं सताता जितना कि उसका स्थान सताता है ॥५॥

४४ (किसी कायर की पत्नी कहती है) मेरे पति युद्ध में जा रहे थे सो वापस लौट आए। क्योंकि रास्ते में कहीं दीवार पर उन्होंने भाले सहित सवार का चित्र देख लिया ॥१॥ पति ने हाथ में तलवार ली और रण के लिए चढे। परन्तु अपनी छायाकृति देख खडे ? सहायतार्थ चिल्लाने लगे ॥२॥

भयानक रस

चहूँ चक्क चलचलिय, सेस चलचलिय सहस सिर।
कमठ पीठ कलमलिय, थहण दलमलिय सुचर थिर ॥
दहले दिग्गज दिसा, मेर मरजादा मुक्किय ।
अदल बदल जल उदध, चडि सिध आसन चुक्किय ॥
भयभीत हुआ चौदह भुवण, स्रवै गरभ तिय दिस दसिय।
रघुनाथ कहो सझ डबर रिण, कमर आज किण पर कसिय[४५]॥

अद्भुत रस

सीस सरग सातमें, परग सातमें पयालै।
अरवण साते उदर, विरथ रोमाच विचालै ॥
नदी सहस नाडियाँ, प्रगट परवत मसपूरज ॥
श्रुत दिस पवन उसासे, सकल लोयण ससि सूरज ॥
सिव सूँ उमँग पूछै मगत, इचरज अत आवत यहै।
ऊ कहो मोहि प्रभु सत उर, रात दिवस किण विध रहै[४६]।

रौद्र रस

विस्वामित्रेस एण वात. कोपियौ भयकरा।
गिरा तरास रा गंभीर, धूजवै वसूधरा ॥
रोमंच अंग धोम रूप, ब्रह्म तेज में वणै।
जटा छटा छटा जडागि, आगि नेत्र ऊफणै[४७] ॥

---

४५ हे रघुनाथ! बताइए आज आपने यह आडंबर सजाकर युद्ध के लिए किस पर कमर बाँधी है जिससे चारों दिशाएँ चलायमान हो गई हैं। शेषनाग के हजार मस्तक सलसला गए हैं। कच्छप की पीठ कलमला गई है। चराचर जीवों के स्थान दहल गए हैं, दिशाओं के हाथी डर गए हैं। सुमेर पर्वत ने अपनी मर्यादा छोड दी है। समुद्र का जल उथल-पुथल हो गया है। चंडी और सिद्धों के आसन हिल गए हैं। चौदह भुवन भयभीत हो गए हैं और गर्भवती स्त्रियों के गर्भ गिर गए हैं।

४६ पार्वती शिव से पूछती है कि जिस प्रभु का मस्तक सातवें स्वर्ग में है। चरण सातवें पताल में हैं। सातों समुद्र जिसके पेट में हैं। बीच-बीच के वृक्ष जिसकी रोमावलि है। हजारों नदियाँ जिसकी नाडियाँ है। पर्वत जिसकी हड्डियाँ है। दिशाएँ कान हैं। पवन जिसका स्वासोसास है कला सहित चंद्रमा और सूरज जिसके नेत्र है। वह सन्त पुरुषों के हृदय में रात-दिन कैसे निवास करता है।

४७ इस बात से विश्वामित्र को भयंकर क्रोध आ गया। उनकी गंभीर वाणी के त्रास से पृथ्वी कपायमान होने लगी। रोमाच हो आया और ब्रह्मतेज युक्त उनके शरीर ने (धोम) अग्नि का रूप धारण कर लिया। उनकी जटा दीपक ज्योति के समान बिखर गई और आँखों से आग उफनने लगी।

बीभत्स रस

करै किरमाळ वहै तिण काळ। कटै भड़पाळक भाळ कपाळ।
कटै जरदाळ बढै छक डाळ। रुळै वरमाल ढुळै रुहिराळ।
महेस कपाळ चणै कज माळ। चलै रत खाळ तठै पद चाल।
धड़े लगि सार उठै रत धार। उगी फळ बिम्र कि कंब अपार।।
हुए इक सत्थ विना खग हत्थ। मिलै लथवत्थ विना के मत्थ।
रड़ब्बड़ मुड पडै चडि रुड। तिसा विण मुड वणै गजतुंड।।
हिचै नर वीर खगा कर हाक। छकी रिण चौसठ जोगण छाक[४८]।

शान्त रस

थारी नहॅं देह परवार नं थारौ, वित थित घर थारौ नहॅं वेक।
सुत पित मात वडाणै सारै, हटवाड़ा रौ मेळो हेक।।१।।
काचौ पिंड कुटुम धन काचौ, सह काचौ ससार सपेख।
भाईबँध काचा रै भाया, सपना री दौलत स विसेख।।२।।
काया धन सुत कलत्र कारमो, खलक कारमो वाजीगर खेल।
दीसण तणौ चलाचल दीसै, औ सारौ पाणी ऊभेल।।३।।
ओहला तिर तिर वह आया, करमा वस वन वन रौ काट।
करम कमाई भुगत कानियाँ, वहणौ उठ आया जिण वाट[४९]।।४।।

---

४८ उस समय हाथ में तलवार चलती है। सेनापतियों के ललाट और कपाल कटते हैं। कवच वाले वीर कटते हैं और हाथी कटते हैं। वरमाला पटती है और रक्त बहता है। अपनी माला के लिए शिव कपाल चुनते हैं। रक्त का प्रवाह बहता है वहा पाव फिरते है। धड पर तलवार के लगने से रक्त की धार उठती है, मानों विबफल की टहनी उग रही है। कई योद्धा एक साथ बिना खड्ग और हाथ के हो जाते है। और कई बिना मस्तक के भी गुत्थमगुत्था करते हैं। रुण्ड-मुण्ड इधर उधर लुढकते और पटते हैं। उसी तरह हाथियों के मस्तक बिना सूँडों के हो जाते है। वीर पुरुष हुँकार करके तलवारों से युद्ध करते हैं। चौसठ योगिनियां रण-मद से तृप्त हो गई हैं।

४९ देह तेरी नहीं है न परिवार तेरा है। धन, स्थिति और घर को अपने मत समझ। बेटा, माता-पिता और बडे सब एक हटवाटे का मेला है।।१।। शरीर कच्चा है, कुटुम्ब और धन कच्चा है। सारे ससार को कच्चा मान। हे भाई! भाईबंद कच्चे हैं। विशेष कर दौलत एक सपना है।।२।। शरीर, धन, सुत-कलत्र एक कारवाँ है। ससार एक कारवाँ, बाजीगर का खेल है।। चल और अचल जितना भी दिखाई देता है वह सब पानी की लहर के समान अस्थायी है।।३।। बहुत से तैर-तैरकर पास आ गये है। कर्मों के वशीभूत तू वन-वन का काठ हो रहा है। हे कानियाँ! कर्मों की जो कमाई की है उसे भोग। उठ, जिस रास्ते से आया है उसी से वापस चलना है।

अलङ्कार

डिंगल कविता सीधी-सादी कविता है। इसमें अलकारों की प्रधानता नहीं है, भाव या अर्थ की प्रधानता है। अलकारों का प्रयोग भी डिंगल के कवियों ने किया है परन्तु बहुत थोड़ा और सयम के साथ। अलकार ज्ञान-प्रदर्शन के हेतु भाव को भ्रष्ट करने की प्रवृत्ति इनमें कहीं दिखाई नहीं देती।

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्य मूलक अलकार डिंगल में अधिक देखने मे आते हैं, खासकर उन स्थानों पर जहाँ सेना, युद्ध, प्रकृति और रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। सागरूपक डिंगल कवियों के विशेष रूप से बहुत सुन्दर बन पडे हैं। इनमें बडी काति, स्वाभाविकता और पूर्णता है। उदाहरण—

गीत छोटो सणोर

(१) पो कीरत बीज ।खेत रजपूती
दाह- सत्रा उर खात दियौ।
हळ भालौ करता बड़ हाळी
करसण- आरम्भ गजब कियौ ॥१॥
काकळ प्रधळ बाहणी काढै
महपत सबळ घणा दळ माण
सन्नह र डगळ किया सह सूधा
दळ चाउर फेरै दइवांण॥२॥
अरि अळियौ जड़ हूत उपाडै
साकुर धोरी हॉक सरै।
ल्हास[५०] करै फौजा बड़ लगर
कीध नीनाणी समर करै ॥३॥
लंगरवत दूल्हावत लाला
सुपह दात फरसा कर सार।
सर डूंचण दौष्या रण सरसा
बड़ करसा झोका इण वार ॥४॥
पाहड़ धरा अवर कुण पूगै
जुगतहरा हासल द्री जोड़।

---

५० खेती के काम में सहायता देने के लिए बुलाए हुए अवैतनिक व्यक्तियों को जो खाना दिया जाता है वह ल्हास कहलाता है। इसी का दूसरा नाम हलमा भी है।

रस आई जाणी रजवाड़ा
रजवट री खेती राठोड[५१] ॥५॥

कवित्त

(२) भड़ धड पाळ प्रबध, अग छंग किया तरोवर।
रोहर नीर सम भरे, मंछ नाचत सरोवर ॥
सीस कँवळ फूलियौ, चवर सेवाळ परठ्ठै।
भँवर ग्रीध भणहणै, हंस राता कर दिठ्ठै ॥
सुण सूर चप रिड़माल सुत, काळीकी खप्पर भरै।
सत दूण सगण पडीर जिम, रिण ताळा मजण करै[५२] ॥१॥

शब्दालंकारा में वैणसगाई डिंगल का एक अत्यन्त लोकप्रिय अलकार रहा है। यह एक प्रकार का शब्दानुप्रास है। परन्तु संस्कृत-हिंदी के अलंकार-ग्रंथों में इसका नाम नहीं मिलता। यह डिंगल का अपना अलकार है। डिंगल के रीतिग्रंथों में इसकी बडी महिमा गाई गई है और कहा गया है कि

---

५१ पृथ्वी में कीर्ति बीज है, रजपूती खेत है और शत्रुओं के हृदय की दाह खाद है। हे बडे खेतिहर! भाले को हल बनाकर तूने गजब की खेती करना प्रारम्भ कर दिया है ॥१॥ युद्ध में जबरदस्त सेना लेकर, बहुत से बलवान राजाओं की सेना का मान-मर्दन कर, तूने शत्रु-रूपी समस्त ढेलों को सीधा कर दिया है और हे श्रेष्ठ! उन पर अपनी सेना का पहटा फेर दिया है ॥२॥ अश्वरूपी बैलों को हाककर तू ने शत्रु-रूपी कूडा-कर्कट को जड से उखाड दिया है, बडी सेना की ल्हास बनाकर तू ने समर-रूपी निराई कर टाली है ॥३॥ हे सेनाओं से युक्त! दूलहा के पुत्र! राजा लालसिंह! तेरे हाथ में तलवार रूपी दाँती-फरसा है। तू रण में शत्रुओं के सरों को दबानेवाला है। हे बडे कृषक! इस बार तुझे धन्य है ॥४॥ हे जुगतसिंह के पोते! ऐसी पहाडी धरती तक और कौन पहुच सकता है। और कौन तेरे हासिल की बराबरी कर सकता है। तेरी खेती में रस आया, यह सब रजवाडों ने जान लिया है। हे राठौड़! यह रजपूती की खेती है ॥५॥

५२ शत्रुओं के अगों को वृक्षों को छांगने के समान काट-काटकर तालाब की पाल के समान ढेर लगा दिया है। जिसमें पानी के स्थान पर रक्त भरा हुआ है। वीरों के टूटे हुए अंगों के टुकड़े मछलियों की भाँति उसमे नाच रहे हैं। उनके सिर फूले हुए कमल के समान और केश सिवार के समान शोभा दे रहे है। गिद्ध-रूपी भौंरे भिनभिना रहे हैं, उनके हाथ प्रसन्न चित्त हस के समान दिखाई दे रहे हैं। रिणमल के पुत्र शूरवीर चाँपा के युद्ध की प्रशसा सुन कालिका खप्पर भर रही है। और चौदह ही गण निरतर पानी के अन्दर रहने वाले कमल के समान स्नान कर रहे हैं।

जिस स्थान पर वैणसगाई सघटित हो जाती है वहाँ फिर अशुभ गण, दग्धाक्षर इत्यादि के दोष नही रह जाते—

> आवै इण भाषा अमल, वयण सगाई वेस।
> दग्ध अगण बद दुगण रो, लागै नहँ लवलेस ॥
> खून कियाँ जाणौ खलक, हाड वैर जो होय।
> वैण सगाई वयण तो, कल्पत रहै न कोय ॥

वैणसगाई 'वैण' और 'सगाई' इन दो शब्दों से मिलकर बना है और इसका अर्थ होता है, वर्ण का सबध या वर्ण द्वारा स्थापित सबध। वैण-सगाई का साधारण नियम यह है कि छद के किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रारभ जिस वर्ण से हुआ हो उसके अतिम शब्द का प्रारभ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। जैसे—

> (१) सखी अमीणो साहिबौ, सूर धीर समरत्थ।
> जध मे वामण डड जिम, हेली बाधै हत्थ ॥
> (२) दाटक अनड़ दड नहँ दीधौ
> दोयण धड़ सिर दाव दियौ।
> मेळ न कियौ न्याय विच महला
> कैलपुरै खग मेळ कियौ ॥

वैणसगाई के सात भेद माने गये है जिनमे तीन मुख्य हैं—अधिक, सम और न्यून। इनको क्रमश. उत्तम, मध्यम और अधम भी कहते हैं।

(१) अधिक—जहाँ चरण के पहले शब्द और अन्तिम शब्द के आदि के वर्णों को मिलाया जाय। यथा—

> विकट करो तीरथ वरत, धरा भेप के धार।
> विना नाम रघुवीर रे, परत न उतरै पार ॥

(२) सम—जहाँ चरण के प्रथम शब्द के आदि के अक्षर और अतिम शब्द के मध्य अक्षर का मेल किया जाय। यथा—

> नाम लियाँ थी मानवाँ, सरकै कलुष विसाल।
> मह जैसे मेटै तिमिर, रसम परस किरसाळ ॥

(३) न्यून—जहाँ चरण के आदि के और अत के अक्षरों को मिलाया जाय। यथा—

मरद जिके संसार में, लखजै जीव विसाल ।
रात दिवस रघुनाथ रा, लेवै नाम रसाल ॥

डिंगल के रीति ग्रन्थों मे 'वैणसगाई' का निर्वाह न होना कोई दोष नहीं माना गया है। परन्तु प्राचीन कवियों ने और विशेषकर मध्यकालीन कवियों ने, इसका ऐसी कट्टरता से पालन किया कि परवर्ती कवियों के लिये यह एक अनिवार्य नियम सा बन गया, और छोटे-बडे सभी कवि इसका निर्वाह करते रहे। यदि किसी स्थान पर वैणसगाई का निर्वाह किसी कवि से न होता तो वह काव्य-दोष तो नहीं माना जाता था परन्तु उस कवि की कवित्व-शक्ति की कमजोरी का सूचक अवश्य समझा जाता था। बूंदी के कविराजा सूरजमल पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पहले पहल इस बात का अनुभव किया कि वैणसगाई एक प्रकार का कृत्रिम बंधन है जो न केवल कवि-कल्पना की स्वाभाविक गति को बाधा पहुँचाता है, बल्कि उसकी वजह से भाव के स्पष्टीकरण में भी कठिनाई होती है, और कभी-कभी रसोद्रेक को भी आघात पहुँचता है। अतएव उन्होंने इसकी उपेक्षा करना प्रारंभ किया। परन्तु अपने समकालीन कवियों के रोष का भय उन्हें भी था। इसलिए अपनी 'वीर सतसई' में यह दोहा लिखकर उन्होंने अपनी सफाई दी—

वैण सगाई वाळियाँ, पेखिजै रस पोस ।
वीर हुतासण बोळ मे, दीसे हेक न दोस[५३] ॥

सूरजमल अपने समय मे राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवि थे और राजस्थान के कवि-समाज पर उनका बड़ा दबदबा था। अतः उनकी देखादेखी दूसरे लोग भी वैणसगाई के प्रयोग में कुछ ढिलाई करने लगे। परन्तु इसका प्रयोग बिलकुल बंद फिर भी नहीं हुआ। सूरजमल्ल के पहले यह बात थी कि वैणसगाई के बिना डिंगल कविता की कल्पना ही नही की जा सकती थी। वैसी बात तो फिर नहीं रह गई। लेकिन वैणसगाई का निर्वाह करनेवाले कवियों को तरजीह फिर भी दी ही जाती थी जो प्रवृत्ति आज भी कुछ लोगों में देखी जाती है। और डिंगल के गीतों में तो वैणसगाई का पालन आज भी उसी कठोरता से किया जाता है जैसा प्राचीन-काल मे कभी किया जाता था।

---

५३ वैणसगाई के नियम को जला देने से वीर रस का पोषण ही दिखाई देता है। उस हुतासन (अग्नि) के रंग में दोष तो एक भी दिखाई नहीं देता।

छन्द

संस्कृत-हिन्दी में प्रयुक्त गाहा, पद्धरि, मुक्तादाम, भुजंगप्रयात तोमर, त्रोटक, इत्यादि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध प्रायः सभी छंदों का प्रयोग डिंगल के कवियों ने भी किया है। परन्तु दोहा, कवित्त (छप्पय), नीसाणी, भूलना, कुंडलिया, दवावैत, वचनिका, झमाल, बेअक्खरी और गीत छंदों का प्रयोग अधिक देखने में आता है। इनमें से भी दोहा, कवित्त और गीत का प्रयोग विशेष रूप से बहुत ज्यादा हुआ है।

दोहा

दोहा एक मात्रिक छन्द है। राजस्थान में यह 'दूहो' कहलाता है। इसका बहुवचन 'दूहा' होत है। हिंदी में 'दोहा' एक ही प्रकार का माना गया है। परन्तु डिंगल में इसके पाँच भेद बताए गये हैं—दूहो, सोरठियो दूहो, बड़ो दूहो, तूंवरी दूहो और खोड़ो दूहो।

(१) दूहो—इसमें चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण में १३। १३ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११। ११ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

जिण वन भूल न जावता, गैंद गिवल गिड़राज।
तिण वन जबुक ताखड़ा, ऊधम मडै आंज॥

(२) सोरठियो दूहो—यह हिंदी का सोरठा है। डिंगल के कवियों ने इसकी बडी प्रशंसा की है। इसके पहले और तीसरे चरण में ११। ११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे में १३। १३ मात्राएँ होती हैं। यथा—

अकबर समंद अथाह, सूरापण भरियौ सजळ।
मेवाडौ तिण मॉह, पोयण फूल प्रतापसी॥

(३) बड़ो दूहो— इसे सॉकळियो दूहो भी कहते हैं। इसके पहले और चौथे चरण में ११। ११ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण में १३। १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

रोपी अकबर राड, कोट झड़ै नहँ कॉगरै।
पटकै हाथळ सीह पण, बादल ह्वै न बिगाड़॥

(४) तूवेरी दूहो— इसके पहले और चौथे चरण में १३। १३ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे चरण में ११। ११ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

मेवा तजिया महमहण। दुरजोधन रा देख।
केळा छोत विसेख, जाय विदुर घर जीमिया॥

(५) खोटा दूहा—इसके पहले और तीसरे चरण में ११। ११ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे में क्रमश. १३ और ६ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

नाडी भरियौ नीर, टाबरियौ भूलण गयौ।
तरै न पूगौ तीर, वो डूबौ ॥

कवित्त

संस्कृत मे यह षट्पदी और हिंदी में छप्पय कहलाता है। हिंदी में एक ही प्रकार का छप्पय प्रसिद्ध है। परन्तु डिंगल मे इसके तीन भेद कहे गये हैं : (१) कवित्त (२) सुध कवित्त और (३) दोढ़ा कवित्त।

(१) कवित्त—इसमे छह चरण होते हैं जिनमें पहले चार चरण रोला के और शेष दो दोहा के होते हैं। जैसे—

हहो करै हित हाण, भभा तन व्याध जगावे।
धधो राज भय धरै, ररो धन नास करावै॥
घघो चरण घट धार, त्रिफल नर नर्नो नमाड़ै।
खय जस करै खकार, भभो परदेस भमाड़ै॥
अक आठ कहिया असुभ, चित धुर भरो विचार।
अवीभ ईस गुण गावतॉ, लगै न दोस लगार॥

(२) सुध कवित्त—यह हिंदी का छप्पय है। इसमे भी छह चरण होते हैं, पहले चार रोला के और अन्तिम दो उल्लाला के। जैसे—

एक पड़ै ऊपड़ै, रध ऊधड़ै वकतर।
सार वहै सूरमा, पार विण छूटै पजर॥
एक पहर नभ अरक, ईस रहियौ अचरज्जै।
निरख काळ नचियौ, धमै खग चाल सहज्जै॥
आवरत जुद्ध परखै अमर, हरखै रिख नारद हर।
कमधज निहट्टै किरमरा, अत जुटै खूटै असुर॥

(३) दोढ़ो कवित्त—इसमे आठ चरण होते हैं। इनमें पहले छह चरण रोळा के और बाद के दो उल्लाला के होते हैं। जैसे—

प्रथम लाख समपियौ, कवी बारट सकर कर।
लखपति बारट लाख, दीध दूजो करि डबर॥
तीजौ लख तिण वार, अजा भादा करि अप्पै।

भणि ताराचँद भाट, मौज लख चवथ समप्पै ॥
पात नाम भट गोप, करै जस प्रगट प्रकासा ।
मौज लाख पाचमौ, जेण बगसै महराजा ॥
पुह सूर करै रूपक परख, अवे कुरब बहो कीत अरि ।
छत्रपति लाख दीधौ छठौ, कवियां भानीदास करि ॥

गीत नाम से प्रायः उस पद्यात्मक रचना का भान होता है जो गाई जाती है। परन्तु डिंगल भाषा के गीत दूसरी तरह के हैं। ये गाये नहीं जाते विशेष ढग से पढे जाते हैं। और इनके लिखने की भी, एक खास शैली है। एक गीत में तीन या तीन से अधिक पद होते हैं। प्रत्येक पद (stanza) दोहला कहलाता है। पूरे गीत में एक ही घटना अथवा तथ्य का वर्णन रहता है जिसे सभी दोहलों में प्रकारान्तर से दोहराया जाता है। पहले दोहले में जो बात कही जाती है वही दूसरे मे भी रहती है। परन्तु दोहराई इस तरह मे जाती है कि पढने व सुननेवालों को उसमें पुनरावृत्ति दिखाई नहीं देती और उसका प्रभाव उन पर अधिकाधिक दृढ एव गहरा होता जाता है। नमूने के तौर पर एक गीत यहाँ दिया जाता है :—

गीत (margin)

गीत

पाताळ तठै वळि रहण न पाऊ ।
रिध माडे स्रग करण रहै ॥
मो म्रितलोक राइसिंघ मारै ।
कठै रहूँ हरि, दळिद्र कहै ॥१॥
वीरोचंद–सुत अहिपुर वारै ।
रवि–सुत तणौ अमरपुर राज ॥
निधि–दातार कलावत नरपुर ।
अनंत रौर गति केही आज ॥२॥
रयण- दियण पाताळ, न रखै ।
कनक–वरण रूधौ कविळास ॥
महि पुडि गज–दातार ज मारै ।
विमन. किसै पुडि माडू वास ॥३॥
नाग अमर नर भुवण निरखता ।
हेक ठौड़ छै, कहै हरि ॥

घर अरि नान्हा सिंघ घातिया।
कुरिंद, तठै लाइ वास करि[५४] ॥४॥

इस गीत में बीकानेर के महाराजा रायसिंह की दानशीलता का वर्णन है। यही इसका केन्द्रीय भाव है। इसी को शब्दान्तर के साथ चारों दोहलों में दोहराया गया है जो गीत-रचना के नियमानुसार आवश्यक है। यदि कवि एक ही बात को इस प्रकार दूसरे शब्दों में पुनरावृत्ति न कर सके तो उसकी रचना साहित्य की दृष्टि से हीन श्रेणी की समझी जाती है।

राजस्थान में एक कहावत प्रसिद्ध है जिससे गीत-रचना की महिमा और लक्ष्य का पता लगता है। "गीतडा कै भीतडा" अर्थात् मनुष्य का यश या तो गीतों से अमर रहता है या देवालय, जलाशय आदि बनवाने से। अतः मानव-कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के अभिप्राय से लिखे गए गीत डिंगल में हजारों ही मिलते हैं और यह डिंगल साहित्य की प्रमुख विशेषता है। उत्तरी भारत की अन्य किसी भाषा में इस तरह के गीत नहीं पाए जाते। कहते हैं कि दक्षिण भारत के मलाबार प्रान्त की भाषा मलयाली में इनसे मिलते-जुलते कुछ गीत प्राप्त होते हैं।

डिंगल में गीत भक्ति, शृंगार आदि अनेक विषयों पर रचे गये हैं। परन्तु वीर रस के गीतों की संख्या बहुत अधिक है। प्राचीनकाल में इन गीतों को सुनकर वीर पुरुष पतंगों की तरह रणाग्नि में कूद पडते थे और वीरांगनाएँ जौहर-ज्वाला में बैठ जाती थीं। इस तरह के गीत लिखनेवाले अब राजस्थान में गिने-चुने रह गए हैं और ठीक तरह से रिसाइट करनेवाले भी दो चार ही हैं। यह कला अब दिन-दिन नष्ट हो रही है।

५४— पाताल में बलि है इसलिए मैं वहाँ नहीं रह पाता हूँ। स्वर्ग में रिद्धि सहित कर्ण रहता है। इस मृत्युलोक में मुझे रायसिंह मारता है। दारिद्र्य कहता है कि हे हरि! आप ही बताइए अब मैं कहां रहूँ ॥१॥ नागलोक में विरोचन का पुत्र बलि मुझे दूर भगाता है। देवलोक में सूर्य के पुत्र कर्ण का राज्य है। नरलोक में कल्याणसिंह का पुत्र, निधि दातार (रायसिंह) है। हे अनन्तदेव मेरी आज अन्यत्र कहाँ गति है? ॥२॥ पृथ्वी का दान करने वाला बलि मुझे पाताल में नहीं रखता। स्वर्णदान करनेवाले कर्ण ने मेरे लिए स्वर्ग का द्वार बंद कर रखा है। इस पृथ्वी मंडल पर हाथियों का दान देनेवाला रायसिंह मुझे मारता है। हे विष्णु, मैं किस लोक में अपना निवास बनाऊँ ॥३॥ नागलोक, अमरलोक एवं नरलोक का निरीक्षण करने के बाद हरि कहते हैं कि अब एक स्थान बाकी है। हे दारिद्र्य! तू रायसिंह द्वारा परास्त शत्रुओं के घरों में जाकर वास कर ॥४॥

कहा जा चुका है कि ये गीत रिसाइट करने के लिएँ हैं। इनका सौन्दर्य और चमत्कार अधिकतर ठीक तरह से रिसाइट करने पर निर्भर रहता है। पत्रारूढ होते ही इनका सारा ओज एव चमत्कार नष्ट हो जाता है। प्रायः देखा गया है कि जो गीत लिखित रूप मे बहुत साधारण कोटि का प्रतीत होता है, वही जब किसी योग्य व्यक्ति के मुँह से बाहर निकलता है तब दूसरा ही दिखाई देने लगता है। अतएव क़ागज़ पर पढकर इनकी अच्छाई-बुराई के विषय में सम्मति देना अनुचित है, जैसा कि कुछ लोगों ने किया है।

गीतों के कई भेद हैं। डिंगल के भिन्न-भिन्न रीति ग्रन्थों मे इनकी सख्या भिन्न भिन्न बतलाई गई है। उदाहरणार्थ रणपिंगल में ३३, रघुनाथरूपक में ७२ और रघुवरजसप्रकास में ६४ प्रकार के गीतों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है। अतिम ग्रन्थ रघुनाथरूपक के रचयिता किशनजी आढ़ा ने यह भी लिखा है कि गीतों के नाम ६६ सुने गए हैं। परन्तु देखने मे नहीं आए और-जब देखा नहीं है तब उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है :—

वसंत रमण आदक बरतावै, गीत निनाणु नाम गिणावै।
सुणिया दीठा जके सखी जै, विण दीठा किण भात वदीजै॥

इन ६४ प्रकार के गीतों में विशेष प्रचलित गीत 'छोटो साणौर' है। डिगल के कवियों ने इसी का व्यवहार अधिक किया है। अतः इसके स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। इसके प्रत्येक दोहले में चार चरण होते हैं, और पहले तथा तीसरे चरण मे १६। १६ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में यदि अंत में गुरू हो तो १४। १४ मात्राएँ और लघु हो तो १५।१५ मात्राएँ होती हैं। परन्तु प्रथम दोहले के प्रथम चरण में १८ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

कर घाते मूंछ कहौ की ऊपर
ठाकर बोरा बाद ठहै।
राजकुळां पैंतीस रायमल
करवा ओळग मेळ कहै॥१॥
कनक तुरी डॅड लै कुंभावत
राया माल मकर मन रीस।
मंडलवै मेवाड़ नरेसुर
पाय विलग्गा कुळ पैंतीस॥२॥

बळे परहरै वना वध बोलै
सनस असा राखै धर सूत ।
राण तुहाली पोळ गयमल
राजधणी सेवै रजपूत ॥३॥

काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि करनेवाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल में काव्य-दोष ग्यारह प्रकार के माने गए हैं—

काव्य दोष अध, छवकाळ, हीण, निनंग, पागळौ, जातविरोध, अपस, नाळछेद, पग्वतूट, बहरौ और अमंगळ।

(१) अध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके और किसी चरण में उक्त विषय सम्मुख और दूसरे में परामुख हो तो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे—

दिलड़ा ! समझ रै सगळौ जग दाखै
पछै घणौ पिछतासी ।
पुरुष जनम कद तू पामैला
गुण कद हरि रा गासी ॥१॥
मात-पिता बंधव दौलत-मद
सुत त्रिय जोड़ संधाणौ ।
माया रा आडंबर मांहै,
बदा ! केम बंधाणौ ॥२॥
समुझै क्यूं न अजूं समझाऊं,
भूल मती हिव भाया ।
दौड़ै ऊमर चटका देती
छित जिम बादळ छाया ॥३॥
सोवै खाय करै नहैं सुक्रत
खोवै दीह खलीता ।
प्रीत करै सिमरै सीतापत
जिकै जमारौ जीता ॥४॥

इस गीत के प्रथम और द्वितीय दोहले में परामुख उक्ति है। तृतीय में सम्मुख उक्ति है। और फिर चतुर्थ में परामुख उक्ति है। एक ही उक्ति का निर्वाह नहीं हुआ है। अतः यहाँ अध दोष है।

(२) छवकाळ— विरुद्ध भाषाओं अथवा विभिन्न भाषाओं को डिंगल में मिला देने से यह दोष आ जाता है। जैसे—

प्रीति करै तीरथ रै ऊपर,
मौज दियै मन मानी।
तक्यौ न मन हर पग जिह ताई
पार न उतरै प्रानी ॥१॥
कर विधान करवत ले कासी
ले व्रज रेणू लेटै।
पग्यौ न दिल प्रभु रे पद पंकज
भिसत न त्यॉतिक भेटै ॥२॥

यह पद्य डिंगल भाषा का है। परन्तु इसमें 'प्रानी' शब्द व्रजभाषा का और 'भिसत' शब्द फारसी का आ गया है। इसलिए छवकाळ दोष है।

(३) हीण— जहाँ कोई निश्चित अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो वहाँ यह दोष होता है। यथा—

"अज अजेव जगईस"
"जग में राम तुहालै जोड़, हुवौ न कोई फेर हुवै"।

प्रथम उदाहरण में 'अज' से अभिप्राय शिव से है या ब्रह्मा से या विष्णु से यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि ये तीनों ही अजन्मा और जगत के ईश हैं। दूसरे में 'राम' शब्द से यह पता नहीं लगता कि कवि रामचंद्र का वर्णन कर रहा है अथवा परशुराम का अथवा बलराम का। अत: हीण दोष है।

(४) निनग— जहाँ क्रमभंग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने की हो उसे बाद में कहा गया हो और जो बाद में कहने की हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

"रत नद तिरत कबंध, सार इम चली निनंग सुज।"

पहले तलवारें चलती हैं, बाद में रक्त बहता है और फिर कबंध तैरते हैं। परन्तु उक्त पंक्ति में उलटा वर्णन किया गया है। इसमें रक्त की सरिता में कबंध के तैरने का वर्णन पहले और तलवार के चलने का वर्णन बाद में किया गया है। अतः निनग दोष है।

(५) पागळौ— छंदशास्त्र के नियमों के विरुद्ध किसी छंद के किसी चरण में कम अधिक मात्राओं का होना पागळौ दोष कहलाता है। जैसे—

सागर पूछै सफरॉ, आज रतंबर काह।
भारत तणी उमेदिया, खाग भकोळी मॉह ॥

यह दोहा है। छंदशास्त्र के अनुसार इसके पहले तथा तीसरे चरण में १३।१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे में ११।११ मात्राएँ होनी चाहिएँ। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं हुआ है। पहले चरण मे बारह ही मात्राएँ हैं। इसलिए पॉगळौ दोष है।

(६) जात विरोध—यदि किसी गीतादि के भिन्न भिन्न चरण भिन्न भिन्न जाति के छंदों के हों तो वहाँ यह दोष होता हैं। जैसे—

अवनी मे जिके भलाई आया
करे सदा सुकरत रा काम।
दान सदा वितसारू देवै
नित रसणा लेवै हरिनाम ॥१॥
गिणजै सद ज्याँरी जिंदगाणी
उभै विरद धरियॉ अखत।
प्रारभै दौलत पुन पाणाँ
पुणै सुवाणों सीतपत ॥२॥
धन वे पुरुष बड़ा पणधारी
खलक सिरामण सुजस खटै।
उमगे दान ऊधमैं आचों,
राम राम मुख हूँत रटै ॥३॥
देह जिकण वातॉ ए दोई
तिके सदाई तीखा।
त्रीजा जड़ जंगम वसुधारा
सारा जीव सरीखा ॥४॥

जिस जाति का गीत हो उसके सभी चरणों मे उसी जाति के चरण आने चाहिएँ। परन्तु उक्त गीत मे प्रथम चरण बेलियो गीत का, दूसरा खुड़द साणोर का, तीसरा सोहण गीत का और चौथा जॉगडे गीत का है। अतः जात विरोध दोष है।

(७) अपस—जहाँ किसी बात का सीधा वर्णन न करके कूट-अर्थवं पहेली की तरह घुमा-फिराकर किया गया हो वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

नदियाँ सुत तासु सुता रौ नायक, जिणनूँ काठौ झालै ।
जलसुत मीत तासु सुत जिणनूँ, घात कदै नहँ घालै ॥

यहाँ सीधा विष्णु न कहकर नदियो का स्वामी समुद्र और उसकी कन्या का पति कहा गया है, और यमराज न कहकर जल का पुत्र कमल, उसका मित्र सूर्य्य और उसका पुत्र कहा गया है। इसलिए अपस दोष है।

(८) नाळछेद—काव्य-परिपाटी के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढग से वर्णन करना नाळछेद दोष कहलाता है। जैसे—

कच-अहि मुख-ससि लक-स्यंघ कुच-कोक नाळछिद ।

यहाँ पहले चोटी का और बाद में मुख का वर्णन किया गया है जो नखसिख-वर्णन की परपरा के विरुद्ध है। इसी तरह कमर और कुच के वर्णन में भी क्रमभग हुआ है।

(९) पखतूट—जहाँ छद में कच्ची जोड़ अर्थात् अनुप्रास रहित पद और पक्की जोड़ अर्थात् अनुप्रास सहित पद दोनों का समावेश हुआ हो वहाँ पखतूट दोष होता है। जैसे—

अठी राम रा सुभड़ नै रावण उठी
लंक रै जोरवर खेत लड़वा ।
तीर सेला छूरा झोक तरवारियाँ,
वाजिया विनै ही रभ वरवा ॥ १ ॥
उडै पग हात किरका हुवै अग रा
बहै रत जेम सावण बहाळा ।
आप आपो वरी जोय नै आड़ियाँ
लड़ै रिण भलभलाँ निराताळा ॥ २ ॥
तहक नीसाण गिरवाण हरखाण तन
चिता सरसाण रंभगाण चाळै ।
निडर रिखराण गणपाण वीणा नचै
भाण रथ ताण थमसाण भाळै ॥ ३ ॥
हणे कुभेणसा जोवहर श्रीहथा,
करै कुंण तेण परमाण काया ।
जगत सारो अजू साख दे जिकण री,
खोपरी गुळ चा भीम खाया ॥४॥

इस गीत के प्रथम दो दोहलों मे कची जोड़ और आगे पक्की जोड है। इसलिए पवनूट दोष है।

(१०) व्हरौ—जहाँ शब्द-योजना इस तरह की हो कि शब्दों का दुतरफा मतलब निकलकर भ्रम पैदा हो जाय वहाँ यह दोष होता है। जैसे—

"रामण हणियौ राम"

इससे 'राम ने रावण को मारा, और 'रावण ने राम को मारा' दोनो अर्थ निकलते हैं। कुछ और उदाहरण देखिए:—

"नराँ न ठीणौ नारियाँ"
"वीर भागौ नहीं मार वागा"
"पगाजै हुई नहँ फतै पाई"

(११) अमंगळ—यदि छद के किसी चरण के पहले और अतिम अक्षर के मिलने से कोई अमगल-सूचक शब्द बनता हो तो वहाँ पर यह दोष होता है। जैसे—

"महपन मे पय राम रै"

छप्पय की इस तुक के पहले अक्षर 'म' और अन्तिम अक्षर 'रै' से 'मरै' शब्द बनता है जो अशुभ है। अतः असंगळ दोप है।

× × × × × × ×

पिंगल

पिंगल शब्द का वास्तविक अर्थ छदशास्त्र है। परन्तु राजस्थान मे इससे व्रजभाषा अर्थ भी लिया जाता है और इस अर्थ में इसका प्रयोग काफी लबे अर्से से होता चला आ रहा है। इधर कुछ वर्षों से इसके अर्थ मे थोड़ा-सा परिवर्तन और हो गया है। आजकल लोग 'पिंगल' से 'व्रजभाषा' अर्थ न लेकर 'राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा' अर्थ लेते हैं और व्रजभाषा को शुद्ध व्रजभाषा कहते है।

पिंगल मे राजस्थानी की कुछ विशेषताएँ देखकर बहुत से लोग पिंगल को भी डिंगल कह देते हैं। परंतु इन दोनो मे बहुत अतर है। पिंगल एक मिश्रित भाषा है। इसमें व्रजभाषा और राजस्थानी दोनो की विशेषताएँ पाई जाती हैं। इसके विपरीत डिंगल मे केवल मारवाड़ी व्याकरण का अनुकरण किया जाता हैं।

पिंगल में कितना अश ब्रजभाषा का और कितना राजस्थानी का हो, इसका कोई नियम नहीं है। यह कवि की इच्छा और अभ्यास पर निर्भर है। किसी का झुकाव ब्रजभाषा की ओर अधिक रहता है, किसी का राजस्थानी की तरफ विशेष पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप पृथ्वीराज रासौ को लीजिए। इसमें राजस्थानी की अपेक्षा ब्रजभाषा की विशेषताएँ अधिक देखने में आती हैं। दूसरा उदाहरण सूरजमल कृत वशभास्कर का है। इसकी भाषा का झुकाव राजस्थानी की ओर अधिक है।

पिंगल साहित्य भी राजस्थान मे लगभग उतना ही रचा गया है जितना कि डिंगल साहित्य। खुमाण रासौ, पृथ्वीराज रासौ, हमीर रासौ, अवतार चरित्र, राजविलास, पाडव यशेन्दु चद्रिका आदि ग्रथ पिंगल ही के हैं। इनके अतिरिक्त पिंगल की फुटकर रचनाएँ भी प्रचुर परिमाण मे मिलती हैं।

ब्रजभाषा

पिगल के सिवा राजस्थानी कवियों के लिखे शुद्ध ब्रजभाषा के ग्रथ भी राजस्थान मे बहुलता से पाए जाते हैं। बिहारीलाल, कुलपति मिश्र, सोमनाथ, नागरीदास इत्यादि कवियों के ग्रंथ शुद्ध ब्रजभाषा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

हिन्दी-हिन्दुस्तानी

इधर कुछ समय से हिंन्दी-हिन्दुस्तानी लिखने की प्रथा भी राजस्थान मे चल पडी है। राजस्थान के आधुनिक गद्य-लेखक अपने ग्रथ अधिकतर हिंदी-हिंदुस्तानी मे लिखते हैं, यद्यपि अपने घरों मे बोलते वे राजस्थानी हैं।

अगले पृष्ठों मे राजस्थानी, पिंगल, ब्रजभाषा आदि उल्लिखित सभी भाषाओं के साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो निम्नलिखित चार कालों में विभक्त है। यह काल-विभाजन मुख्यत. राजस्थानी भाषा और साहित्य के क्रमिक विकास को देखकर किया गया है—

प्रारभ काल—स० १०४५—१४६०
पूर्व मध्यकाल—सं० १४६०—१७००
उत्तर मध्यकाल—स० १७००—१९००
आधुनिक काल—स० १९००—२००५

दूसरा प्रकरण

प्रारंभ काल (सं० १०४५-१४६०)

इस काल का साहित्य जितना अधिक राजस्थानी भाषा मे मिलता है उतना भारत की अन्य किसी प्रान्तीय भाषा में नही मिलता। जिस प्राचीन भाषा में यह साहित्य रचा गया है उसे पाश्चात्य भाषा-शास्त्रियों ने 'प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी' और गुजराती साहित्यकारों ने 'जूनी गुजराती' नाम दिया है। इसमे आधुनिक राजस्थानी और आधुनिक गुजराती दोनों का पूर्व रूप गुंथा हुआ है और प्राकृत-अपभ्रंश की भी बहुत-सी विशेषताएँ पाई जाती हैं।

इस युग के साहित्य-सृजन में जैन मतावलंबियों का हाथ विशेष रहा है। कोई पचास के लगभग जैन साहित्यकारों के ग्रंथों का पता है[1]। परन्तु जैन विद्वानो का यह प्रचुर साहित्य जितना भाषाशास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है उतना साहित्य की दृष्टि से नही है, यद्यपि साहित्यिक सौन्दर्य्य भी इसमें यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है।

---

१. कुछ महत्व के नाम ये है धनपाल (सं. १०८१), जिनवल्लभ सूरि (सं. ११६७), पल्ह (सं. ११७०), वादिदेव सूरि (सं. ११८४), वज्रसेन सूरि (सं. १२२५), शालिभद्र सूरि (सं. १२४१), नेमिचन्द्र भंडारी (सं. १२५६), आसगु (सं. १२५७), धर्म (सं. १२६६), शाह रयण और भत्तउ (सं. १२७८), विजयसेन सूरि (सं. १२८८), राम (सं. १२८९), सुमति गणि (सं. १२९०), जिनेश्वर सूरि (१२७८-१३३१), अभयतिलक (सं. १३०७), लक्ष्मीतिलक (सं. १३११-१७), सोममूर्ति (सं. १२६०-१३३१), जिनपद्म सूरि (सं. १३०९-२२), विनयचन्द्र सूरि (सं. १३२५-५३), जगडु (सं. १३३१), साधारसिंह (सं. १३३६), पद्म (सं. १३५८), जयशेखर सूरि (सं. १३६०-६२), प्रज्ञातिलक सूरि (सं. १३६३), वस्तिग (सं. १३६८), गुणाकर सूरि (सं. १३७१), अबदेव सूरि (सं. १३७१), फेरू (सं. १३७६), धर्मकलश (सं. १३७७), सारमूर्ति (सं. १३९०), जिनप्रभ सूरि (सं. १३६०-९०), मोलण (१४ वीं शताब्दी), राजशेखर सूरि (सं. १४०५), जयानंदसूरि (सं. १४१०), तरुणप्रभ सूरि (सं. १४११), विनयप्रभ (सं. १४१२), जिनोदय सूरि (सं. १४१५), ज्ञानकलश (सं. १४१५), पृथ्वीचंद (सं. १४२६), जिनरत्न सूरि (सं. १४३०), मेरुनंदन (सं. १४३२), देवसुन्दर सूरि (सं. १४४०), साधुहंस (सं. १४५५)।

इस काल की बहुत-सी जैन रचनाओं को तो जैन संप्रदायवालों ने नष्ट होने से बचा लिया है, पर किसी सप्रदाय अथवा समाज विशेष का सहारा न होने से जैनेतर रचनाएँ अधिकतर नष्ट हो गई हैं, और थोड़ी-बहुत जो बची हैं वे भी अभी तक पूरी तरह प्रकाश में नहीं आ पाई हैं। केवल शार्ङ्गधर, असाइत और श्रीधर की रचनाओं का पता प्रामाणिक रूप से लग सका है।

शार्ङ्गधर

ये तीन भाई थे-शार्ङ्गधर, लक्ष्मीधर और कृष्ण। इनके पिता का नाम दामोदर और पितामह का राघव था। इनका लिखा 'शार्ङ्गधर संहिता' नामक एक वैद्यक ग्रथ प्रसिद्ध है। दूसरा ग्रंथ 'शार्ङ्गधर पद्धति' है। यह एक सुभाषित ग्रथ है। इसकी पद्य-सख्या ४६८६ है। इसमे कुछ पद्य इनके और कुछ अन्य कवियों के हैं। इस ग्रथ का निर्माण-काल स० १४२० है। ये दोनो ग्रथ संस्कृत में हैं। परन्तु परंपरा से प्रसिद्ध है कि शार्ङ्गधर ने 'हम्मीर रासो' और 'हमीरकाव्य' नामक दो ग्रथ लोकभाषा में भी बनाये थे जिनका पता इस समय नही लगता। परन्तु इन ग्रन्थो के कुछ अश इधर-उधर बिखरे मिलते हैं। कुछ 'प्राकृत पैंगल'' मे भी हैं। नमूने के तौरपर एक को यहाँ उद्धृत किया जाता है। इस मे रणथभौर के चौहाण राजा हमीर के सेनापति जज्जल की वीर प्रतिज्ञा का वर्णन है—

पिधउ दिढ सणाह याह उप्पर पक्खर दइ।
बधु समदि रण धसउ हम्मीर वअण लइ।
उड्डुल णहपह भमउ खग्ग रिउ सीसहि डारउ।
पक्खर पक्खर ठेल्लि पेल्लि पब्बअ अप्फालउ।
हम्मीर कज्जु जज्जल भणइ कोहाणल मुहमह जलउ।
सुलताण सीस करवाल दइ तज्जि कलेवर दिअ चलउ॥

(मजबूत कवच पहनकर, घोड़े पर पाखर डालकर, बंधुजनों को आश्वासन देकर, शाह हमीर के वचनों को ग्रहणकर मै रण में उतरा हूँ। मैं अंतरिक्ष और आकाश मार्ग मे भ्रमण करता हूँ। खड्ग से शत्रुओं के सिरों को काटता हूँ। पाखर से पाखर ठेल-पेलकर पर्वतों को हिलाता हूँ। जज्जल कहता है कि हमीर के कार्य के लिए मै कोपाग्नि मे जलता हूँ। और सुलतान के सिर पर तलवार देकर इस शरीर को छोड़ स्वर्ग को चलता हूँ)

ये सिद्धपुर में पैदा हुए थे और जाति के औदिच्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम राजाराम था जो ख्याति प्राप्त कथाकार थे[२]। असाइत-रचित एक छोटी-सी पुस्तक का पता है जिसका नाम 'हंसावली' है। रचना-काल स० १४२७ है। इसमें मुख्यतः चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है, पर बीच में कहीं-कहीं दोहे भी हैं। तीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर तीन विरह-गीत भी हैं। रचना सरस है। उदाहरण—

असाइत

> किलकिलती वन विचरती, वेली वर वीसास।
> सधि सामी साहस कीउ, हूँ एकली निरास॥
> भणि असाइत भव अतरि, समरि सामणी कत॥
> हंसाउलि धरती ढळी, पीउ पीउ मुखि भणंति॥

ये ईडर के राठौड़ राजा रणमल के समकालीन थे। इनका रचनाकाल स० १४५७ के लगभग है[3]। इन्होंने 'रणमल छद' नामक एक छोटा-सा ग्रंथ बनाया जिसमें पाटण के सूबेदार जफरखाँ और रणमल की लड़ाई का वर्णन है। यह युद्ध स० १४५४ के आस पास हुआ था और जफरखाँ इसमें हारा था।

श्रीधर

रणमल छद की पद्य सख्या ७० है। भाषा-शैली अलकारमयी और सजीव है। वीर रस की उत्कृष्ट रचना है। नमूना देखिए—

> हय खुरतल रेणइ रवि छाहिउ, समुहर मरि ईडरवइ आइउ।
> खान खवास खेलि बलि धायु, ईडर अडर दुग्गतल गाह्यु॥
> दमदमकार दमाम दमक्कइ, ढमढम ढमढम ढोल ढमक्कइ।
> तरवर तरवर वेस पहट्टइ, तरतर तुरक पडइ तलहट्टिइ॥
> विसर विरङ्ग वङ्गरव पसरइ, रहि रहिमान मनन्तरि समरइ।
> गह गुज्जार-निसाज करारणी, हयमर भौज फिरइ सुरताणी॥
> सत्तिरि सहस सहिय सिल्लारह, दहु दिसि फिरवी करि पुकारह।
> सुहड सद्द सम्भलिवि रउहह, धममस धूस करइ मफरद्दह॥

डा० ग्रियर्सन और उनके मतानुगामी हिंदी के कुछ विद्वानों ने दलपत कृत खुँमाण रासौ, नाल्ह कृत बीसलदेव रासौ इत्यादि को इस काल की

२ केशवराम काशीराम शास्त्री, कवि चरित, भाग पहला, पृ० ५

3. K M Munshi Gujrat and Its Literature, p 101.

रचनाएँ बतलाया है। और इनके आधार पर अपने रचे हिंदी-साहित्य के इतिहासों में वीरगाथा-काल की स्थापना की है। परन्तु इस विषय में उन्होंने बड़ा धोखा खाया है। यथार्थतः ये ग्रथ इस काल के नहीं हैं। बहुत पीछे से लिखे गये हैं। हुआ यह है कि इन ग्रथों के चरित्र नायकों के आविर्भाव-समय को इन रचनाओं का निर्माण-काल मान लिया गया है जो एक भारी भूल है। यदि आज कोई ग्रथकार भगवान बुद्ध का जीवन चरित लिखे और सौ या दो सौ वर्ष बाद कोई उसे, चूँकि उसमें बुद्ध का चरित्रवर्णित है इसलिए, बुद्ध के समय का लिखा हुआ; ढाई हजार वर्ष का पुराना ग्रथ, बतलाए तो यह बात जितनी हास्यास्पद होगी उतनी ही हास्यजनक बात इन रासो ग्रथों को आज उनके चरित्र-नायकों की समकालीन रचनाएँ बतलाना है।

इन ग्रथो को प्राचीन बतलाते समय एक दलील यह दी जाती है कि इनके रचयिताओं ने इनमें सर्वत्र वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया है और इससे उनका अपने चरित्रनायकों का समकालीन होना सिद्ध होता है। परन्तु यह भी एक भ्रान्ति है। यह कोई आवश्यक बात नही है कि वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग करनेवाले कवि समसामायिक ही हों। यह तो काव्य-रचना की एक शैली मात्र है। काव्य मे वर्णित घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिए कवि प्रायः ऐसा किया करते हैं। अनेक ऐसे ग्रन्थ मिलते हैं जिनके कर्ता समकालीन न थे पर जिन्होंने वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग किया है। राजस्थान में चारण-भाट आज भी जब प्राचीन काल के वीर पुरुषों पर ग्रथ तथा फुटकर गीत आदि लिखते हैं तब वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग करते हैं। बारहठ केसरीसिंह कृत 'प्रताप-चरित्र' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है जो स० १९९२ में लिखा गया है।

इसके अतिरिक्त ये रासो ग्रथ जिनको वीर गाथाएँ नाम दिया गया है और जिनके आधार पर वीरगाथा-काल की कल्पना की गई है, राजस्थान के किसी समय विशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति को भी सूचित नहीं करते। केवल चारण, भाट आदि कुछ वर्ग के लोगों की जन्मजात मनोवृत्ति को प्रकट करते हैं। प्रभुभक्ति का भाव इन जातियो के खून में है और ये ग्रथ उस भावना की अभिव्यक्ति है। यदि इनकी रचनाओं के आधार पर कोई निर्णय लिया जाय तब तो वीरगाथा काल राजस्थान में आज भी ज्यों का त्यों बना है। क्योंकि राजा-महाराजाओं अथवा उनके पूर्वजों की कीर्ति के ग्रथ आदि लिखने का काम ये लोग आज भी उसी उत्साह से कर रहे हैं जिस उत्साह से

पहले किया करते थे। परन्तु राजस्थान के वातावरण तथा इन जातियों से अपरिचित लोगों का यह बात समझ लेना कुछ कठिन है।

ये तपागच्छीय जैन साधु शान्तिविजय के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था। परन्तु दीक्षा के बाद बदलकर दौलतविजय रख लिया गया था। हिंदी के विद्वानों ने इनका मेवाड़ के रावळ खुँमाण द्वितीय (सं० ८७०) का समकालीन होना अनुमानित किया हैं, जो गलत है। वास्तव में इनका रचनाकाल स० १७३० और स०१७६० के मध्य में है।[४]

दलपत

इनका रचा 'खुमाण रासौ' एक प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमें बापा रावळ सं० ७६१) से लेकर महाराणा राजसिंह (स०१७०६—३७) तक के मेवाड के राजाओं का वृत्तान्त है—

राणौ इक दिन राजसी, सह लै चढ़यौ शिकार।
गग त्रिवेणी गोमती, अनड़ जु विचै अपार॥
नदी निरखी नागदहो, चिंतइ राजड़ राण।
नदी बँधाऊँ नाम कर,(तो) हूँ सही हिंदवाण॥

परन्तु खुंमाण का वृत्तान्त अधिक विस्तार से होने के कारण इसका नाम 'खुमाण रासौ' रखा गया है।

खुंमाण रासौ आठ खडो मे विभाजित है। इसकी भाषा पिंगल है। रचना इस प्रकार की है—

कवित्त

आव भाव अंबाव, भगति कीजै भारत्ति
जाग जाग जगदब, संत सानिध सकत्ति
प्रसन होय सुरराय, वयण वाचा वर दीजै।
बालक वेले बाँह, प्रीत भर प्यालो पीजै॥

महाराज राज-राजेश्वरी, दलपति सूं कीजै दया।
धन मौज महिर मातगिनी, माय करौ मोसूँ मया॥

भ्रकुटि चद भलहळै गंग खळहळै समुज्जळ।
एकदंत उज्जळो, सुंड ललवले रुड गळ॥
पुहप धूप प्रम्मळै, सेस सलवले जीह लल।
धूम्र नेत्र परजळै, अंग अक्कलै अतुल बल॥

४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४४ अक ४, पृष्ठ ३८७-३९८

यम वलें विधन दाळिद अलग, चमर ढळे उजळ कमळ ।
सुडाळ देव रिध सिध दियण, सुमर दल्ल गणपति भवळ ॥

नल्लसिंह का प्रामाणिक इतिवृत नही मिलता । इनके नाम से प्रचलित विजयपाल रासौ से सूचित होता है कि ये सिरोहिया शाखा के भाट और विजयगढ़ (करौली राज्य) के यदुवशी नरेश विजयपाल के आश्रित थे जिन्होंने इनको हिंडोन नामक एक नगर, सौ गाँव, हाथी, घोडे रत्नादि इनाम में दिए थे—

नल्लसिंह

भये भट्ट प्रथु यज्ञ तैं, है सिरोहिया अल्ल ।
वृत्तेश्वर जदुवंस के, नल्ल पल्ल दल सल्ल ॥

बीसा सौ गजराज, वाजि सोलह सौ माते ।
दिये सात सौ ग्राम, सहर हिंडोन सुदाते ॥
सुतर दिये द्वै सहस रकम गिलमै भरि अंबर ।
कचन रत्न जड़ाव बहुत दीनेजु अडवर ॥

कुल पूजित राव सिरोहिया, यादवपति निज सम कियव ।
नृप विजयपाल जू विजयगढ, साह ये जू सम्मपियव ॥

विजयपाल रासौ का थोड़ा-सा अंश उपलब्ध है जिसमें महाराजा विजयपाल की दिग्विजय और पग की लड़ाई का वर्णन है । इस युद्ध का समय नल्लसिंह ने स० १०९३ वतलाया है । ग्यारहवीं शताब्दी में करौली पर विजय पाल नाम के एक प्रतापी राजा हुए हैं जिनका करौली और उसके आसपास के अलवर, भरतपुर, धौलपुर आदि राज्यों के कुछ भागो पर अधिकार था[5] । परन्तु गज़नी, ईरान, काबुल, दिल्ली, ढूँढाड़, अजमेर आदि पर विजयपाल का एक-छत्र राज्य होने की जो बात नल्लसिंह ने अपने इस ग्रन्थ में लिखी है वह इतिहास-विरुद्ध और अतिरंजना है—

बैठह पाट दिजयपाल वीर, अल्लीलखाँन जीत्यौ गहीर ।
इक लक्ख मीर दहवट्ट कीन, रो राख रिद्धि सब खोसि लीन ॥
साहिब्नदीन गजनी हॅकारि, तत्तारखान को मान मारि ।
खुरसान खग्गनि मरत्ति जीति, राखी सुटेक जद्दव सुरीति ॥
तेगन अमोरि तूरान तोरि, ईरान पेसकस लीन मोरि ।

5. The Ruling Princes, Chiefs, and Leading Personages in Rajputana, (sixth edition) p. 115.

बरछीनि मारि बङ्गस उजारि, खन्धार कोट सब दीय पारि ॥
काबिली किलङ्गी रोह जीति, राखिय नरेन्द हिन्दवान रीति ।
बलकी बुखार सब जेर कीन, खुरसान खोसि हबसान लीन ॥
आरबी रूम लटियाल कूटि, फिरगाॅन देस दुइ-बार लूटि ।
लीनीस पेसकस अवर देश, राखियौ धर्म जद्दव नरेश ॥
पांचाल देश बयराट मारि, अजमेर सोम कौ गर्व गारि ।
मडोवर को परिहार डडि, जोइया पारस खग्गनि खडि ॥
तौवर अनग ढिल्ली सुमाॅनि, थापियौ थान मगपन्न जानि ।
ढूढाहर मइ हय खुरनि गाहि, पज्जूनि करत निज सेन चाहि॥
मेवात मरूस्थल महि लीन, उनगाध पथ सब जेर कीन ।
इहि तेज तपि विजयपाल राज, जाहरा तेग जादव समाज ॥

इस वर्णन से स्पष्ट है कि विजयपाल रासौ विजयपाल के समय की रचना नहीं है। मिश्रबंधुओं ने इसका रचनाकाल सं० १३५५ के आसपास माना है। परन्तु ग्रंथ उतना भी पुराना नहीं है। इसकी भाषा-शैली पर 'पृथ्वीराज रासौ' (१८वीं शताब्दी) और 'वंशभास्कर' (सं० १८९७) दोनों का प्रभाव साफ झलकता है। अत. सं० १९०० के आस पास यह रचा गया है, पर प्राचीन बतलाने के लिए इसके रचयिता ने नल्लसिंह का कल्पित परिचय इसमें जोड दिया है जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

विजयपाल-रासौ पिंगल भाषा का ग्रंथ है। सब मिलाकर उसमें ४२ छंद हैं—८ छप्पय, १८ मोतीदाम, ८ पद्धरि, ६ दोहे और २ चौपाइयाँ। इसकी वर्णन-शैली सजीव और चित्ताकर्षक है। वीर रस का इसमें अच्छा परिपाक दृष्टिगोचर होता है।

विजयपाल रासौ का थोडा-सा अंश और यहाँ दिया जाता है—

छंद मोतीदाम

जुरै जुध यादव पङ्क मरद्द, गही कर तेग चढ्यौ रणमद्द ।
हकारिय जुद्ध दुहूँ दल शूर मनों गिरि शीस जल्लथरि पूर ॥
हलौं हिल हाॅक बजी दल मद्धि, भई दिन ऊगत कूक प्रसिद्धि ।
परस्पर तोप बहै विकराल, गजैं सुर भुम्मि मरग्ग पताल ॥
लगैं वर यंत्रिय छत्तिय शुद्ध, गिरैं भुवभार अपार विरुद्ध ।
बहैं भुववान ढॅक्यौ असमान, खयङ्कर खेचर पाव न जान ॥

वहैं कर सायक यायक जग, लखैं विष आशिय पासिय अग।
वहैं भिंडपालक पाल लगत, उडैं शिर ढीय धरन्नि प्रतग॥
वहैं कर सकुल शीस निसार, परैं विकराल वैंवार सुमार।
वहत गुरज्ज गहन्त मरद्द, भये शिर चून विखू न गरद्द॥
मुदग्गर मार वहैं विकराल, लटक्कत भुम्मि फटन्त कपाल।
वहैं कर कत्तिय मत्तिय मार, गिरैं धर मध्य प्रसिद्धि जुझार॥
लगैं उर सागिसु कंगल पार लटक्कत-शूर-चटक्क कुठार।
लगैं किरवान मुकन्द कुत्तार कटै वर हड्ड जनेनु उतार॥
लगैं खपुवा जमडाढ़ सुमार, किधौं खिरकी दिय छुट्टत द्वार।
वहैं कर खँजर पजर भीर, मनौं मन वान करै मुड चीर॥
वहैं कर रज्जक गज्जक ढाल, निकस्सत वंविथ फोरि सुव्याल।
कटक्क कुटन्त गिरत कपाल, खटक्कत खाग चलै रत-खाल॥
गटक्कत गोठिय गिद्धनि गाल, बुटक्कत जुग्गिनि घुण्ड कपाल।
नदन्निमि नाच्चय मावत नाच्च चटक्कत चूरि कि रचन आच॥

नरपति नाल्ह कृत वीसलदेव रासो की हिन्दी ससार में बडी चर्चा है। परन्तु इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में हमारी जानकारी प्रायः नहीं के बराबर है। कोई इन्हें राजा और कोई भाट बतलाते हैं।

नरपति

परन्तु ये सब अनुमान ही अनुमान हैं। कोई सुदृढ़ -ऐतिहासिक आधार अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। लेकिन वीसलदेव रासो में इन्होंने अपने लिए दो-एक स्थानों पर 'व्यास' शब्द का प्रयोग किया है जिससे इनकी जाति पर प्रकाश पड़ता है—

"**व्यास** वचन इम ऊच्चरई, दिन दिन प्रतिपै वीसलराई।"
प्रथम खंड, छंद ६६

"नरपसि **व्यास** कहइ करि जोडि, तौ तूठा तैंतिसौ कोड़ि।"
प्रथम खड, छद ८४

"चउरास्या सहू वर्णव्या अम्रत रसायण नरपति **व्यास**।"
तृतीय खड, छद १०२

व्यास जाति राजस्थान में ब्राह्मण जाति के अन्तर्गत मानी जाती है और इसी का दूसरा नाम सेवग या भोजक जाति है। अतः नरपति का ब्राह्मण होना स्पष्ट है। इनके नाम के साथ 'नाल्ह' जो लिखा मिलता है वह यदि

हस्तलिखित प्रतियों में ठीक तरह से पढ़ा गया हो तो इनका अवटक मालूम देता है। १

बीसलदेव रासौ को पद्रह के लगभग हस्तलिखित प्रतियों का पता है। इनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १६६६ की लिखी हुई है। भिन्न-भिन्न प्रतियों में इसका रचनाकाल भिन्न-भिन्न लिखा मिलता है—

"संवत सहस तिहुतरइ जाँणि"।

"संवत सहस सतिहतरइ जाँणि, नाल्ह कवीसर सरसीय वाणि"।

संवत बार बरोतरा मझारि, जेठ वदि नवमी बुधवार।"

"संवत तेर सतोतरइ जाणि"।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करण में इसका निर्माण-काल सं० १२७२ दिया हुआ है—

"बारह सै बहोतराहाँ मँझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि।

प्रथम-सर्ग, छंद ६

परन्तु ये सभी सवत् प्रक्षिप्त हैं। वास्तव में बीसलदेव रासौ इतना पुराना नहीं है।

'बारहसै बहोतराहाँ' का अर्थ कुछ लोगो ने १२१२ किया है और इस अशुद्ध अर्थ के आधार पर उन्होंने नरपति को बीसलदेव रासौ के चरित्र नायक अजमेर के चौहाण राजा बीसलदेव अर्थात् विग्रहराज चतुर्थ का समकालीन माना है जिनका शासनकाल सं० १२१०-१२२१ है। परन्तु नरपति को विग्रहराज चतुर्थ का समसामयिक नहीं माना जा सकता। कारण, बीसलदेव रासौ में इतिहास सबंधी अनेक ऐसी भूलें विद्यमान हैं जिनका समकालीन कवि की रचना में होना असंभव है। यथा—

(१) बीसलदेव रासौ में बीसलदेव का धार के परमार राजा भोज की लड़की राजमती से विवाह होना लिखा है। परन्तु बीसलदेव और भोज का समकालीन होना इतिहास से सिद्ध नही होता। इतिहासकारों ने भोज का राज्यकाल स० १०६७-१११२ निश्चित किया है। अतः भोज और बीसलदेव के समय मे लगभग ११० वर्ष का अंतर है।

(२) बीसलदेव रासौ में कालिदास और माघ को बीसलदेव का समकालीन कहा गया है जो बीसलदेव से बहुत पहले हुए हैं।

(३) बीसलदेव रासौ में लिखा है कि भोज ने बीसलदेव को आलीसर, कुड़ाल, मडोवर, गुजरात, सोरठ, साँभर, टोंक, तोड़ा, चित्तौड़ आदि प्रदेश

दहेज में दिए थे। परन्तु इन प्रदेशों का भोज के अधीन होना इतिहास से प्रकट नहीं होता।

(४) बीसलदेव रासौ में जैसलमेर और बूंदी के नाम आये हैं। परन्तु तब तक ये नगर बसे भी न थे।

(५) बीसलदेव रासौ मे बीसलदेव के उड़ीसा जीतने की बात कही गई है जिसका समर्थन बीसलदेव के शिलालेखों तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से नही होता। अजमेर मे बीसलदेव नाम के चार राजा हुए हैं। इनमें से किसी ने उड़ीसा नहीं जीता।

(६) बीसलदेव रासौ में बीसलदेव का अपने भतीजे को अपना उत्तराधिकारी नियत करना लिखा है जो गलत है। बीसलदेव के बाद उनका बेटा अमरगागेय उनकी गद्दी पर बैठा था।

इसके अतिरिक्त बीसलदेव रासौ की भाषा भी तेरहवीं शताब्दी की नहीं प्रत्युत सोलहवीं शताब्दी की है। भाषा सम्बन्धी गड़बड़ी का कारण कुछ विद्वानो ने यह बतलाया है कि बीसलदेव रासौ एक गीतकाव्य है और सैकड़ों वर्षों तक लोगों की जबान पर रहने से इसकी भाषा मे परिवर्तन होना स्वाभाविक है। परन्तु यह उनकी कपोल-कल्पना है। बीसलदेव रासौ गीतकाव्य नहीं है। राजस्थान में यह कभी गाया नहीं गया, न आज गाया जाता है; और न इसमें गीतकाव्य के कोई लक्षण मिलते हैं। गीतकाव्य की भाषा में जो चलतापन, छदों में जो गति, शब्दों में जो मर्मस्पर्शिता और विषय मे जो लोकप्रियता होनी चाहिये वह इसमे नही है।

डा० गौरीशंकर-हीराचद ओझा ने बीसलदेव रासौ का निर्माण-काल स० १२७२ ठीक माना है[६]। परन्तु उनका कहना है कि इसका चरित्र नायक बीसलदेव उपनाम विग्रहराज तृतीय है, न कि विग्रहराज चतुर्थ। विग्रहराज तृतीय का समय उन्होंने स० ११५० अनुमानित किया है। अतः ओझाजी के कथनानुसार बीसलदेव रासौ का रचनाकाल उसके चरित्र नायक के समय से १२२ वर्ष बाद का है। अपने मत की पुष्टि में ओझाजी ने कोई ठोस ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिया। फिर भी उनकी बात को मान लेने से भी बीसलदेव रासौ की इतिहास सम्बंधी उल्लिखित त्रुटियों का निराकरण नहीं होता। केवल भोज का समय थोड़ा-सा बीसलदेव के समय के पास आ जाता है।

---

६ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४५, अक २, पृ० १६३-१७१

सोलहवीं शताब्दी में नरपति नाम का एक कवि गुजरात में हुआ है जिसके लिखे चार ग्रन्थों का पता है: नदबत्तीसी (सं० १५४५), विक्रम पचदड (स० १५६०), स्नेह परिक्रम और निः स्नेह परिक्रम[७]। अनुमान होता है कि इन ग्रंथो का कर्ता नरपति और वीसलदेव रासो का रचयिता दोनों एक हैं। क्योंकि इनकी भाषा-शैली और शब्दावली बहुत मिलती है—

१ (क) ब्रह्मा बेटी वीनवऊँ, सारद करूँ पसाद।
हस-वाहन हरषि थिकी, जिह्वा वसिजै माइ ॥६॥
वीणा पुस्तक धारणी, तू तारणी त्रिभूवन।
कविजन वाणी उचरइ, जु तु हुइ प्रसन्न ॥७॥
कास्मीर पुर वासिनी, विद्या तणु निधान।
सेवक कर जोडी रहइ, आपइ विद्यादान ॥८॥

—पंचदड

(ख) कसमीराँ पाटणह मँझारि, सारदा तुठी ब्रह्म कुमारि।
नाल्ह रसायण नर भणइ, हियड़इ हरषि गायण कइ भाइ॥
खेलाँ मेल्हया माँडली, वइस सभा माँहि मोहेउ छइ राइ ॥ ६ ॥
सरसति सामणी तू जग जीण, हस चढी लटकावै वीण।
उरि कमलाँ भमराँ भमर; कासमीराँ मुख मडणी माइ।
तो तूठा वर प्रापिजइ, पाप छयासी जोयण जाइ ॥ ७ ॥

—वीसलदेव रासो

२(क) पच शबद वाजइ वाजित्र, राजलोक माँहि आणिउँ पचदड तंत्र।

—पचदड

(ख) धूरि दसरावै चाल्यौ राव, वाजित्र बाजइ नीसाँणे घाव।

—वीसलदेव रासौ

३ (क) मादळ भूगळ वाजइ वार, नारी वृन्द मिलिऊ अपार।

पचदड

(ख) चौरी चाढीयो भोज कौ, वाजइ मादल भूगल भेर।

—वीसलदेव रासौ

४(क) मूसा वाहन वीनउ, नेहनि मादक आहार।
एकदंत दालिद्र हरइ, ममरयाँ नं दातार॥

—पंचदंड

७ मोहनलाल दलीचंद देशाई, जैनगूर्जर कविओ, भाग तीसरा खंड २, पृ० २१५१

(ख) कर जौडे नरपति कहइ, । मूसा वाहन तिलक सदूर ।
एक दतउ मुख झलमलइ, जाणिक रोहणीउ तप्पई सूर ॥
—वी-रा-

५(क) नगर मॉहि गुडी झलहलइ, सहु लोक जोवानी मिलइ
—पं- द-

(ख) घर घर गूडी ऊछळी, हुवउ वधावउ नगरी धार ।
—वी० रा०

६(क) खीरोदक टसरू साडला, नित पहिरवा अगि दीसइ भला ।
—प० द०

(ख) दीया खरोदक पइहरणइ, माणिक मोती चौक पुरार ।
—वी० रा०

७(क) राजा पुँहुतु नयर मझारि, कन्या मेली गढह दुआरी ।
—प० द०

(ख) पाठ्यो प्रधान चल्या तिणी ठाई, गढ अजमेर पहूँता जाय ।
—वी० रा०

इस अनुमान से वीसलदेव रासो का रचना-काल भी स० १५४५-६० के आसपास निकल आता है जिसकी पुष्टि उसकी भाषा से भी होती है जो हरगिज सोलहवी शताब्दी से पूर्व की नहीं है ।

वीसलदेव रासो मे बीसलदेव के विवाह, उनकी उडीसा-यात्रा, उनकी राणी के विरह आदि का वर्णन है । इसमे चार खड है । सब मिलाकर २१६ छदों मे ग्रन्थ समाप्त हुआ है । इसकी भाषा गुजराती-राजस्थानी का मिश्रण है । मालूम होता है कि मूल ग्रन्थ गुजराती मे था, जिस पर बाद मे किसी ने राजस्थानी का रंग चढाया है । ग्रन्थ मे छदोभग बहुत है । अथ से लेकर इति तक एक पद्य भी इसमे ऐसा नहीं है जो छंदशास्त्र की दृष्टि से ठीक हो । हिंदी के विद्वानों ने इसे वीर रस की रचना बतलाकर इसकी गणना हिन्दी साहित्य के वीर-गाथा-काल के अतर्गत की है । परन्तु इसमें एक पंक्ति कहीं वीर रस की नहीं है । सारे ग्रन्थ मे राजमती के विरह का वर्णन कुछ ऐसा है जिसमें काव्यत्व की हलकी सी झलक दिखाई देती है । शेष सारा ग्रंथ साहित्यिक दृष्टि से बहुत निम्न-कोटि का है ।

नरपति की कविता का नमूना देखिए जो वीसलदेव रासौ से लिया गया है—

श्रावण वरसइ छइ छाँड़ीय धार, प्रीय विण खेलइ कवण आधार। ॱ
सखीय तें खेलइ काजली, चीड़ीय कमेड़ी मडिय आस।
पपीहो पीऊ ! पीऊ ! करइ, सखी असल सलावइ मौ श्रावण मास ॥
भादवउ वरसइ छइ मगैहर गभीर, जल, थल, महीयल सहू भरया नीर।
जाणे सरवर ऊलटइ, एक अधारी बीचखी बाय ॥
सूनी सेज विदेस पीव, दोइ दुख 'नाल्ह' क्यु सइहणा जाइ।
आसोजा घन मंडीय आस, माँड्या मदिर घरि कविलास ॥
मांड्या चौरा चउखडी, माड्या सामरि का रणिवास।
एक वलावैं वाहुड्या, नाह उतरी गयौ गगा के पार ॥

चंद बरदाई की जीवनी इतिहास की एक उलझी हुई पहेली हैं। अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ में जो बातें इनके विषय मे लिखी मिलती हैं, वे सब सदिग्ध हैं। इनकी बड़ी ख्याति को देखकर राजस्थान मे आज कई ऐसे व्यक्ति उठ खड़े हुए हैं जो अपने को चद का वशज बतलाते हैं। इनमे से कुछ ने नकली वशावलियाँ भी बना ली हैं जिन पर विश्वास लाना भारी भूल है।

चंद

परंपरा से प्रसिद्ध है कि चंद जाति के राव थे। रासौ मे इनका जन्म लाहौर मे होना लिखा है—

वलिभद्र सु नागौर, चद उपज्जि लाहौरह।
आदि सम्यो,[८] छद १०३

कुछ लोगो ने चंद के पिता का नाम वेण और गुरु का गुरुप्रसाद बतलाया है। परन्तु यह उनकी मनगढंत है। रासौ मे कही भी चंद ने अपने पिता का नाम नहीं लिखा है। न कहीं अन्यत्र इस बात का उल्लेख है। वेण नाम का कोई कवि राव जाति मे कभी हुआ होगा पर वह चद का पिता ही

८ अध्याय अथवा सर्ग के लिए पृथ्वीराज रासौ की प्राचीन लिखित कुछ प्रतियों में 'प्रस्ताव' और कुछ मे 'सम्यों' शब्द का प्रयोग देखने मे आता है। 'सम्यो' शब्द एक वचन है। इसका बहु वचन 'सम्यॉ' होता है। राजस्थान मे यह फारसी शब्द 'जमाना' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। जैसे, 'काल रो सम्यों', 'खोटा सम्या आया' इत्यादि। परन्तु हिन्दी के कुछ विद्वान 'सम्यो' (एक वचन) के स्थान पर 'समय' और 'सम्या' (बहु वचन) के स्थान पर 'समयो का प्रयोग करते हैं जो गलती है। वास्तव मे 'सम्यों' का 'समय' मे कोई सबध नहीं है। ये दो भिन्न शब्द हैं। इनके अर्थ मे उतना ही अन्तर है जितना क्रमश. इनके पर्यायवाची अंग्रेजी शब्द Period और Time में है

था, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है। और इनके गुरु का नाम गुरुप्रसाद बतलाने की भूल रासो की निम्नलिखित पक्ति को पूरी तरह न समझ सकने के कारण हुई है—

तिहि सबद ब्रह्म रचना करौ, गुरुप्रसाद सरसै प्रसन।

आदि सम्यो, छं० १३

'गुरु प्रसाद' शब्द यहाँ व्यक्ति वाचक संज्ञा नहीं है। इसका अर्थ यहाँ 'गुरु की कृपा से' है।

कहा जाता है कि चंद के कमला उपनाम मेवा और गौरी उपनाम राजौरा दो स्त्रियाँ और राजबाई नाम की एक कन्या थी। परन्तु यह कथन भी प्रमाण-शून्य है। रासौ से इसकी पुष्टि नही होती। रासौ में चद ने केवल अपने लडकों के नाम लिखे हैं और उनकी सख्या दस बतलाई है।

रासौ में लिखा है कि पृथ्वीराज और चंद दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे और एक ही दिन मरे थे—

जीह जोति कवि चद, रूप सजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह उपन्न, इक्क दीहे समाय क्रम॥

आदि सम्यों, छंद ६२

ज्यौ भयौ जन्म कवि चद कौ, भयौ जनम सामंत सब।
इक थान मरन जनमह सु इक, चलहि कित्ति ससि लग्गि रव॥

आदि सम्यों, छद ७६०

इतिहासकारों ने पृथ्वीराज का जन्मकाल सं० १२२० के लगभग और मृत्युकाल सं० १२४९ निश्चित किया है। अत. पृथ्वीराज रासौ के अनुसार यही समय चंद का भी ठहरता है।

भारतीय विद्याभवन, बबई, के आचार्य जिन विजय मुनि द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबध संग्रह' (सिंघी जैन ग्रंथमाला पुष्प २) मे पृथ्वीराज और जय-चंद विषयक प्रबधो मे चद-रचित चार छप्पय उद्धृत हैं। जिस प्राचीन प्रति में ये छप्पय मिले हैं वह स० १५२८ की लिखी हुई है। इससे मालूम होता है कि चद नाम का कोई कवि स० १५२८ से पहले हुआ अवश्य है। परन्तु वह चद कब हुआ, कहाँ हुआ, उसने क्या लिखा, कितना लिखा इत्यादि बातों के जानने का कोई साधन प्राप्त नहीं है। केवल एक बात दृढतापूर्वक कही जा सकती है। वह यह कि प्राचीनकालीन वह चद और अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ का कर्ता दोनों एक नहीं हैं। क्योंकि दोनों की भाषा

है ।[१] इससे पूर्व के लिखे पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (सं० १२४६), प्रबन्ध-चिन्तामणि (सं० १३६१), हमीर महाकाव्य (सं० १४६०), सुर्जन चरित्र (सं० १६३५) इत्यादि संस्कृत-ग्रंथों में, जिनमें पृथ्वीराज अथवा चौहाण-वंशी अन्य राजाओं का वर्णन आया है, रासौ का नाम ही नहीं मिलता। राज-प्रशस्ति की तरह रासौ के लेख का हवाला देना तो बहुत दूर की बात है। न अठारहवीं शताब्दी से पूर्व के किसी भाषा ग्रंथ में इसका नामोल्लेख है। इससे मालूम पड़ता है कि अठारहवीं शताब्दी में यह बनाया गया है और संभवतः इसकी और राजप्रशस्ति की रचना लगभग साथ साथ ही हुई है।

'राजप्रशस्ति' के लिए इतिहास-सामग्री एकत्र करवाने में महाराणा राजसिंह ने बहुत व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी। फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थों आदि के रूप में इतिहास-विषयक प्रचुर सामग्री प्रकाश में आई और 'राज रत्नाकर' 'राजप्रकाश' आदि संस्कृत-हिन्दी के इतिहास-सम्बन्धी कई ग्रंथ उसी समय नये भी लिखे गये। इसी समय चंद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासौ लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो, लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती। अतः चंद-रचित बतलाकर उसने इस सारे झगड़े का अंत कर दिया। चन्द का नाम लोक-[illegible] था ही। लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।

[illegible]स्ति' का लिखना संवत् १७१८ में प्रारंभ हुआ था और [illegible] १७३२ में हुई थी। अतएव इसी समय के समानान्तर

---

[१] [illegible] पृथ्वीराजस्य भूपतेः ।
पतिरिन्यनिहार्दन ॥२४॥
[illegible] मगरून ।
[illegible]मंनयो[illegible] ॥२५॥
[illegible] महायत्न ।
मसिनो रणे ॥२६॥
[illegible]म्भिना ।
[illegible] ॥२७॥
—तृतीय सर्ग

मे बहुत अंतर है। 'पुरातन प्रबंध संग्रह' मे उद्धृत छप्पयों की भाषा वस्तुत: बहुत पुरानी है, परन्तु आजकल जो ग्रंथ पृथ्वीराज रासौ के नाम से चल रहा है उसकी भाषा उतनी प्राचीन नहीं है। कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर १८ वीं शताब्दी मे किसी दूसरे व्यक्ति ने चंद के नाम से उसे बनाया है। ऐसी दशा मे पृथ्वीराज रासौ के आधार पर चंद का जो इतिवृत्त ऊपर दिया गया है वह ठीक हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। यदि पृथ्वीराज रासौ के इस अज्ञातनामा कवि को प्राचीन-कालीन असली चंद की जीवन सम्बन्धी बातों का पता रहा हो और उन्हे अपने इस रासौ में स्थान दिया हो तो संभव है कि इनमे से कुछ बाते ठीक हों। परन्तु इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। अब रही इस दूसरे व्यक्ति अर्थात् अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ के रचयिता चंद के जीवनवृत्त की बात। और सच पूछिए तो इसी से हमे मतलब भी है। परन्तु इसका जीवन-रहस्य अतीत के अतल अंधकार मे छिपा हुआ है और शायद आकल्पान्त रहेगा। पृथ्वीराज रासौ की भाषा, वर्णन-शैली, विषय-सामग्री के आधार पर इस समय तो अधिक से अधिक यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह व्यक्ति राजस्थान-निवासी होना चाहिए। राजस्थान के बाहर का वह नहीं हो सकता।

पृथ्वीराज रासौ कब रचा गया, यह एक समस्या है। इसका प्रथम प्रामाणिक उल्लेख राजप्रशस्ति[१] महाकाव्य मे मिलता है। इसके तीसरे सर्ग मे रावळ समरसिंह के वर्णन मे भोटिंग भट्ट लिखता है कि समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई से विवाह किया था और शहाबुद्दीन के साथ की लडाई में वह मारा गया जिसका वृत्तान्त भाषा के रासो ग्रन्थ मे लिखा

---

१ मेवाड की वर्तमान राजधानी उदयपुर से ४० मील उत्तर-पूर्व में महाराणा राजसिंह प्रथम (स० १७०९-३७) का बनवाया हुआ राजसमँद नाम का एक बहुत बडा तालाब है। यह तालाब चार मील लंबा और पौने दो मील चौडा है। इस पर १०५४७५८४ रुपया खर्च हुआ था। इसके नौचौकी नामक बाध पर ताकों में पचीस बडी-बडी शिलाओं पर खुदा हुआ यह 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य भारत भर मे सब से बडा है। यह काव्य संस्कृत मे है। इसमें २५ सर्ग हैं और १०१७ श्लोक। इसमें मेवाड का इतिहास वर्णित है। यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नहीं है। इतिहास और काव्य दोनों का इसमें सुन्दर समन्वय हुआ है। इसका रचयिता तैलंग जातीय कठोडी कुलोत्पन्न रणछोड नाम का कोई पंडित था।

है।[10] इसमें पूर्व के लिखे पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (स० १२४६), प्रबंध-चिन्तामणि (स० १३६१), हमीर महाकाव्य (स० १४६०), सुर्जन चरित्र (स० १६३५) इत्यादि संस्कृत-ग्रंथो में, जिनमें पृथ्वीराज अथवा चौहाण-वंशी अन्य राजाओ का वर्णन आया है, रासौ का नाम ही नहीं मिलता। राज-प्रशस्ति की तरह रासौ के लेख का हवाला देना तो बहुत दूर की बात है। न अठारहवी शताब्दी से पूर्व के किसी भाषा ग्रंथ में इसका नामोल्लेख है। इससे मालूम पड़ता है कि अठारहवीं शताब्दी में यह बनाया गया है और संभवत इसकी और राजप्रशस्ति की रचना लगभग साथ साथ ही हुई है।

'राजप्रशस्ति' के लिए इतिहास-सामग्री एकत्र करवाने मे महाराणा राजसिंह ने बहुत व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी। फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थों आदि के रूप मे इतिहास-विषयक प्रचुर सामग्री प्रकाश में आई और 'राज रत्नाकर' 'राजप्रकाश' आदि संस्कृत-हिन्दी के इतिहास-सम्बन्धी कई ग्रंथ उसी समय नये भी लिखे गये। इसी समय चंद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासौ लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि वह व्यक्ति रासौ को अपने नाम से प्रचारित करता तो, लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बाते उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती। अत. चंद-रचित बतलाकर उसने इस सारे झगडे का अंत कर दिया। चन्द का नाम लोक-प्रचलित था ही। लोगो को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।

'राज प्रशस्ति' का लिखना संवत् १७१८ मे प्रारंभ हुआ था और समाप्ति उसकी संवत् १७३२ में हुई थी। अतएव इसी समय के समानान्तर

---

[10] तत समरसिंहाख्य पृथ्वीराजस्य भूपते ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दत ॥२४॥
गोरी साहिबदीनेन गज्जनीशेन सगरम् ।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामन्तशोभिन ॥२५॥
दिल्लीश्वरस्य चौहान-नाथस्यास्य सहायकृत् ।
स द्वादश सहस्रै स्ववीराणा सहितो रणे ॥२६॥
ध्वा गोरिपतिं दैवात् स्वर्यात. सूर्यबिम्बभित् ।
भाषा रासा पुस्तकेऽस्य युद्धस्योक्तोऽस्ति विस्तर ॥२७॥

—तृतीय सर्ग

का समय 'पृथ्वीराज रासौ' की रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि 'राजप्रशस्ति' का लिखना आरंभ करने से पूर्व उसके लिए सामग्री जुटाने का काम शुरू हो गया होगा, और सम्भव है कि उसी समय रासौ का भी श्रीगणेश हो गया हो तो इस समय को खींच-खाँचकर संवत् १७०० तक भी ले जाया जा सकता है। परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनों का गला घोटना है।

उपरोक्त कथन की पुष्टि रासौ की प्राचीन लिखित प्रतियों से भी होती है। संपूर्ण रासौ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई हैं वे उक्त समय के बाद की हैं। इससे पहले की जो भी प्रतियाँ बतलाई जाती हैं वे सब जाली हैं। सब से प्राचीन प्रति सं० १७६० की है। यह मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय के शासनकाल (सं० १७५५-६७) में लिपि बद्ध हुई थी। इसका अन्तिम पुष्पिका-लेख इस प्रकार है—

"संवत् १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवत्तमाने उत्तरायन गते श्री सूर्ये शिशिर ऋतौ सन्मागल्यप्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे ॥ श्री उदयपुर मध्ये हिन्दू पति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंहजी विजय राज्ये। मेदपाट ज्ञातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखित चंदवरदाई कृत पुस्तक ॥"

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित रासौ का मूलाधार यही प्रति है और इसी की प्रतिलिपि को उक्त संस्करण के संपादकों ने सं० १६४१ की लिखी हुई बतलाया है जिसकी वजह से विद्वानों में बड़ा भ्रम फैला है तथा डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा प्रभृति इतिहासकार रासौ का रचना-काल सं० १६०० के आसपास निश्चित करने को बाधित हुए हैं। अतः इसके विषय में दो-एक बातें और जान लेना आवश्यक है।

उक्त पुष्पिका के बाद इसके अंत में नीचे लिखे दो छप्पय और दिए हुए हैं—

(१)

मिली पंकज गन उदधि, करद कागद कातरनी।
कोटि कवी काजलह, कमल कटिकते करनी ॥

११, देखिए, माधुरी, फरवरी, १९४७ के अंक में प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासौ का निर्माण काल' शीर्षक हमारा लेख, पृ० ७-१०।

इहि तिथि सख्या गुनित, कहे कक्का कवियानै ।
इह श्रम लेखनहार, भेद भेदै सोइ जानै ॥
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय, जन वड या दुख ना लहय ।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखिक विनती करय ॥

(२)

गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय ।
छन्द गुनी तें तुट्टि, मन्द कवि भिन्न-भिन्न किद्धिय ॥
देस देस विष्परिय, मेल गुन पार न पावय ।
उद्दिम करि मेलवत, आस विन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस त्रप, हित श्री मुख आयस दयौ ।
गुन वीन वीन करुना उदधि, लखि रासौ उद्दिवम कियौ ॥

पहले छप्पय के प्रथम दो चरणो का अर्थ स्पष्ट नहीं है ।[१२] फिर भी इतना तो समझ पड़ता है कि इस मे इस प्रति का लेखन-काल दिया गया है, जो वही होना चाहिए जिसका पुष्पिका मे उल्लेख है । परन्तु इस वात की ओर ध्यान न देकर इसका गलत अर्थ इस प्रकार किया गया है, "यदि पकज से पकज नाल (१) गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान ले तो सवत् १६४१ बनता है । शेष शब्दो मे मास, तिथि आदि होगी, पर यह स्पष्ट नहीं होता । यदि इस हिसाब से रासो का सकलन सवत् १६४१ मान लिया जाय, तो कुछ अनुचित नहीं होगा । इससे कई बातो का सामजस्य हो जायगा ।[१३]"

दूसरे छप्पय के 'चित्रकोट रान अमरेस त्रप' शब्दो से अभिप्राय चित्तौड़ के राणा अमरसिंह प्रथम (स० १६५३-७६) लिया गया है[१४] और इन दोनो

---

१२ प्राचीन ग्रथों में 'उदधि' और 'करद' (खड्ग) को क्रमशः ७ और १ की सख्या का सूचक माना गया है । अत. "अकाना वामतो गति." नियम के अनुसार "मिली पकज गन उदधि करद" मे '१७' की सख्या तो ठीक निकल आती है पर आगे अर्थ साफ नहीं है ।

१३ देखिए स० १९९० की ओरिएण्टल कान्फ्रेंस के हिन्दी-विभाग के सभापति की हैसियत से दिया गया डा० श्यामसुन्दरदास का भाषण ।

१४ देखिए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित पृथ्वीराज रासो की उपसंहारिणी टिप्पणी, पृ० १७८ ।

मिथ्या धारणाओं के आधार पर रासौ की सब से प्राचीन प्रति का लिपि-काल सं० १६४१ और रासौ का निर्माणकाल स० १६४१ से पूर्व स० १६०० के आसपास बतलाया गया है। वास्तव मे न तो रासौ की सब से प्राचीन प्रति स० १६४१ की लिखी हुई है और न रासौ का निर्माण-काल सं० १६०० के आसपास है। सवत् १७०० और स० १७३२ के बीच किसी समय यह रचा गया है।

पृथ्वीराज रासौ मे हिंदूपति महाराज पृथ्वीराज चौहाण का जीवन चरित्र वर्णित है। परन्तु चरित्र-नायक के समय का लिखा हुआ न होने से इसमें इतिहास विषयक अनेक त्रुटियाँ आ गई हैं। वस्तुत. दो-चार व्यक्तियों के नामों एव घटनाओं का सही उल्लेख होने के अलावा इसमें तथ्य की बात और कुछ भी नहीं है। इसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करने के लिए मोहन-लाल विष्णुलाल पड्या आदि विद्वानों ने अनन्द सवत् आदि की जो उक्तियाँ पेश की हैं वे सब निराधार, भावुकतापूर्ण और भ्रामक हैं।

परन्तु साहित्य की दृष्टि से रासो एक अपूर्व ग्रथ है। यह एक महाकाव्य है। इसमे एक लाख छद हे और ६६ प्रस्ताव। भाषा इसकी पिंगल अर्थात् राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा है जिस पर प्राकृत, अपभ्रश अरबी, फारसी आदि का भी रग यत्र तत्र लगा हुआ है। इसमे साटक, दोहा, पद्धरि, गाहा, तोमर भुजगी, आदि अनेक प्रकार के छद प्रयुक्त हुए हैं पर कवित्त (छप्पय) की सख्या सब से अधिक है। कविता रासौ की बहुत सबल वीरोल्लासिनी एव अर्थ-गौरव पूर्ण है। लिखा है—

> काव्य समुद्र कवि चद कृत, मुकत समप्पन ग्यान।
> राजनीति बोहिथ सुफल, पार उतारन यान॥

रासौ में वीर रस प्रधान तथा शेष रस गौण हैं और, जैसा कि एक महा-काव्य में होना चाहिए, सध्या, रात्रि, प्रभात, चद्र, मृगया, वन, ऋतु. सभोग, विप्रलभ, विवाह, रण-प्रयाण इत्यादि का इसमे यथास्थान सन्निवेश हुआ है। चद की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासौ मे दिखाई देता है। कथा का तारतम्य निभाने तथा पात्रों का चरित्रांकन करने मे तो चद सिद्धहस्त थे ही वर्ण्यविषय को साकार रूप दे देने की अद्भुत शक्ति भी उनमे विद्यमान थी। अतः जिस विषय को उन्होंने पकडा उसका ऐसा सागोपाग, सजीव और विशद वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। वस्तुतः रासौ मे महाकाव्य

की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता है। इसकी कथा के वर्णन मे बड़ा वेग, बड़ी गति है। बडी तेजी के साथ कथा-प्रवाह आगे बढता है और पाठक को भी अपने साथ लेता चलता है। इसके सिवा एक दूसरी विशेषता जो रासौ में देखी जाती है, वह है कर्म-समारोह की व्यस्तता, पात्रों की क्रियाशीलता। एक भी पात्र इसमे ऐसा नहीं है जो निश्चेष्ट एव अकर्मण्य हो। सभी को कुछ और कुछ करना है। अपनी-अपनी धुन में मस्त सभी चले जा रहे हैं। कोइ सैन्य-शिविर मे, कोई रणागण मे और कोई राज दरबार मे। और तो और, जेलखाने तक में पात्रों की हलचल मौजूद है।

व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त समष्टि रूप मे हिन्दू-मुसलमान दो जातियों का चरित्रोद्घाटन भी रासौ में खूब हुआ है। मुसलमानो की धर्मान्धता एव बर्बरता, राजपूतों के शौर्य्य, उनकी डॉवाडोल स्थिति और उनके पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासौ मे मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रासौ पृथ्वीराज का जीवन-चरित्र है परन्तु असल मे है वह हिन्दू-मुसलिम सघर्ष की अमर कहानी।

पाठकों के विनोदार्थ चद की कविता के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :—

इक्कु बाणु पहुवीसु जु पइ कइबासह मुक्कओ।
उर भितरि खडहडिउ धीर कक्खतरि चुक्कउ॥
बीअ करि संधीउ भमइ सूमेसर नदण।
एहु सु गडि दाहिमओ खणइ खुद्दइ सइभरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
नं जाणउं चदबलद्दिउ किं न छुट्टइ इह फलह॥१॥

अगहु म गहि दाहिमओ रिपुराय खयकरु।
कूडु मत्रु मम ठवओ एहु जबूय (प?) मिलि जग्गरु॥
सह नामा सिक्खवउ जइ सिक्खिविउ बुज्झइ।
जपइ चद बलिहु मज्झ परमक्खर सुज्झइ॥
पहु पहुविराय सइभरि धणी सयंभरि सउणइ सभरिसि।
कइबास विआस विसट्टविणु मच्छिबधि बद्धओ मरिसि॥२॥

नृप ढकन हल होइ हलह ढकन सु गज भर।
ग्रह ढंकन वर देव देव ढकन वर अबर॥

अपजस ढकन कित्ति कित्ति ढकन जस धारिय ।
औगुन ढकन विद्य सुगुन विद्या उच्चारिय ॥
ढकनह काल वर ध्रंमको ध्रम काल ढकन करिय ।
मावत्ति गुरू ढकै जु सिसु सिसु ढकन पित उच्चरिय ॥३॥

मनहुँ कला ससिभान कला सोलह सा वन्निय ।
बाल बेस ससिता समीप अंम्रित रस पिन्निय ॥
बिगसि कमल म्रिग भमर बैन षजन मृग लुट्टिय ।
हीर कीर अरु बिंब मोति नष सिष अहि घुट्टिय ॥
छत्रपति गयद हरि हंस गति विह बनाय सचै सच्चिय ।
पदमिनिय रूप पदमावतिय मनहु काम कामिनि रच्चिय ॥४॥

बीर हक्क वर वज्जि थंभ फट्ट्या धर फट्टिय ।
निडर जोति निब्बरिय लयौ मृगकस्य दबट्टिय ॥
वरनि धूरि धुंधरिय तीन भुवन परि भग्गिय ।
भयौ सद्द हकार जोग - माया ते जग्गिय ॥
प्रह्लाद थप्पि उथ्थपि अरिन तीन लोक सुर असुर डरि ।
षिल अषिल पेल षेलन पलन कहर रूप नरसिह धरि ॥५॥

भरनि भीर षलभलत रेन चल मलति पवन करि ।
लोथ लोथ पर परति अर्क नहि सकत गवन करि ॥
श्रोन छिंछ उच्छरंत सुभट सुम्भति जनु किंसुव ।
गजन ढाल कढ्ढरति मार संघर तक्क मध भुव ॥
विरचत विफुरि सोमेस सुअ सहस करन वर कर बढिय ।
बन वृंद पियन बडवानल कि क्रस्न जानि संमुह कढिय[१५] ॥६॥

इसमें सन्देह नहीं कि इस काल की सामग्री राजस्थानी-भाषा मे प्रचुर परिमाण मे मिलती है । परन्तु यह सामग्री ऐसी नहीं है कि इसके आधार पर इस काल के साहित्य एवं लोक जीवन की किसी विशेष प्रवृत्ति का पता लगाया जा सके । धर्म, कथा, प्रेम, आदि विषयों के बहुत छोटे-छोटे ग्रंथ एवं फुट कर छद मिलते हैं जो भाषा और साहित्य दोनों की अप्रौढावस्था को सूचित करते हैं ।

---

१५ इन छप्पयों मे से पहला और दूसरा मुनि जिन विजय द्वारा सपादित 'पुरातन प्रबंध संग्रह' मे लिए गये हैं । शेष चारों मुद्रित रासों मे है

तीसरा प्रकरण

पूर्व मध्यकाल (सं० १४६०-१७००)

मध्यकाल से पूर्व प्रारंभ काल में राजस्थान और गुजरात की भाषा एक थी, यह बात पहले कही जा चुकी है। पर उसके बाद उसकी दो स्पष्ट शाखाएँ फट गईं, राजस्थानी और गुजराती।

राजस्थानी की ढूँढाड़ी आदि सभी बोलियों में साहित्य-रचना होने लगी, पर सबसे अधिक गौरव मारवाड़ी ने प्राप्त किया जिसका साहित्य आजकल डिंगल साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा बन गई।

इस काल के कवियों के मुख्य विषय थे-शृंगार, भक्ति और कीर्ति कथन।

'ढोला मारू रा दूहा' और 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' शृंगार रस के दो अपूर्व ग्रंथ इस युग में रचे गए। ये दोनों ग्रंथ डिंगल में हैं और भाषा एवं भाव की दृष्टि से बेजोड़ हैं। डिंगल में इनकी टक्कर का कोई थ बाद के युगों में नहीं लिखा गया।

भक्त कवियों में मीराँबाई और ईसरदास के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक मत-समाज में मीराँ के पद बड़े प्रेम के साथ गाए, सुने और सराहे जाते हैं। ईसरदास की रचनाओं का चारण जाति में यथेष्ट आदर है।

चारण आदि राजाश्रित जातियों के कवियों की रचनाओं में नरेश-भक्ति अथवा वीरपूजा का प्राधान्य रहा। परन्तु कोई उच्च कोटि का बड़ा ग्रंथ नहीं लिखा गया। अधिकांश कवि फुटकर गीत-दोहों के लिखने ही में व्यस्त रहे। इसमें सन्देह नहीं कि ये रचनाएँ भौतिक उद्देश्यों को सामने रखकर लिखी गई हैं और इनमें एक ही भाव-धारा प्रवाहित हो रही है, परन्तु हैं ये बहुत प्राणवान। इनकी भाषा में रवानी और गति है। वर्णन में कला और मौलिकता है। ये डिंगल भाषा की प्रौढावस्था को सूचित करती हैं।

इसी युग में संत दादू दयाल ने दादूपंथ को जन्म दिया, जिनके शिष्यों में कई उच्चकोटि के साहित्यकार हुए। दादूपंथ के अनुकरण पर कालान्तर में

कुछ और पथ उठ खड़े हुए जिनके अनुयायियों ने भी अपनी कृतियों द्वारा राजस्थानी साहित्य के भंडार को भरा।

शिवदास

शिवदास जाति के चारण थे। इन्होंने 'अचळदास खीचीं री वचनिका' नामक एक छोटा-सा ग्रंथ बनाया जिसमें माडू के पातशाह (होशंगशाह?) और गागरौनगढ के खीची राजा अचलदास के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध सं१४८५ के लगभग हुआ था और अचळदास इसमें मारे गए थे। डा० टैसीटरी ने वचनिका को इस युद्ध की समकालीन रचना बतलाया है१। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। भाषा डिंगल है। रचना सामान्य रूप से अच्छी है। उदाहरण—

दूहा

एकणि वनि वसतड़ा, एवड अंतर काइ।
सीह कवड्डी ना लहै, गैवर लक्खि विकाइ ॥१॥
गैवर गळै गळथीयौ, जहँ खन्चै तहँ जाइ।
सीह गळथ्थण जे सहै, तो दह लक्ख विकाइ ॥२॥

(सिंह और हाथी एकही वन के निवासी हैं, फिर इतना अंतर क्यों? सिंह का तो एक कौडी भी मोल नहीं होता और हाथी लाखों में विकता है ॥१॥ हाथी के गले में बन्धन पड़ा रहता है इसलिए वह जिधर खींचा जाय उधर ही चला जाता है। यदि सिंह ऐसे गले के बन्धन को सह सके तो वह दस लाख में बिके ॥२॥)

वात

"ते राजा नरसिंघदास सारीखा। छत्रीस सहस साहण रिणि खेति मेल्हि चाल्या। मदोमत्त हस्ती रिणिखेत मेल्हि चाल्या। समद्रि जाइ खॉडा पखाल्या। अनेक गाउ मदगलित करि मेल्या। ते [illegible] ास का बेटा। चाटजी, खेमजी मागीखा। बूंदी का चक्रवर्ति [illegible] नेम तौ कोण-कोण। सन्यासी। नमीयाड, अग्रे [illegible] पुर, माड, सीहौर, हैसगाबाद, नगर [illegible] का। खड-खंड का। नगर-नगर का घर [illegible] ढळ चढि चाल्या। पातसाहि पापाण पै [illegible]

१५ इन [illegible] Descriptive Catalogue of [illegible] ग्रन्थ सग्रह' में लिए गये हैं [illegible]te, Fasc I., p. 41

छ। जिहा का पातसाह कै मनि रीस वसी। कुणै का माथा मौं खिसी। कुणैह देव रूठौ। कुणै की माट वियॉणी जो सामहा रहै।'

राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोककाव्य "ढोला मारू रा दूहा" के रचयिता कल्लोल कवि के जन्मकाल, वंश, माता-पिता इत्यादि के विषय मे कुछ मालूम नहीं हैं। केवल उनके इस ग्रन्थ के निर्माण-काल का पता है जो सं० १५३० है और जिसका उल्लेख उन्होने इस के अन्तिम दोहे में इस प्रकार किया है—

कल्लोल

पनरहसे तीसै वरस, कथा कही गुण जाण।
वदि वैसाखे वार गुरु, तीज जाण सुभ वाण॥

'ढोला मारू रा दूहा' एक प्रेम गाथात्मक काव्य है। इसकी कहानी का सारांश यहाँ दिया जाता है—

किसी समय पूगल देश में पिंगल नाम का कोई राजा राज्य करता था। उसी समय नरवर पर नल का राज्य था। पिंगल के एक कन्या हुई जिसका नाम मारवणी था। नल के पुत्र का नाम ढोला था। एक बार पूगल देश मे अकाल पड़ा जिससे राजा पिंगल कुछ दिनों के लिये पुष्कर मे जा रहा। इन्हीं दिनो राजा नल भी तीर्थयात्रा करता हुआ वहाँ आ निकला। दोनो मे मित्रता हो गई। पिंगल ने अपनी लड़की मारवणी का विवाह नल के लड़के ढोला के साथ कर दिया। उस समय ढोला की उम्र तीन वर्ष की और मारवणी की डेढ़ वर्ष की थी। शरद ऋतु के आने पर दोनों राजा अपने-अपने देश चले गये। मारवणी की अवस्था छोटी थी इसलिये वह उस वक्त ढोला के साथ नरवर नहीं भेजी गई।

कई वर्ष बीत गये। ढोला जवान हुआ। पूगल देश दूर था इसलिये उसके पिता ने उसका दूसरा विवाह मालवे के राजा की लड़की मालवणी से कर दिया और उसके पूर्व विवाह की बात उससे छिपा रखी।

इधर मारवणी जब बड़ी हुई तब उसके पिता ने ढोला को बुलाने के लिये कई दूत भेजे। परन्तु सौतिया डाह की वजह से मालवणी ने पूगल और नरवर के रास्तों पर ऐसा प्रबंध कर रखा था कि संदेश-वाहक ढोला तक पहुंच ही नहीं पाते थे। बीच ही मे मार दिये जाते थे।

एक रात मारवणी ने ढोला को सपने मे देखा। इससे उसकी विरह-वेदना

बढ़ गई। इसी समय नरवर की ओर से घोड़ों का एक व्यापारी पूगल आया। उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। यह बात मारवणी के कानों तक भी पहुँची। वह पागल-सा हो गई। और कुछ ढाढियों को अपना प्रेम-सन्देशा देकर ढोला के पास भेजा जो मार्ग में मालवणी के तैनात किये हुए आदमियों को भुलावा देकर किसी तरह ढोला के महलों तक जा पहुँचे। वहाँ रात भर उन्होंने बड़ी सुरीली और दर्द भरी आवाज में गा-गाकर मारवणी का प्रेम-सदेशा ढोला को सुनाया। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही ढोला ने ढाढियों को बुला भेजा और सब हाल मालूम किया। सुनकर उसकी उत्कठा बढ़ गई और मारवणी से मिलने के लिये वह आतुर हो उठा।

एक दिन ढोला घोड़े पर सवार होकर मारवणी से मिलने के लिये जाने लगा। मालवणी को इसका पता लग गया। उसने दौड़कर घोड़े की रकाब पकड़ ली—

ढोलौ हल्लाणौ करै, धण हल्लवा न देह।
झबझब झूंबै पागड़ै, डबडब नयण भरेह॥

उस दिन वह वापस लौट आया। परन्तु कुछ दिन बाद एक रात को जब मालवणी सोई हुई थी वह चुपके से एक ऊँट लेकर वहाँ से चल पड़ा।। ऊँट पर बैठकर उसने एक बार नरवर के दुर्ग की ओर देखा और कह गया—

"आस्याँ तो मिळस्यों वळै, नरवर कोट जुहार।"

कुछ दिन बाद ढोला पूगल पहुँचा। वहाँ उसका बड़ा स्वागत-सम्मान हुआ। पाँच-सात दिन वह वहाँ रहा। फिर मारवणी को लेकर वहाँ से रवाना हुआ। मार्ग में एक पड़ाव पर मारवणी को एक साँप ने काट खाया जिससे उसकी मृत्यु हो गई। ढोला विलाप करने लगा और चिता बनाकर अपनी प्रिया के साथ जलने को उद्यत हो गया। इतने में योगी-योगिन के वेष में शिव-पार्वती वहाँ आ गये। उन्होंने मारवणी को पुनर्जीवित कर दिया।

यहाँ से आगे बढ़ने पर एक घटना और हुई। ऊमर नाम के एक व्यक्ति ने मारवणी को छीनने के लिये अपने दल-बल सहित उनका पीछा किया। अपना घोड़ा ढोला के ऊँट के पास ले जाकर उसने कहा—"हे ठाकुर! अलग क्यों चल रहे हो, आओ, कसूँबा (पानी में घुली हुई अफीम) पिएँ। फिर साथ-साथ ही चलेंगे।" ढोला उसके कपट-जाल को न समझ सका और ऊँट से उतर पड़ा।

मारवणी ऊँट की मुहरी (नकेल) पकड़ कर अलग खड़ी हो गई। ढोला और ऊमर पास ही बैठकर कसूँवा पीने लगे। ऊमर के साथ मारवणी के पीहर की एक ढोलिन थी। उसने गा-गाकर ऊमर के षड्यंत्र की सारी बात मारवणी को समझा दी। इस पर उसने अपने ऊँट के एक छड़ी मारी। ऊँट हड़बड़ाया और उछलने लगा। ढोला उसे सभालने के लिये मारवणी के पास आया। इसी समय मारवणी ने चुपके से सारी बात उसके कान में डाल दी। तब ढोला और मारवणी दोनों ऊँट पर बैठ गये और वहाँ से निकल भागे। ऊमर ने उनका पीछा किया। परन्तु हताश होकर उसे वापस लौटना पड़ा।

अन्त मे ढोला-मारवणी घरं पहुँच गये और बड़े आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे—

> आणँद अदि उछाह अति, नरवर माँहै ढोल।
> ससनेही सयणाँ तणाँ, कळि माँ रहिया बोल॥

यह है 'ढोला मारू रा दूहा' की कहानी। बहुत सीधी-सादी और सुलझी हुई। कवि ने इसे ऐसे अनूठे ढग से कहा है, और काव्य-कल्पना का रग इस मे इस तरह भरा है कि सारी की सारी कहानी जगमगा उठी है। पजाब मे जिस तरह हीर-राँझन की कहानी घर-घर मे प्रसिद्ध है उसी तरह यह कहानी राजस्थान-वासियो के गले का हार बन गई है। सैकड़ो वर्षों से लोग इसे कहते और सुनते आ रहे है। परन्तु अभी तक भी उनकी तृप्ति नहीं हुई है। सुननेवाला कभी नहीं कहता कि यह कहानी मुझे मत सुनाओ मेरी सुनी हुई है। न कभी कहनेवाला थकता है।

कुछ लोगो ने इस कहानी मे से ऐतिहासिक तथ्य निकालने की कोशिश भी की है। उनका कहना है कि ढोला-मारवणी ऐतिहासिक व्यक्ति है और उसके विवाह की बात एक ऐतिहासिक घटना है। ढोला को उन्होंने कछवाहा वश के राजा नल का पुत्र बतलाया है और उसका समय स० १००० के आस पास माना है। परन्तु ढोला नाम का कोई राजा हुआ हो या न हुआ हो, मारवणी उसकी राणी रही हो या न रही हो, कहानी फिर भी अमर है। इस कहानी का आकर्षण इसकी ऐतिहासिक कथा-वस्तु पर निर्भर नहीं है। इसका भाव सरसता और मार्मिकता पर अवलबित है।

'ढोला मारू रा दूहा' का महत्व एक और प्रकार से भी है। यह डिंगल भाषा का पहला काव्य-ग्रन्थ है। इससे पूर्व का लिखा हुआ डिंगल भाषा का

कोई काव्यग्रन्थ नही मिलता । यह राजस्थान का जातीय काव्य है । इसमें राजस्थान का वातावरण है, राजस्थानीय जीवन की झॉकी है । राजस्थान के वृद्ध स्त्री-पुरुष इसमें अपने बीते हुए प्रेममय यौवन काल की स्मृतियाँ और युवक-युवतियाँ अपने भावी जीवन की मधुर भाव-भावनाएँ देखते हैं । शृङ्गार रस की मौलिक उक्तियो, रमणीय उद्भावनाओ से ग्रन्थ भरा पड़ा है । उदाहरण :—

बाबहियो नै विरहणी, दुहुवॉ एक सहाव ।
जब ही बरसै घण घणौ, तब ही कहै प्रि-याव ॥

(पपीहा और विरहिणी दोनों का एक स्वभाव है । जब मेघ बरसता है तब दोनो "पी-आव, पी-आव" पुकारते हैं ।)

बिज्जुळियॉ नीळज्जियॉ, जळहर तूँ ही लज्जि ।
सूनी सेज विदेस प्रिय, मधुरै मधुरै गज्जि ॥

(बिजलियाँ तो निर्लज्ज हैं । हे जलधर, तू ही लज्जित हो । मेरी शय्या सूनी है । मेरा प्यारा विदेश में है । इसलिए मधुर-मधुर शब्द से गरज ।)

राति सखि इण ताल मईं, काइज कुरळी पखि ।
उवै सरि हूँ घर' आपणै, बिहूँ न मेळी अखि ॥

(हे सखी, रात को इस सरोवर मे किसी पक्षी ने कलरव किया । वह अपने सरोवर में और मैं अपने घर मे—हम दोनों ही की ऑख नहीं लगी ।)

पथी हाथ सदेसड़ौ, धण विळलती देह ।
पग सू काढै लीहटी, उर ऑसुऑ भरेह ॥

(मारवणी विलाप करती हुई पथिक के हाथ सँदेशा देती है, पैर से (पृथ्वी पर) रेखा खींचती है और अपना हृदय ऑसुओं से भर लेती है ।)

हियडै भीतर पैस करि, ऊगौ सज्जण रूँख ।
नित सूकै नित पल्हवै, नित नित नवला दूख ॥

(मेरे हृदय मे प्रविष्ट होकर साजन-रूपी वृक्ष उगा है । वह नि[illegible] है और नित्य पल्लवित होता है जिससे नित्य नये-नये दुख देख[illegible]

अकथ कहाणी प्रेम की, किण सूँ [illegible]
गूँगा का सुपना भया, सुमर [illegible]

(प्रेम की अकथनीय कहानी किसी से नहीं कही जाती। यह गूँगे के स्वप्न के समान हो गई है जिसे वह यादकर कर के पछताता है।

यहु तन जारौं मसि करूँ, धूँआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय वद्दल होइ करि, वरसि बुझाव अग्गि॥

(यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूँ और उसका धुँआ स्वर्ग तक पहुँच जाय। मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसै और बरसकर आग को बुझा दे।)

भरै पळट्टै भी भरै, भी भरि भी पळटेहि।
ढाढी हाथ सदेसड़ा, धण विळळती देहि॥

(मारवणी संदेशा कहती है, बदलती है, फिर कहती है, कहकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलाप करती हुई ढाढी के हाथ संदेशे देती है।)

इहाँ सु पजर मन उहाँ, जय जाणैला लोइ।
नयणाँ आडा वीझ वन, मनह न आडौ कोइ॥

(मेरा देह-पिंजर तो यहाँ है और मन वहाँ है। वास्तव में यदि लोग समझे तो यद्यपि आँखों के अवरोधी बने जगल हैं पर मन का अवरोधी कोई नहीं।)

डूँगर केरा वाहळा, ओछाँ केरा नेह।
वहता वहै उतावळा, झटक दिखावै छेह॥

(पहाड़ी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम बहते समय तो बड़ी तेजी से बहते हैं पर तुरन्त ही अन्त दिखा देते हैं।)

ए वाड़ी ए वावड़ी, ए सर केरी पाळ।
वै साजण वै दीहडा, रही सँभाळ सँभाळ॥

(यह वाटिका, यह वावडी, यह तालाब की पाल, वे पति, वे दिन इनको बार-बार याद करती हूँ।)

चदा तो किण खडियौ, मो खंडी किरतार।
पूनिम पूरौ ऊगसी, आवतै अवतार॥

(हे चन्द्र, मुझे विधाता ने खडित किया पर तुझे किसने खडित किया है। तू तो पूर्णिमा को पूर्ण होकर उगेगा। पर मैं आगामी जन्म में ही पूर्ण होऊँगी।)

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के संत जोधपुर राज्य के जैतारण
और जाति के छैन्याती ब्राह्मण थे। इनके असली नाम
'तत्ववेत्ता' इनका उपनाम था। इन-
तत्ववेत्ता स० १५५० के लगभग है। ये अच्छे
महात्मा थे। अपने पीछे सैकड़ों शिष्य
हुए जिनमें से तीन चार की गद्दियाँ आज भी अजमेर, ज
स्थानों में चल रही है।

इनके 'कवित्त' नामक एक ग्रंथ का पता है जो
इसमें ९८ कवित्त (छप्पय) हैं जिनमें राम, कृष्ण, नारद,
पुरुषों की महिमा कही गई है। रचना मनोहारिणी है।

आदि चन्द्र हरिचंद्र, अनत चदा अवि
अम्रित चद उदार, अघट अविचल २
महा चद्र मुख चद्र, महा महिमा वि
गोकल चद गोपाल, पाप परचड
रामचन्द्र रघुनाथ, रवण राजण के
कृष्णचन्द्र कल्याण, सर्व सुरनर
ततवेता तिहुं लोक में, वृन्दावन चन्द
सर्वचन्द कूँ सुमिरता, परम चन्द

कृष्णदास पयहारी जयपुर के सुप्रसिद्ध गलता
और जाति के दाहिमा ब्राह्मण थे। इनके गुरु का
केवल दूध ही पीते थे, इसलिए प
कृष्णदास आविर्भाव-काल स० १५५९-८४ है
आमेर के महाराज पृथ्वीराज के गुरु
योगी चतुरनाथ को इन्होंने शास्त्रार्थ मे हराया था जि
गलता की गद्दी मिली थी[२]।

ये रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव-भक्त थे। इन्होंने
जिनके नाम ये है—जुगल मैन चरित्र, ब्रह्मगीता और प्रे
इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता भक्तिभावपूर्ण और
उदाहरण—

२ कृष्णदास के एक शिष्य कील जी भी अच्छे कवि थे।

आवत लाल गोवर्द्धन धारी
आलस नैन सरस रस रंगित प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी
विलुलित माल मरगजी उर पर सुरति समर की लगी पराग
चूवत स्याम अधर रस गावत सुरति चाव सुख भैरव राग
पलटि परे पट नील सखी के रस मे भीलत मदन तड़ाग
वृन्दावन बीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन बडभाग।

ये कृष्णदास पयहारी के २५ शिष्यों में मुख्य थे। इनके शिष्य नाभादास कृत भक्तमाल के आधार पर कुछ लोगों ने इनका रचना-काल सं० १६३२ के लगभग निश्चित किया है। इनके रचे ग्रथों के नाम ये हैं:—

अग्रदास

(१) श्रीरामभजन मंजरी (२) पदावली (३) हितोपदेशभाषा (४) उपासना बावनी (५) ध्यान मजरी (६) कुँडलिया (७) अष्टयाम (८) अग्रसार और (९) रहस्य त्रय।

अग्रदास भगवान श्री रामचन्द्र के अनन्य उपासक थे। इन्होंने रामभक्ति सम्बन्धिनी कविता अधिक लिखी है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता सद्भावोत्पादक एव विचार-सौन्दर्य से पूर्ण है। सरल वर्णन-शैली के सहारे इन्होंने अत्युच्च साधना की बातें कही हैं जो मानव-हृदय में आध्यात्मिक स्फूर्ति का सचार करती हैं। उदाहरण—

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ॥टेक॥
अवधपुरी सरयू तट विहरैं, दशरथ प्राण पियारो ॥१॥
क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल, पीतांबर पटवारो ॥
नयन विशाल माल मोतियन की, सखि तुम नेक निहारो ॥२॥
रूप स्वरूप अनूप बनो है, चित से टरत न टारो ॥
माधुरि मूरति निरखो सजनी, कोटि भानु उजियारो ॥३॥
जानकि नायक सब सुख दायक, गुणगण रूप अपारो ॥
अग्र अली प्रभु की छवि निरखे, जीवन प्राण हमारो ॥४॥

नदी किनारे रूखा जब कब होइ बिनास।
जब कब होइ बिनास देह कागद की छागर॥
आयु घटै दिन रैन सदा आमय को आगर।
जरा जोरवर श्वान प्राण को काल शिकारी॥
मूषक कहौं निशङ्क मृत्यु तकि रही मँजारी।

अग्र भजन आतुर करो जौलो पञ्जर श्वास ॥
नदी किनारे रूखा जब कब होइ विनास ॥

नाभादास

ये अग्रदास के शिष्य थे। इनका असली नाम नारायणदास था। इनकी जाति के सबध मे दो मत हैं। कोई इन्हें डोम और कोई क्षत्रिय बतलाते हैं। कहा जाता है कि जब ये बहुत छोटे थे तब अन्नाभाव के कारण इनके माता-पिता इन्हें एक सुनसान जगल मे छोड आए, जहाँ से उठाकर अग्रदास इन्हे अपने निवास-स्थान पर ले गए, और पाल-पोषकर बडा किया। अपने गुरु के कहने से इन्होंने 'भक्तमाल' बनाया जिसका रचना काल स० १६४२ और स० १६८० के बीच म अनुमानित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने दो 'अष्टयाम' और रामचरित्र सम्बन्धी फुटकर पद भी बनाए थे। परन्तु इनकी ख्याति भक्तमाल के कारण विशेष है। भक्तमाल में तीन सौ छप्पय हैं और लगभग दो सौ भगवद्भक्तों के चरित्रों का बखान किया गया है। ग्रथ साहित्य तथा इतिहास दोनों दृष्टियों से महत्व का है। इनका एक छप्पय यहाँ दिया जाता है :—

प्रचुर भयो तिहुँ लोक, गीतगोविन्द उजागर।
कोक काव्य नवरस, सरस शृङ्गार को सागर ॥
अष्टपदी अभ्यास, करै तिहिं बोध बढावै।
श्री राधारवन प्रसन्न, सुनत तहाँ निहचै आवै ॥
सत सरोरुह खड को, पद्मावती सुख जनक रवि।
जयदेव कवि नृप चक्रवै, खड मडलेश्वर आन कवि ॥

सूजाजी

ये बीठू शाखा के चारण थे। इनका लिखा 'राव जैतसी रो छंद'[3] नाम का एक ग्रथ प्रसिद्ध है। यह स० १५९१ और स० १५९८ के बीच किसी समय रचा गया था। इसमें बाबर के द्वितीय पुत्र कामरान और बीकानेर-नरेश राव जैतसी के युद्ध का वर्णन है। कामरान काबुल और पजाब का हाकिम था और इस युद्ध मे परास्त हुआ था। जैतसी और कामरान के इस युद्ध के बारे में मुसलमान इतिहासकार मौन हैं। परतु सूजाजी ने इसका सविस्तर वर्णन किया है। इसलिये पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है।

---

३ इसी नाम और विषय का एक ग्रथ किसी दूसरे कवि का लिखा हुआ भी है। परतु कवि के नाम का पता नहीं '' ' ग्रथ बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित है।

इसमें ४०१ पद्य हैं—पाधड़ी छंद ३८५, गाहा ११, दोहे ४, और कवित्त १। इसकी भाषा विशुद्ध डिंगल है। वर्णन-शैली सजीव और ओजस्विनी है। उदाहरण—

धड़हड़ै ढोल धूजै धरत्ति, पडियाळगि वरसै खेडपत्ति।
बीकाहर राजा इंद वग्गि, खाफरों सिरे खिविया खडग्गि॥
पतिसाह फौज फूटन्ति पाळि, ब्रहमंड जैत गाजै विचाळि।
अम्बहर जैत वरसै अवार, धुडुकिया मोर मुहि खग्ग धार॥[४]

मीराँबाई मेडते के राठौड राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की बेटी थी। इनका जन्म सं० १५५५ के लगभग कुड़की नामक गाँव में हुआ था।

मीराँबाई

मीरों जब छोटी थी तब इनकी माता का देहान्त हो गया था। इसलिये इनके दादा राव दूदाजी ने इन्हें अपने पास मेडते बुला लिया जहाँ इनका बाल्यकाल बीता। कोई उन्नीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह प्रथम (सं० १५६५-८४) के पाटवी कुंवर भोजराज के साथ हुआ। परन्तु विवाह के दो-तीन वर्ष बाद ही भोजराज का देहान्त हो गया। इस बात का पता रामदान लालस कृत 'भीम प्रकास' की इन पंक्तियों से लगता है—

भोजराज जेठो अभग, कँवरपणे म्रत कीध।
मेडतणी मीराँ महळ, प्रेमी भगत प्रसीध॥

भोजराज की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद मीराँ के पिता रत्नसिंह भी खानवा के युद्ध में मारे गये। माता-पिता और पति किसी के न रह जाने से मीराँ का मन संसार से उचट गया और वह पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन एवं संत-समागम करके अपना दुखमय जीवन काटने लगी।

कहा जाता है कि मीरों का भजन-भाव और सत्संग आदि इनके देवर राणा विक्रमाजीत (सं० १५८८-९३) को पसन्द नहीं आया और विषादि के प्रयोग द्वारा उन्होंने इन्हें मार डालने की अनेक चेष्टाएँ की जो असफल रहीं। परन्तु इन बातों पर विश्वास नहीं होता। मीरों की महिमा को बढ़ाकर बतलाने के लिये भक्त लोगों ने इन्हें गढ़ लिया प्रतीत होता है।

---

४ पडियालगि=तलवार। खेड पत्ति=खेड नामक प्रान्त का पति। बीकाहर=बीका जी का वंशज, जैतसी। खाफरां=शत्रुओं के। खिविया=चमके। विचाळि=में। अम्बहर=आकाश। मुहि=चली।

इसी प्रकार मीराँ का रैदास की शिष्या होने, उनका गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखने, अकबर द्वारा उनको हीरे का हार भेट किया जाने इत्यादि की बातें भी कपोल-कल्पित और अनैतिहासिक हैं। इनमें काल-दोष स्पष्ट है।

मीराँबाई का देहान्त स० १६०३ के आसपास द्वारका मे हुआ माना जाता है। भक्तों में यह भी प्रसिद्ध है कि अन्त समय मे मीराँबाई ने यह पद गाया था—

साजन सुध ज्यूँ जाने त्यूँ लीजै हो।
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे हो।
दिवस न भूख रैन नहिं निद्रा यूँ तन पल-पल छीजै हो।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर मिल बिछुरन नहिं कीजै हो॥

मीराँबाई के रचे पाँच ग्रंथ और कुछ फुटकर पद बतलाये जाते हैं। ग्रंथों के नाम ये हैं : गीत गोविन्द की टीका, नरसीजी रो माहेरो, सत्यभामाजी नू रूसणूँ, राग सोरठ, और राग गोविंद। ये सभी ग्रंथ हमारे देखने में आये हैं। इनमें एक भी मीराँबाई का बनाया हुआ प्रतीत नहीं होता। कारण इनमें न तो कहीं इस बात का निर्देश है कि ये मीराँबाई के लिखे हुए हैं और न इनकी भाषा-कविता मीराँबाई की भाषा-कविता से मिलती है। मीराँ के प्रत्येक शब्द पर उनके व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है। अतः दो पंक्तियाँ भी यदि कहीं से निकालकर अलग रख दी जायँ तो वे साफ कह देती हैं कि वे मीराँ की हैं। 'गीत गोविंद की टीका' संस्कृत में है। यह महाराणा कुंभाजी की बनाई हुई है। 'नरसीजी रो माहेरो' ब्रजभाषा की एक बहुत नीरस और सामान्य कोटि की रचना है। 'सत्यभामाजी नू रूसणूं' गुजराती में है। 'राग सोरठ' और 'राग गोविंद' कोई ग्रंथ ही नहीं हैं। मीराँ के कुछ पदों के शीर्षक मात्र हैं। मीराँ ने केवल स्फुट पद लिखे हैं। परन्तु मीराँ के नाम से जो पद आज कल बाजार मे बिक रहे हैं वे सब उनके नहीं हैं। मीराँ के भक्तों तथा अर्थ-लोभी मुद्रक-प्रकाशकों ने जान बूझकर अथवा ना समझी से कुछ पद नये बनाकर और कुछ कबीर, सूर, दादू, नानक आदि सन्तों के इनमें मिला दिये हैं। वस्तुत: मीराँ के पदों की संख्या २००-२५० से अधिक नहीं है।

मीराँबाई की भाषा बोलचाल की राजस्थानी है जिस पर ब्रजभाषा गुजराती और खड़ी बोली का भी रंग लगा हुआ है। इनके शब्द-व्यवहार

में बड़ी कोमलता और स्वाभाविकता है। वाह्याडंबर और शाब्दिक चतुराई के फेर में न पड़कर इन्होंने सीधी बात को सीधे ढंग से व्यक्त किया है।

मीराँ प्रेम-भक्ति की दीवानी थीं। आध्यात्मिक व्याकुलता और भक्त हृदय का गंभीर विश्वास इनकी कविता में अपूर्व रूप से झंकृत है। साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इनकी कविता कोई बहुत ऊँची नहीं है। परन्तु सरल, स्वाभाविक एवं भक्तिभाव पूर्ण होने से एक भक्त हृदय को मुग्ध करने में वह फिर भी बेजोड़ है। कृष्णभक्ति में अंधे कवि सूरदास की तुलना किसी दूसरे से नहीं हो सकती। सूर सचमुच हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य्य हैं। उनके सूरसागर में प्रेम रस की एक बाढ़-सी आ गई है और गोपियों तथा यशोदा के मुँह से जो पद उन्होंने कहलवाये हैं उनमें उन्होंने नारी-हृदय का ऐसा मधुर, मनोवैज्ञानिक और कलापूर्ण विश्लेषण किया है कि देखकर चकित ही रह जाना पड़ता है। संख्या भी सूर के पदों की कम नहीं। परन्तु यह सब होते हुए भी मीराँ के पदों में जो रस है, मीठा-सा दर्द है वह उनमें भी नहीं आ पाया है। कविता क्या की है, मीराँ ने अपना हृदय ही बाहर निकालकर रख दिया है। कुछ पंक्तियाँ देखिये। इनमें कितनी तड़पन, कितनी तन्मयता, कितनी मस्ती और बेचैनी है—

"जाओ हरि निरमोहड़ा रे, जाणी थाँरी प्रीत।"
"तेरा कोई नहँ रोकणहार, मगन होय मीराँ चली।"
"म्हारो जनम-मरण रो साथी, थाँनै नहँ विसरूँ दिन राती।"
"राणाजी म्हाँनै या बदनामी लागे मीठी।"
"म्हारे सिर पर साळगराम, राणाजी म्हारो काँई करसी।"
"क्यारे करूँ मैं बन में गई, घर होती तो स्याम कूँ मनाय लेती।"

मीराँ की उपासना दंपति-भाव की थी। अतः इनकी कविता में भक्ति और शृंगार दोनों का सम्मिलन स्वाभाविक है। परन्तु मीराँ का शृंगार लौकिक नहीं, अलौकिक है। उसमें न तो विद्यापति की सी अश्लीलता है, न सूर की सी उच्छृङ्खलता, और न बिहारी की सी मादकता। मीराँ का शृंगार पवित्र है और पवित्रता के साथ-साथ उसमें अनंत, शाश्वत तथा निर्मल प्रेम की अनोखी झाँकी है।

कंगाल की कुटिया से लेकर राजमहलों तक मीराँ की कविता समान रूप से आदृत है। इसलिये नहीं कि मीराँ स्त्री थीं और उनके साथ रियायत किया जाना वाञ्छनीय है। इसलिये भी नहीं कि उनका जन्म यशःपूत एक

राजघराने मे हुआ था। बल्कि इसलिये कि मीराँ की कविता ही सच्ची कविता है, कवि हृदय की यथार्थ अनुभूति है। इनके शब्दो मे कुछ ऐसा सौन्दर्य्य है कि उसे शब्दो द्वारा व्यक्त करना कठिन है। किसी रूसी कवि की कविता पर कही हुई एक समालोचक की यह उक्ति मीराँ की कविता पर भी ठीक-ठीक घटती है—

"A charm in words, a charm no words can give"

मीराँबाई के दो पद यहाँ दिये जाते हैं—

राग होरी सिन्दूरा

फागुण के दिन चार रे, होळी खेल मना रे ॥टेक॥
बिण करताळ पखावज बाजै, अणहद री झणकार रे।
बिण सुर राग छतीसूँ गावै, रोम-रोम अग सार रे॥
सील संतोष री केसर घोळी, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयौ अबर, बरसत रग अपार रे॥
घट के पट सब खोल दिये हैं, लोक-लाज सब डाल रे।
होळी खेल पीव घर आये, सोइ प्यारी-पी प्यार रे॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कँवळ बलिहार रे।

राग देस

दरस बिन दूखण लागे नैण ॥टेक॥
जब से तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायौ चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, वह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख देण।

छीहल — इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं है। इनका एक छोटा-सा ग्रथ 'पच सहेली रा दूहा' मिलता है जो निस्सन्देह अनूठा है। यह सवत् १५७५ मे लिखा गया था—

पनरे सै पीचोतरै, पूनम फागुण मास।
पच सहेली वरणनी, कवि छीहल परगास॥

इसमे ६५ दोहे हैं। इसकी भाषा बोलचाल की राजस्थानी है। माली, तबोलिन, छीपी, कलालिन और सुनार जाति की पाँच स्त्रियाँ एक दिन किसी

पनघट पर छीहल से मिलती हैं और उसे अपनी विरह-व्यथाएँ सुनाती हैं। कुछ दिन बाद यही स्त्रियाँ फिर उसी स्थान पर छीहल से मिल जाती हैं। परन्तु इस बार वे बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि उनके पति परदेश से वापस लौट आए हैं। इसी का वर्णन इस ग्रन्थ मे किया गया है। ग्रंथ छोटा पर सरस है। उदाहरण—

पहिली बोली मालिणी, मोकूँ दुक्ख अनन्त।
बाला जोबन छडि करि, गए देसाउरि कंत॥
निसि दिन बहै प्रनाल ज्यूँ, नयणे नीर अपार।
विरहा माली दुक्ख का, सुभर भरे कियार॥
कमल वदन विलखाइया, सूका सुख वनराइ।
बाज पियारे एक खिण, वरस बराबर जाइ॥
तन तरवर फल लागिया, दोइ नारँग रस पूर।
सूकण लागी वेलडी, सींचणहारा दूर॥
मन वाडी गुण फूलडा, पिय नित लेता वास।
अब उण थानक रयण दिन, पिय विण रहूँ उदास॥
चंपा केरी पखुडी, गूँथूँ नवसर हार।
जो गलि पहिरूँ पीय विण, लागै अंग अगार॥
मालिण अपणा जीव का विउरा कह्या विचार।
अब कछु दुक्ख सरीर का, अखै तंबोलिण नार॥

आशानंद — ये जाति के चारण और जोधपुर राज्य के भाद्रेस गाँव के निवासी गीधाजी के बेटे थे। इनका जन्म सं० १५६३ के आसपास हुआ था। ये तीन भाई थे: हरसूर, सूजो, और आशानंद। चारणों के सुप्रसिद्ध भक्त कवि ईसरदास इनके भतीजे थे। कहा जाता है कि आशानंद आजीवन ब्रह्मचारी थे। परन्तु यह बात कुछ ठीक नहीं प्रतीत होती। क्योंकि मारवाड़ में चारणों के अब भी कई घर ऐसे हैं जो अपने को आशावत कहते है, और आशा बारहट का वंशज बतलाते हैं।

आशानंद जोधपुर नरेश राव मालदेव के कृपापात्र थे। सं० १५९८ में जब राव मालदेव ने बीकानेर पर चढ़ाई की ये उनके साथ थे।

इनके मृत्यु काल का ठीक-ठीक पता नहीं है। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये सं० १६६० के आस पास स्वर्गवासी हुए थे।

आशानंद के रचे छह ग्रंथ कहे जाते हैं: लक्ष्मणायण, निरंजनप्राण, गोगाजी री पेडी, बाघा रा दूहा, उमादे भाटियाणी रा कवित्त और फुटकर गीत। ये सब डिंगल भाषा में हैं। इनकी भाषा बहुत मधुर और कविता तल स्पर्शी है। अपने मित्र बाघा कोटड़िया की मृत्यु पर लिखे करुणरस-प्लावित इनके दोहे इतने मार्मिक हैं कि सुनकर बहुत से लोग रो पड़ते हैं।

इनकी कविता के नमूने देखिए —

मझ सोळै सिणगार, सत्तव्रत अंग सनाहै।
अरक बार मुख ऊग, नीर गंगाजळ नाहै॥
चीर पहर अस चढै, मुकट वेणी सिर खुल्लै।
देती परदिखणाँह, हस गत राणी हल्लै॥
सुर भुवण पैस लीधौ सरग, साम तणौ मन रंजियौ।
रूसणौ मालदे राव सूँ, भटियाणी इम भंजियौ॥

(सोलह शृंगार सजाकर शरीर में सत्यव्रत को धारण किए हुए जिसके मुख से मानो बारह सूर्य उगे हैं ऐसी भटियाणी (उमादे) ने गंगाजल से स्नान किया। वस्त्र पहन, घोड़े पर सवार हो, शिरोभूषण, चोटी और बालों को खोल प्रदक्षिणा देती हुई हंस की गति से चलकर रानी स्वर्ग में पहुँची स्वामी मालदेव का मन प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उमादे ने राव मालदेव से अपना रूठना दूर किया।)

पैस मज्झ पावक्क, हुई जमहर नख सख जळ।
क्रम चौरासी तणा, करै तडल भूमंडळ॥
झल माळा बिच होम, देह बाळी दावानळ।
धुकै होम धड़हडण, बात मुख सहँस बळोबळ॥
सामहा जोड़ ऊमा सती, देव भाण दिस हाथ दुव।
माल राव चौ साँभळ मरण, होय अँगारा राख हुव॥

(अग्नि में प्रवेश करके नख से शिखा तक जलकर राख हो गई। चौरासी योनियों के कर्मों को भूमंडल पर ही टुकड़े कर ज्वाल-माला में अपने शरीर को होम भस्मीभूत कर दिया। आग से धड़-धड़ाकर धुँआ उठा। हजारों मुखों से निरंतर यह बात निकली कि सती उमादे सूर्य देव के सामने दोनों हाथ जोड़ राव मालदेव का मरना सुन अंगारे होकर राख हो गई।)

ये रोहड़िया शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के भाद्रेस नामक गाँव में सं० १५९५ में हुआ था। कुछ लोग

ईसरदास

इनका जन्म-संवत् १५१५ बतलाते हैं और अपने कथन की पुष्टि में यह दोहा उद्धृत करते हैं —

> पनरासौ पनरोतरे, जनम्यॉ ईसरदास।
> चारण वरण चकार में, उण दिन हुवौ उजास॥

परन्तु उनका यह कथन निर्मूल है। ईसरदास की असली जन्मपत्री मिल चुकी है और उसमें भी इनका जन्म संवत् १५९५ ही दिया हुआ है। साथ ही उक्त दोहा भी अब अपने असली रूप में मिल गया है। इसका सही पाठ यों है —

> पनरासौ पिचाणवै, जनम्यॉ ईसरदास।
> चारण वरण चकार में, उण दिन हुवौ उजास॥

इनके पिता का नाम सूजाजी और माता का अमरबाई था। पीताम्बर भट्ट इनके गुरु थे जिन्होंने इन्हें संस्कृत भाषा एवं भागवत आदि पुराणों का ज्ञान कराया था। अपने 'हरिरस' में ईसरदास ने सब से पहले इन्हीं की वंदना की है —

> लागूॅ हूँ पहली लुळै, पीताम्बर गुरु पाय।
> भेद महारस भागवत, पामूॅ जास पसाय॥

ईसरदास जब कोई बीस वर्ष के थे तब भाद्रेस छोड़कर जामनगर चले गए जहाँ उस समय रावळ जाम राज करते थे। उन्होंने इन्हें अपना 'पोलपात'* बना लिया और एक लाखपसाव† देकर सचाणो, रंगपुर आदि आठ-दस गाँव जागीर में दिये जो अभी तक इनके वंशजों के अधिकार में हैं।

*पोल (सं. प्रतोलि) पर नेग लेने वालों में योग्य।

† राजस्थान में चारण-भाटों को जो दान दिया जाता है उसका नाम उन्होंने पसाव (सं० प्रसाद) रखा है। बड़े दानकों के अत्युक्ति से लाखपसाव, क्रोड़पसाव आदि कहते हैं। इस तरह के दान देने की प्रथा आजकल बंद-सी हो गई है। पहले जब लाखपसाव आदि दिये जाते थे तब एक लाख रुपया नकद नहीं दिया जाता था। हजार दो हजार के करीब रोकड़ रुपया देकर शेष रकम की पूर्ति हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि देकर की जाती थी। छोटा दान लाखपसाव, इससे बड़ा क्रोड़पसाव और सब से बड़ा अरबपसाव कहलाता था।

कहा जाता है कि लगभग ४० वर्ष तक ईसरदास जामनगर में रहे। बाद में अपने जन्म-स्थान भाद्रेस को चले गए और लूँणी नदी के किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगे। वहीं सं० १६७५ के आसपास ८० वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान हुआ।

ईसरदास एक भक्त और चमत्कारी पुरुष थे। इनके भक्ति-चमत्कार की अनेक दन्तकथाएँ राजस्थान में प्रचलित हैं[५]। परन्तु उनका ऐतिहासिक मूल्य विशेष नहीं है। कहते हैं कि इनको कई अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त थीं जिनकी वजह से लोग इनको 'ईसरा सो परमेसरा' कहकर पूजते थे।

---

५ इन कहानियों में एक कहानी इतनी लोक-प्रिय और मार्मिक है कि उसे यहाँ देने का लोभ हम से संवरण नहीं होता। कहते हैं कि एक बार ईसरदास जामनगर से अमरेली जाते हुए रास्ते में बेणू नदी के किनारे पर एक छोटे से गाँव में सांगा नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। सांगा ने इनकी बड़ी आवभगत की और जब ये वहाँ से आगे चलने लगे तो इनसे कहा कि मैं बहुत गरीब हूँ और आपको भेंट में देने लायक कोई वस्तु मेरे पास नहीं है। सिर्फ एक कम्बल है जिसे मैं आपकी भेंट करना चाहता हूँ। ईसरदास ने कहा कि उस कम्बल को वापस लौटते वक्त हम तुमसे ले जाएँगे। यह कहकर वे वहाँ से रवाना हो गए।

इसी बीच में ऐसा हुआ कि एक दिन सायंकाल को जब सांगा अपने पशुओं को जंगल में चराकर घर लौटते वक्त बेणू नदी को पार कर रहा था तब बाढ़ आ गया और वह और उसके पशु उसमें बह गए। सांगा ने बाहर निकलने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके परन्तु उसकी सब मेहनत वृथा गई। अन्त में जब उसने देख लिया कि उसकी मृत्यु निश्चित है तब उसने नदी के किनारे पर खड़े अपने ग्रामवासियों से चिल्ला कर कहा कि "मैं मर रहा हूँ, पर मेरे मन में एक इच्छा रह गई है। वह यह कि अपने वादे के मुताबिक ईसरदास को मैं कम्बल न दे सका। परन्तु तुम लोग घर पहुँचकर मेरी माँ से कह देना कि ईसरदास के लिए जो कम्बल रखा हुआ है उसे वह उनके वापस लौटने पर उन्हें दे दे"। यह कहते-कहते सांगा की साँस टूट गई और वह पानी में डूब गया।

इस घटना के कुछ दिन बाद ईसरदास सांगा के घर आ पहुँचे। सांगा की माँ ने उनके लिए भोजन तैयार किया। परन्तु भोजन के आसन पर बैठने से पूर्व ईसरदास ने पूछा कि सांगा कहाँ है, मैं उसके साथ भोजन करूँगा। यह सुनकर सांगा की माँ का कलेजा भर आया और टपाटप आँसू गिराने लगी। अन्त में सांगा की मृत्यु की सारी बात उसने ईसरदास से कह दी। सुनकर वे उठ खड़े हुए और बोले—'मुझे वह स्थान बताओ जहाँ सांगा डूबा है।" माँ ने साथ जाकर वह स्थान उन्हें बता दिया। वहाँ खड़े होकर ईसरदास ने जोर से पुकारा—"सांगा! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार कम्बल लेने आया हूँ। आकर अपना वादा पूरा करो।" सामने से आवाज आई—"आ रहा हूँ।" और थोड़ी देर में

इन्होंने डिंगल भाषा के बारह ग्रन्थ बनाए जिनके नाम ये हैं :—

(१) हरिरस (२) छोटा हरिरस (३) बाल लीला (४) गुण भागवत हंस (५) गरुड़ पुराण (६) गुण आगम (७) निन्दा स्तुति (८) देवियाण (९) वैराट (१०) रास कैलास (११) सभा पर्व (१२) हालाँ झालाँ रा कुंडळिया।

इनमें 'हरिरस' और 'हालाँ झालाँ रा कुंडळियाँ' ईसरदास की बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं। हरिरस ईश-भक्ति का ग्रन्थ है। इसमें तल्लीनता, अगाध प्रेम, दृढ विश्वास कूट-कूटकर भरा पड़ा है। ईसरदास के समकालीन कवियों ने भी इसकी बड़ी प्रशंसा की है। इनमें केशवदास गाडण की यह उक्ति राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है—

जग प्राजळतो जाण, अघ दावानळ ऊपरौं।
रचियौ रोहड़ राण, समँद हरीरस सूरवत ॥

'हालाँ झालाँ रा कुंडळिया' वीर रस की अत्युत्कृष्ट रचना है। इसी का दूसरा नाम सूर सतसई है। परन्तु यह नाम भ्रामक है। क्योंकि सतसई नाम से इसमें सात सौ पद्यों का होना सूचित होता है, जो इसमें नहीं हैं। इसमें सिर्फ ४२ पद्य, कुंडलिया, हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि यह ग्रन्थ ईसरदास रचित नहीं है, उनके काका आशानन्द का लिखा हुआ है। परन्तु उनका यह अनुमान निराधार है। इसकी १८-२० हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं और सभी में ईसरदास का नाम दिया हुआ है।

इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त ईसरदास ने जो दूसरे ग्रन्थ हैं वे प्राय सभी बहुत छोटे-छोटे हैं और साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व के भी नहीं

सागा अपने पशुओं सहित आता हुआ दिखाई दिया। आकर उसने ईसरदास के पाँव पकड़ लिए। फिर दोनों घर गये और सानन्द भोजन किया। इस विषय के ५-७ दोहे भी लोगों की ज़बान पर हैं। चार दोहे यहाँ दिये जाते हैं —

नदी बहतो जाय, साँडज सागरिए दियौ।
कहज्यौ मारा माय, कवि नै देवै कामळी ॥
बाहण वहती जाय, साद दियतौ साथिया।
कहज्यो आयर माय, कवि नै दीनै कामळी ॥
रहमें नद पाराँह, सागरिए दीधी सबद।
कामळ सहनाराँह, दाजै ईसरदास नै ॥
ईम नदी आवाज, सागा जल-थल सामलै।
कामळ देवण काज, सेंगो वळ सिभ कर वगण ॥

है। इनमें भागवत, उपनिषद् आदि संस्कृत-ग्रन्थों में निरूपित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया गया है।

ईसरदास की कविता के नमूने देखिए:—

तिलाँ तेल पोहप फुलेल, उज्झोलत सायर।
अगनि काठ जोवन्न घट्ट, भगवट्ट सु कायर॥
ईख रस्स अहि फेण, अरथ आगम-उरठाहे।
पानाँ चंग मजीट रंग, उछरंग विमाहे॥
खग नीर धीर अंतर खरा, मद कुंजर वपु जिम मयण।
मन बसे तेम तू माहरे, मो मन वसियो महमहण॥

(जिस तरह तिलों में तैल, पुष्प में इत्र, समुद्र में तरंग, काष्ट में अग्नि, शरीर में यौवन, कायर पुरुषों में भगना, गन्ने में रस, सर्प में झाग, वेद में अर्थ, तांबूल में उत्तमता, मजीठ में रंग, विवाह में आनन्द, तलवार में पानी, अन्तःकरण में सच्चाई, हाथी में मद एवं शरीर में कामदेव व्याप्त रहता है उसी भाँति हे महार्णव! मेरे मन में आप और आप में मेरा मन बस रहा है॥)

(दोहे)

सादूळो आपै समौ, बीजौ कवण गिणंत।
हाक विडाणी किम सहै, घण गाजियै मरंत॥

(सिंह अपने मुकाबले में और किसको गिनता है? वह किसी दूसरे की हाक को कैसे सह सकता है? वह तो बद्दल के गरजते ही मरता है।)

सीहण हेको सीह जण, छापर मंडै आळ।
दूध विटाळण कापुरुष, बौहळा जणै सियाळ॥

(सिंहिनी केवल एक सिंह को जन्म देती है जो खुले मैदान में घेरा डालता है। लेकिन सियारी दूध को लज्जित करनेवाले अनेक कायरों को जन्म देती हैं।)

हिरणा लाँबी सींगड़ी, भाजण तणौ सभाव।
सूराँ छोटी दातळी, दै घण थट्टा घाव॥

(हरिनों के लम्बे सींग होते हैं, पर स्वभाव भागने का होता है। सूअरों के छोटी-सी दातली होती है पर वे (शत्रु) समूह पर गहरा घाव करते हैं।)

केहर मूछ भुजंग मण, सरणाई मोहडाह ।
सती पयोधर कृपण धन, पड़सी हाथ मुवाह ॥

(सिंह की मूछ, सर्प की मणि, बहादुर का आश्रय, सती के स्तन और मूजी का धन मरने ही पर हाथ आते हैं ।)

सैल घमोडा किम सह्या, किम सहिया गजदंत ।
कठण पयोधर लागता, कस्मसतौ तू कंत ॥

(हे कंत ! तूने भालों के प्रहार कैसे सहन किये और कैसे हाथियों के दांतों की मार सही । तू तो कठोर स्तनों के स्पर्श से ही विचलित हो जाता था ।)

लै ठाकर वित आपणौ, देतौ रजपूतांह ।
धड धरती पग पागडै, अत्रावळि गीधाह ॥

(हे ठाकुर ! तू राजपूत को जो वित्त देता था उसका बदला ले । उसका धड़ धरती पर तथा पाव पागड़े में हैं और उसकी अतडी को गीध खा रहे हैं ।)

केशवदास

केशवदास जोधपुर राज्यान्तर्गत सोजत परगने के चिड़िया नामक गाँव के निवासी थे । इनका जन्म सं० १६१० में और देहान्त सं० १६६७ में हुआ था । ये गाडण शाखा के चारण थे । इनके पिता का नाम मदमाल था । केशवदास गृहस्थ थे पर साधुओं की तरह गेरुआ वस्त्र पहिनते थे । इनकी प्रशंसा में लिखा हुआ राठौड़ पृथ्वीराज का यह दोहा प्रसिद्ध है—

केसौ गोरखनाथ कवि, चेलो कियौ चकार ।
सिध रूपी रहता सबद, गाडण गुण भंडार ॥

केशवदास डिंगल भाषा के कवि थे । इनके लिखे तीन ग्रंथ प्रसिद्ध हैं : (१) गुण रूपक, (२) राव अमरसिंह जी रा दूहा और (३) विवेक-वार्ता । कहा जाता है कि इन्होंने 'गज-गुण-चरित्र' नाम का एक ग्रंथ और भी बनाया था, जिसका पता नहीं लगता । इन ग्रंथों में "गुण रूपक" सबसे बड़ा है । इसमें जोधपुर के महाराजा गजसिंह के राज्य-वैभव, उनकी तीर्थयात्रा, उनके युद्धों आदि का वर्णन है । दोहा, कवित्त, गाहा, अडल, मधाणा इत्यादि सब मिलाकर लगभग एक हजार छंदों में यह समाप्त हुआ है । इसका रचनाकाल सं० १६८१ है—

सोळह सह सवत हुए, जोगणपुर चाळै ।
समै एकासियै मास, काती घडाळै ॥

'राव अमरसिंहजी रा दूहा' मे नागौर के राव अमरसिंह की वीरता का वर्णन है और 'विवेक-वार्ता' वेदान्त का ग्रथ है। इनकी रचना के दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

भीम भयकर नाद भेर नीसाण गरज्जै ।
गुहिर सद्द गडगडै गयण बारह घण गज्जै ॥
खिवै कूँत अदभूत भडा वाका सुभ्र डडै ।
मुठॉणी वादळि वळक वीज लता ब्रिहमडै ॥
तळ जोड पडै कुँजर बहै अनड नदी नड़ दडियडै ।
असपति राउ असमान रा दळ बादळ वदि वदि चडै ॥
लोइण चचळ चपळ अचळ धू जिम मन धारण ।
कडि मयक मुख इन्द दिग्घ वेणी अहिदारण ॥
मद गयद गति मद काय जाणै ग्रम कदळि ।
बप चपक दळ वरन सीस गुजार करै अळि ॥[६]

अल्लूजी

ये जाति के चारण थे। जन्म-स्थान आदि का ठीक-ठीक पता नही है। आविर्भाव-काल स० १६२० के लगभग है। इन्होने ग्रन्थ कोई नही लिखा पर फुटकर कवित्त (छप्पय) बहुत अच्छे रचे है। जिनकी बडी प्रसिद्धि हैं। कहा भी है—

कविते अलू दूहे करमाणद, पात ईसर विद्या चो पूर ।
छदे मेहो झूलणे मालो, सूर पदे गीत हरसूर ॥

इनकी भाषा डिगल है। कविता सरल, भक्ति-भावपूर्ण एव ज्ञानवर्द्धक है। उदाहरण—

सोही वाण सुवाण, भजै हरि नाम निरन्तर ।
सोही मॉण सुमॉण, भरै भलपण हुँत जाठर ॥

६ खिवैं=चमकता है। कूँत=भाला। मुठाणी=तलवार। मुठाणी . ब्रिहमडै तलवार की चमक बादलों के बीच की विद्युल्लता के समान शोभायमान है। बहै=चलते हैं। अनड=पहाड। असपति=बादशाह, इन्द्र। दडियडै=गर्जते है, गडगडाते हैं। धू=ध्रुव। कडि=कमर। बप=शरीर।

सोही लाज मुलाज, त्रिया पर मेळथ नज्जै।
सोही सूर सामंत, भिड़ै आराण नहँ भज्ज॥

दिल धरम सोही पाळै दया, न्याव सोही पल्हि न करे।
हरि नाम जीह जपतो रहे, अलू सपूत कुळ ऊबरै[७]॥

जल्ह

इनका विशेष वृत्त ज्ञात नहीं है। रचना-शैली से कोई जैन कवि प्रतीत होते हैं। आविर्भाव काल सं० १६२५ के लगभग है। इनके रचे 'बुद्धिरासो' नामक एक ग्रन्थ का पता है। इसमें चंपावती नगरी के राजकुमार और जलधितरंगिनी नामक एक रूपवती स्त्री की प्रेम-कहानी वर्णित है। कहानी कल्पित है। इसकी छन्द-संख्या १४० है। भाषा अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी है। रचना सरस और मनोहारिणी है। उदाहरण—

घरि घरि कुसुम बास अरिव्यंदा, अलि लुटहि अहि निशि तजि न्यदा।
जलधितरंगनि कीन वनंदा, क्रिय प्रोटम जनु पूरण चंदा॥
चंद मुखी मुख चन्द कीय, चखि कज्जल अम्बर हार लीय।
घण घटणि छिद्र नितंब भर, मयमत्त सुवा मनमच्छ करै॥
अति अथि तंबोल अमोल मुख, आहिलाक सु अच्छर कौण सुख।

पृथ्वीराज

राठौड़ पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के बेटे और राव जैतसी के पोते थे। इनका जन्म सं० १६०६ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा रायसिंह इनके बड़े भाई थे। कर्नल टॉड ने इनके विषय में लिखा है कि "पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्रूबेडार राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य को फल उन्नत कर सकते थे तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकते थे। इतना ही नहीं, राजपूताने के कवि समुदाय ने एक स्वर से गुणिता का सेहरा भी इन्हीं वीर राठौड़ के सिर पर बाँधा था।

---

७. सोहा=वह। सुवाण=अच्छी वाणी। साम=साथ। हूँत=से। आठर=पेट। मेलग=समागम। आराण=युद्ध। पल्हि=पलपात।

उच्च कोटि के कवि एव योद्धा होने के साथ-साथ पृथ्वीराज भगवद्भक्त भी पूरे थे। भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में इनका गुण-गान किया है—

सवैया गीत श्लोक, वेलि दोहा गुण नव रस।
पिंगल काव्य प्रमाण, विविध विध गायो हरजस ॥
परिदुख विदुख सलाध्य, वचन रसना जु उच्चारै।
अर्थ विचित्रन मोल, सबै सागर उद्धारै ॥
रुकमिनी लता बरनन अनुप, वागीस-वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभै भाषा निपुन, प्रथीराज कविराज हुव ॥

पृथ्वीराज मुगल सम्राट अकबर के बड़े कृपापात्र थे और प्रायः शाही दरबार मे रहा करते थे। मुँहणोत नैणसी की ख्यात से पता लगता है कि बादशाह ने इन्हे गागरौन का किला दिया था जो बहुत समय तक इनकी जागीर मे रहा।

पृथ्वीराज ने दो विवाह किये थे। इनकी पहली स्त्री का नाम लालादे था। यह जैसलमेर के रावळ हरराज की पुत्री थी। इसका देहान्त हो जाने पर इन्होंने इसी की बहिन चाँपादे से अपना दूसरा विवाह किया। इन दो स्त्रियों से पृथ्वीराज के कितनी सताने हुई इसका ठीक-ठीक पता इतिहास ग्रंथो से नहीं लगता। परन्तु इनके संतान हुई थी, यह निस्सदिग्ध है। इनके वशज पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं जो बीकानेर राज्यान्तर्गत दद्रेवा के पट्टेदार हैं और छोटी ताजीम का सम्मान रखते हैं। पृथ्वीराज का देहान्त स० १६५७ में हुआ था।

डिंगल भाषा के कवियों मे पृथ्वीराज का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं :—वेलि क्रिसन रुकमणी री, दसम भागवत रा दूहा, गगा लहरी, वसदेरावउत और दसरथरावउत।

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री। यह पृथ्वीराज की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसके दो सस्करण प्रकाशित भी हो चुके हैं, एक बगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की ओर से और दूसरा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग की ओर से। पहले सस्करण का सम्पादन डा० टैसीटरी ने स० १९७३ मे और दूसरे का सूर्यकरण पारीक तथा ठाकुर रामसिह ने स० १९८८ मे किया था।

इन दोनों मुद्रित संस्करणों के अन्तिम दोहलों में वेलि का रचनाकाल सं० १६३७ दिया हुआ है —

> वरसि अचळ[७] गुण[३] अंग[६] ससी[१] संवति, तवियौ जस करि स्री भरतार।
> करि श्रवणे दिन राति कंठि करि, पामै स्री फळ भगति अपार ॥

डा० टेसीटरी ने अपना संस्करण आठ प्राचीन प्रतियों के आधार पर तैयार किया था। इनमें सब से प्राचीन प्रति सं० १६७३ की लिखी हुई थी। शेष सात प्रतियों का लिपिकाल सं० १६७६ और सं० १७८१ के बीच में था। हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाले संस्करण का आधार डा० टेसीटरी का संस्करण तथा चार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ थीं। ज्ञात होता है, उक्त दोनों संस्करणों के संपादकों को जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई उन सब में उनको वेलि का रचनाकाल सं० १६३७ ही लिखा मिला और इसलिए इस विषय में शंका करने का कोई अवसर उनके सामने उपस्थित नहीं हुआ। हिन्दुस्तानी एकेडेमी वाले संस्करण के संपादकों ने तो साफ लिखा है कि 'अन्तिम दोहले ३०५ में कवि ने प्रथानुसार ग्रंथ-समाप्ति का समय स्पष्टतः सं० १६३७ बता दिया है। इस संवत के विषय में किसी प्रकार के अपवाद अथवा विवाद को स्थान नहीं है'।

लेकिन इधर उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय, सरस्वती-भंडार, में वेलि की तीन ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने में आई हैं जिनमें उसका रचनाकाल सं० १६४४ वैशाख सुदि ३ सोमवार दिया हुआ है। ये तीनों प्रतियां भिन्न-भिन्न समय तथा भिन्न-भिन्न स्थानों में लिपिबद्ध हुई हैं और एक दूसरी की प्रतिलिपि नहीं हैं। इनमें एक प्रति सं० १७०१ की, दूसरी सं० १७२८ की और तीसरी सं० १७६५ की लिखी हुई है। पाठान्तर इनमें बहुत हैं पर ग्रंथ का निर्माण-काल तीनों में एक ही दिया हुआ है—

> (१) सोलह से संवत चमाळै वरसै सोम तीज वैसाख सुदि ।
> रुकिमीणि क्रिस्न रहस्य रमण रस कथी वेलि प्रथ्वीराज कमधि
>
> —सं० १७०१ की प्रति
>
> (२) सोलह से संवत चमाळै वरसे, सोम तीज वैसाख समधि।
> रुपमणि क्रिसन रहसि रमंता, कही वेली पृथ्वीराज कविंध ॥
>
> —सं० १७२८ की प्रति।

(३) सौलै सै संवत चौमाळीसै वरसै, सोम तीज वैसाख सुदि।
रुक्मणी धरा रहस्य ईसरमन, कहि वेलि प्रिथीदास कमध॥

—सं० १७६५ की प्रति।

इण्डियन एफैमेरिस को देखने से ज्ञात हुआ कि सं० १६४४ की वैशाख सुदी ३ के दिन सोमवार नहीं, अपितु रविवार था। लेकिन एक दिन का अंतर तो उक्त पंचांग में प्रायः मिलता है। ऐसी दशा में इस संवत् को सहसा जाली कहकर भी नहीं टाला जा सकता। अनुमान होता है, उल्लिखित संस्करणों के अंतिम पद्यों में जो संवत् (१६३७) दिया हुआ है वह 'वेलि' को प्रारम्भ करने का समय है। इसका समाप्ति-काल सं० १६४४ ही है जैसा कि उदयपुर के सरस्वती भंडार की उपरोक्त तीनों प्रतियों से सूचित होता है।

वेलि डिंगल साहित्य के प्रसिद्ध छंद, वेलियो गीत, में लिखा हुआ तीन सौ पाँच पद्यों का एक खंड काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन है। कथा का आधार, जैसा कि कवि ने स्वयं लिखा है, श्रीमद्भागवत का दशम स्कंध है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ, महि थाणौ प्रिथुदास मुख।
मूळ ताल जड़ अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चढि छाँह सुख[८]॥

परन्तु यह कथानक केवल बीज रूप में ग्रहण किया गया है। काव्य-सौष्ठव, वर्णन-शैली आदि सभी कवि के अपने हैं। ग्रंथ शृंगार रस प्रधान है। पर वीर, बीभत्स आदि दो-एक अन्य रसों की भी इसमें प्रसंगानुसार अच्छी व्यंजना हुई है। भाषा इसकी विशुद्ध डिंगल है। शब्द चयन में कोमलता और औचित्य का इतना ध्यान रखा गया है कि शब्द की ध्वनि से ही भावना का चित्र साकार-सा हो जाता है—

कळकळिया कुंत किरण कळि ऊकळि, वरजित विसिख विवरजित वाउ।
धडि धडि भबकि धार भारूजळ, सिहरि सिहरि समखै सिळाउ[९]॥

---

८ यह जो वेलि है इसका बीज भागवत है जो पृथ्वीराज के मुखरूपी आल-वाल में बोया गया है। मूल पाठ और ताल जडें हैं और अर्थ रूपी दृढ मंडप पर सुखद छाया करने के लिए यह वेलि फैली है।

९ भाले रूपी सूर्यकिरण युद्ध में संतप्त होकर चमचमाने लगे। बाण बंद हो ग है। शरीर-शरीर पर तलवारों की धारें चमक रही हैं, (मानो) शिखर-शिखर पर ए बिजलियाँ चमक रही हैं।

जिस प्रकार एक चतुर सुनार किसी नग की ठीक-ठीक परीक्षा कर लेने के पश्चात फिर उसे आभूषण में बिठाता है उसी तरह पृथ्वीराज ने भी प्रत्येक शब्द को खूब सोच विचारकर पूरी तरह से शोध माँजकर, वेलि में स्थान दिया है। अत. कोई शब्द कहीं बेमौके नहीं है। प्रत्येक शब्द चित्रोपम भावाभियुक्त एवं उपादेय है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है।

पृथ्वीराज ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रचुर प्रयोग किया है। स्वरूप बोध और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है। परन्तु अलंकारों की प्रचुरता से काव्य में कहीं कृत्रिमता नहीं आने पाई है, सर्वत्र स्वाभाविकता का स्तुत्य आभास मिलता है। शब्दालंकारों में अनुप्रास तथा वैणसगाई और अर्थालंकारों में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा वेलि में अधिक मिलते हैं। उपमा और रूपक को तो इस खान ही समझना चाहिए। पृथ्वीराज की उपमाओं में एक विशेष बात देखने में आती है। वह है, उपमा की पूर्णता। हमारे प्राचीन कवि प्रायः आँख की उपमा कमल से, और मुख की चन्द्रमा से देते आये हैं। इस तरह की उपमाओं से उपमेय-उपमान के बीच का थोड़ा सा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन में सजीवता नहीं आती न कथित विषय का पूरा दृश्य सामने आ पाता है। पर पृथ्वीराज की उपमाओं में यह बात नहीं है। वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय-उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आस पास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा—

> सग सखी सील कुळ वेस समाणी, पेखि कळी पदमिणी परि।
> राजति राजकुअँरि रायअंगण उडियण बीरज अम्बहरि[10] ॥

यहाँ पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं कर दी है, बल्कि रुक्मिणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आस पास के सम्पूर्ण वातावरण का शब्द-चित्र सामने ला रखा है। उपमा सौन्दर्य के बलाबल कविता का और विशेषता दृष्टव्य है — [illegible]। पूर्वार्ध में कवि ने 'पदमिणी' शब्द का प्रयोग तो

१०. [illegible]

किया है पर साथ में सरोवर का कहीं उल्लेख नही है। परन्तु आगे जाकर उत्तरार्ध मे चद्रमा के साथ स्वच्छ आकाश का वर्णन कर दिया है जिससे स्वच्छ जल-पूरित सरोवर का चित्र स्वतः आँखो के सामने आ जाता है।

और भी—

रामा अवतार नाम ताइ रुपमणि, मानसरोवर मेरुगिरि।
बाळकति-किरि हस चौ बाळक, कनकवेलि बिहुँ पान किरि[११]॥

पाश्चात्य कवि होमर इस प्रकार की उपमाओ के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यही विशेषता पृथ्वीराज को भी अन्यान्य डिंगल कवियो से बहुत ऊपर उठा देती है।

वेलि का कला पक्ष जितना पूर्ण है उतना ही पूर्ण इसका भाव पक्ष भी है। दोनों मे से किसकी अधिकता है और किसकी न्यूनता यह नहीं कहा जा सकता, दोनो का इसमे विलक्षण समन्वय हुआ है। डा० टेसीटरी वेलि की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि 'यह काव्यकला की दक्षता का एक विलक्षण नमूना है जिसमे आगरे के ताजमहल की तरह, भाव की एकाग्र-सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण-विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जिसमे रस एव भाव का सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य तथा काव्य के बाह्य आकार की निष्कलंक शुद्धता को जाज्वल्यमान रूप में प्रदर्शित ~~किया~~ किया गया है'।

श्री कृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह हो गया है। रात को वे अपने केलि-गृह मे रुक्मिणी के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बडे बेचैन हैं। शय्या और द्वार के बीच में चक्कर लगा रहे हैं। थोड़ी-सी भी आवाज सुनकर चौंक पडते हैं—

ऊभी सहु सखिए प्रससिता अति, कितारथ प्री मिळण कित।
अटत सेज द्वार विच्च आहुटि, लुळि देहरि धरि समाश्रित[१२]॥

११. लक्ष्मी का अवतार थी। उसका नाम रुक्मिणी था। सुमेरपर्वत पर दो पत्तोंवाली स्वर्ण-लता के समान बाल क्रीडा करती हुई वह ऐसी लगती थी मानो मानसरोवर में हस का बच्चा।

१२ (इधर) प्रिय मिलन के निमित्त सब सखियों से अति प्रशंसिता रुक्मिणी खडी की गई। (उधर) श्रीकृष्ण शय्या और द्वार के बीच घूम रहे है। और आहट पर कान देकर केलिगृह मे चले जाते है।

प्रेमातुर कृष्ण का कितना सुन्दर भाव-चित्र अंकित किया गया है, यह कवि के निजी अनुभव और मनोभावों का सजीव चित्रांकन है। हमें भी अपने यौवन-प्रभात की याद दिलाता है।

अपनी सखियों के साथ रुक्मिणी श्रीकृष्ण के केलि-गृह में पहुँचती हैं। श्रीकृष्ण उन्हें बड़े आदर के साथ शय्या पर बिठाते हैं। फिर उनके मुख को बार-बार इस प्रकार देखते हैं जिस प्रकार रंक धन को देखता है। श्रीकृष्ण की रतीच्छा देखकर सखियाँ भौंहों से हँसती हुई एक-एक करके कमरे से बाहर चली जाती हैं—

> वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौ अंतहकरण जई।
> हँसि हँसि भ्रूहे हेक हेक हुइ, ग्रिह बाहरि सहचरी गई॥

इसी भाव को बिहारीलाल ने यों व्यक्त किया है—

> पति रति की बतियाँ कहीं, सखी लखी मुसकाय।
> कै कै सबै टलाटली अली चलीं मुसकाय[१३]॥

लेकिन दोनों की भावाभिव्यक्ति में अन्तर है। बहुत अन्तर है। बिहारी के नायक को अपनी नायिका से रति क्रीड़ा के लिये कहना पड़ रहा है। इसलिये उसमें कुछ रूखापन, कुछ नग्नता, कुछ कामोन्माद की बू आ गई है। परन्तु पृथ्वीराज के वर्णन में यह बात नहीं है। उसमें शिष्टता, संस्कारिता और लज्जा-शीलता का पूरा-पूरा पालन हुआ है। साथ ही उसमें काव्योचित कोमलता और भाव की गम्भीरता भी अधिक है।

वेलि का प्रकृति-वर्णन डिंगल साहित्य को पृथ्वीराज की अपनी एक अपूर्व देन है। यह प्रकृति-वर्णन षट्ऋतु वर्णन के रूप में है। लेकिन परम्परानुगत और पिष्टपेषित नहीं है, अपनी नवीनता और मौलिकता को लिये हुए है। रात्रि, प्रभात, ग्रीष्म, वर्षा, वसंत आदि के मनोरम दृश्य एक के बाद एक इस प्रकार अंकित किये गये हैं कि देखकर मन रस-मग्न हो जाता है। ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो पाठक कोई ग्रंथ नहीं पढ़ रहा है, बल्कि एक ऐसा चलचित्र देख रहा है जिसमें रंग और प्रकाश दोनों का अनुकूल सामञ्जस्य है। इस प्रकृति-वर्णन की दो बहुत बड़ी विशेषताएँ हैं—पर्यवेक्षण की सूक्ष्मता और वातावरण की तीव्रता। कवि ने राजस्थान की ऋतु परि-

---

१२ वर और वधू के नेत्रों तथा उनकी चेष्टाओं से जब उनके आन्तरिक भावों को जान लिया तब भौंहों से हँसती हुई एक-एक होकर सखियाँ महल के बाहर चली गईं।

नर्तन सम्बन्धी विभिन्न विशेषताओं को बडी बारीक निगाह से देखा है और देखकर उन्हे हू-बहू शब्दो मे उतारने की सफल चेष्टा की है। ग्रीष्म ऋतु के वर्णन मे राजस्थान की गर्मी की प्रचडता तथा लू का और वर्षा ऋतु के वर्णन मे आकाश मे जल्दी जल्दी इधर उधर दौड़ते हुए बादलो एव वर्षा की झड़ी का वर्णन इस दृष्टि से विशेष कर के दर्शनीय है। पढ़ते-पढ़ते राजस्थान की धरती का चित्र सामने आ जाता है। कवि के शब्दो ने तूलिका की भाँति चित्र खींचे हैं—

काळी करि कॉठळि ऊजळ कोरण, धारे श्रावण धरहरिया।
गळि चालिया दिसोदिसि जळग्रभ, थमि न विरहणि नयण थिया ॥१६५॥
वरसतै दड़ड़ नड अनड़ वाजिया, सघण गाजियौ गुहिर सदि।
जळनिधि ही सामाइ नही जळ, जळवाळा न समाइ जळदि[१४] ॥१६६॥

ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक और सुरम्य प्रकृति-चित्रण तो संस्कृत के महाकवियो से ही बना है। इसमे कवि की भाव-तल्लीनता चित्रकार का चित्र कौशल और वैज्ञानिक की सूक्ष्म दृष्टि सन्निहित है।

इसमे सन्देह नही कि वेलि शृगार रस का ग्रन्थ है। परतु केवल शृगार रस की पिपासा-शान्ति के लिये ही कवि ने इसकी रचना की हो सो बात भी नही है। इसका आध्यात्मिक पक्ष भी है जिसका स्पष्ट उल्लेख ग्रथ के अन्तिम भाग मे हुआ है। अन्त मे जाकर कवि ने सारे ग्रन्थ को ईश-भक्ति का रूप दे दिया है और इसे सासारिक सुख-वैभव, यश-ऐश्वर्य आदि का साधन तथा जीवन-मुक्ति की निसैनी एँव स्वर्गलोक की सीढी बतलाया है—

प्रिथु वेलि कि पत्र विध्र प्रसिध प्रणाळी, आगम नीगम कजि अखिळ।
मुगति तणी नीसरणी मडी, सरगलोक सोपान इळ[१५] ॥

---

१४. काले काले वतुलाकार मेघों और उनके प्रान्त भागस्थ श्वेत बादलो की कोरवाली घटाओ साहित श्रावण मूसलाधार वृष्टि से पृथ्वी को जल प्लावित करने लगा। दिशा-दिशा मे बादल पिघल चले। वे थमते नहीं। विरहिणी स्त्री के नेत्र हो रहे है। ॥१०५॥ बडे जोर से बरसने से पर्वतों के नाले शब्दायमान होने लगे। सघन मेघ गभीर शब्द से गर्जने लगा समुद्र मे भी जल नहीं समाता और बिजली बादलों में नहीं समाती है ॥१९३॥

१५ पृथ्वीराज-रचित यह वेलि क्या है, पृथ्वी पर पाच प्रकार की प्रसिद्ध प्रणाली है। (यथा) शास्त्र वेद सर्व प्रकार की कार्य-सिद्धि मुक्ति की बनी-बनाई निसैनी और स्वर्गलोक की सीढ़ी है।

पृथ्वीराज डिंगल और ब्रजभाषा दोनों में निष्णात थे। वे यदि चाहते तो वेलि की रचना ब्रजभाषा में भी कर सकते थे। परन्तु ऐसा करना शायद उन्होंने उचित नहीं समझा। कारण स्पष्ट है। ब्रजभाषा में माधुर्य है, मार्दव है। लेकिन उसमें ओज की कमी है। और एक ऊँचे काव्य की भाषा में कोरे माधुर्य से काम नहीं चलता। माधुर्य के साथ-साथ उसमें ओज भी होना चाहिये जो डिंगल की एक खास विशेषता है। वेलि को ब्रजभाषा में लिखने का मतलब यह होता कि पृथ्वीराज को ओज गुण से वंचित रहना पड़ता और इसके बिना वेलि में वह बल, वह उल्लास और वह तेज कदापि नहीं आ पाता जिसके दर्शन उसमें आज हमें पग-पग पर होते हैं। इस विषय में डा० टैसीटरी का कहना है, और उनका यह कहना सच है कि 'यदि पृथ्वीराज ने वेलि को ओज-विहीन। पिंगल में लिखा होता तो वे एक अत्यंत भिन्न रचना कर पाते जो संगीत-माधुर्य में वर्तमान ग्रन्थ की अपेक्षा कदापि उत्तम न होती और स्वाभाविक सरलता में तो घटिया रहती ही'।

पृथ्वीराज के जीवन-काल में और उसके बाद भी अनेक वर्षों तक वेलि का राजस्थान में बड़ा सम्मान रहा। उनके समसामयिक कवियों में से किसी ने इसको वेद-पुराण और किसी ने अमृत की वेल कहकर सराहा।

(१) रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै वखाण।
पाँचमो वेद भाखियो पीथल, पुणियौ उगणीसमो पुराण॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु किसन-त्री गुण तवियो।
चिहुँ पाचमो वेद चाळवियो, नव दूणम गति नीगमियौ॥
से कहियौ हर भगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड़।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया वड़॥

(२) वेद बीज जळ वयण, सुकवि जड मंडेस धर।
पात दूहा गुण पुहप, वास भागवै लखमीवर॥
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहरी आडंबर।
मन सुध ते आरोत, अरथ फळ पायो अम्मर॥
विसतार कीध जुग-जुग विमळ, धणी क्रिसन कल्याण धन।
अमृत वेलि पीथल अचळ, तैं रासी कलियाण तन॥

कुछ ईर्षालु लोगों को इससे डाह भी हुई[१८]। लेकिन उनकी यह सारी डाह

१८—मुंशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ४२

वेलि के काव्य-सौष्ठव से टकराकर चूर-चूर हो गई। वेलि की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि राजस्थान के प्राचीन पुस्तकालयों और जैन भडारों मे शायद ही कोई ऐसा मिलेगा जहाँ इसकी दो चार प्रतियाँ सुरक्षित न हों। इसके सिवा डिंगल में यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिस पर प्राचीन टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इन टीकाओं मे तीन टीकाएँ राजस्थानी भाषा में और एक सस्कृत में है।

(२) दसम भागवत रा दूहा। यह पृथ्वीराज का दूसरा ग्रन्थ है। इसमे १८४ दोहे हैं। इसका विषय कृष्ण-भक्ति है। इसकी भाषा भी बहुत प्रौढ और परिमार्जित है। शान्त रस की बड़ी अनूठी रचना है।

(३) दशरथरावउत। इसमे भगवान श्री रामचद्र की स्तुति के ५० के लगभग दोहे हैं। रचना सरस है।

(४) वसदेरावउत। इसमे १६५ दोहे हैं। विषय है, भगवान श्रीकृष्ण का गुणानुवाद। ग्रथ श्रीकृष्ण भक्ति संबंधिनी मौलिक उक्तियों से भरा पड़ा है।

(५) गगा लहरी। इसमे ८० के लगभग दोहे हैं जिनमे गंगाजी की महिमा गायी गई है। बड़ी लोकप्रिय रचना है। इस विषय के अनेक ग्रन्थ हिन्दी और डिंगल मे पाये जाते हैं। परन्तु पृथ्वीराज की यह रचना अपने रग-ढग की एक ही है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त पृथ्वीराज-रचित वीर रसात्मक फुटकर गीत, दोहे और कवित्त भी राजस्थान में बहुत प्रचलित हैं। इनकी ये स्फुट रचनाएँ अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती हैं और इनमे अकबर के आतक के नीचे कराहती हुई हिंदू जनता की दर्द भरी पुकार साफ सुनाई पड़ती है। इनमें असाधारण बल, प्रचंड प्रवाह एव अद्भुत तेज है और एक खास प्रकार का व्यग्य भी है जो चोट करने के साथ-साथ सावधान भी करता है।

पृथ्वीराज की कविता के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(प्रभात वर्णन)

गत प्रभा थियौ ससि रयणि गळती, वर मन्दा सइ वदन वरि
दीपक परजळतौ इ न दीपै, नासफरिस सू रतनि नरि ॥१८२॥

(रात्रि के व्यतीत होने पर चन्द्रमा कान्ति-हीन हो गया, जैसे पति के अस्वस्थ होने से पतिव्रता का सुन्दर मुख। दीपक जलता हुआ भी प्रकाश नहीं करता, जैसे आज्ञा-भग हो जाने से (हकूमत) न रहने से नरश्रेष्ठ(राजा)

गेली तदि साथ सुरसण कोकमनि, रमण कोकमनि साथ रही ।
फूले छटी वास प्रफूले, ग्रहणे सीतळता द ग्रही ॥१८३॥

(उस समय चक्रवाक के मन की रमण करने की वाञ्छा पूर्ण हुई, परन्तु कोक शास्त्रानुसार रमण करनेवाले (नायक-नायिकाओं) के मन की इच्छा निवृत्त हुई । प्रफुल्लित फूलों ने अपनी सुगन्ध छोड़ी और आभूषणों ने शीतलता ग्रहण की ।)

धुनि उठी अनाहत सख भेरि धुनि, अरुणोदय थियौ जोग अभ्यास ।
माया पटल निसामै मजे, प्राणायामे ज्योति प्रकास ॥१८४॥

(शंख और भेरी का शब्द रूपी अनाहत नाद उठा । सूर्योदय रूपी योगाभ्यास हुआ । रात्रिरूपी माया का परदा हट गया । प्राणायाम से परम ज्योति का प्रकाश हुआ ।)

सयोगिणि चीर रई कैरव श्री, घर हट ताळ भमर गोघोख ।
दिणयर ऊगि एतला दीधा, मोलियाँ बंध बधियाँ मोख ॥१८५॥

(सूर्य ने उदय होकर सयोगिनी स्त्रियों के वस्त्र, मंथन-दंड, कुमुदिनी की शोभा—इतनी मुक्त खुली हुई वस्तुओं को बंधन दे दिया और घर, हाट, ताले, भ्रमर और गोशालाएँ—इतनी बंद वस्तुओं को मुक्त किया ।)

वाणिजा वधू गो वाछ अमट विट, चोर चकव विप्र तीरथ वेळ ।
सूर प्रगटि एतला समपिया, मिळियाँ विरह विरहियाँ मेळ ॥१८६॥

(सूर्य ने प्रकट होकर वणिकों को अपनी स्त्रियों से, गायों को बछड़ों से, और कुलटाओं को लम्पट पुरुषों से—इतने मिले हुओं को वियोग दिया । और चोरों को उनकी स्त्रियों से, चकवों को चकवियों से, और विप्रों को तीर्थ की लहरों से—इतने बिछुड़े हुओं को मिलन संयोग सुख दिया ॥)

दोहे

काया लागौ काट, सिकळीगर छूटै नहीं ।[१७]
निरमळ हुवै निराट, भेट्यौ सूँ भागीरथी ॥१॥
मौसो आयौ माल, तैं वेगो ही तारियौ ।
पड़ियौ रहसूँ पोय, भाटौ हुय भागीरथी ॥२॥

---

१७. काट=जंग । मौसो=मैंने से । वेगो=जल्दी । भाटौ=पत्थर । रैफ=एक । फसूगौ=इकट्ठा । पुलिंदाह=पत्र । पाधरा=अनुकूल । मूकै=छोड़ता है । गेयण=कमल ।

जव तिल जितरौ हेक, हेक कणूकौ हाड रो ।
मुवॉ पछै ही माय, भेळै गत भागीरथी ॥३॥
पुळियै मग पुळियाह, हुवै दरस अदरस हुवा ।
जळ पैठा जळियाह, मदा क्रम भागीरथी ॥४॥

—गगा लहरी

धर वाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण ।
घणॉ नरिंदॉ घेरियौ, रहै गिरदॉ राण ॥५॥
माई एहडा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप ।
अकवर सूतौ ओझकै, जाण सिराणै सॉप ॥६॥
अकबर समँद अथाह, सूरापण भरियौ सजळ ।
मेवाड़ौ तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी ॥७॥

—फुटकर

साँयाजी

साँयाजी झूला खॉप (शाखा) के चारण और ईडर राज्य के लीलछा गॉव के निवासी स्वामिदास के द्वितीय पुत्र थे । इनका जन्म स० १६३२ मे और देहान्त स० १७०३ में हुआ था। ईडर-नरेश राव कल्याणमल इनके आश्रयदाता थे जिन्होंने इनको एक लाखपसाव और कुवावा नामक एक गाँव प्रदान किया था ।

साँयाजी भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनकी कविता कृष्ण-भक्ति से ओतप्रोत है । भाषा इनकी डिंगल है जिस पर गुजराती का भी थोडा-सा रग लगा हुआ है जो स्वाभाविक है। क्योंकि ये काठियावाडी थे। इनके दो ग्रथ उपलब्ध हैं, रुक्मिणी-हरण और नागदमण ।

रुक्मिणी-हरण मे श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। इसकी छन्द सख्या ४३६ है। इसके सम्बन्ध मे एक किंवदती राजस्थान मे प्रचलित है। कहा जाता है कि राठौड पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' और 'रुक्मिणी-हरण' दोनों मुगल सम्राट अकवर के पास अवलोकनार्थ भेजे गये थे। बादशाह ने पहले 'वेलि' को सुनकर फिर 'हरण' को सुना। अन्त में 'हरण' की रचना को श्रेष्ठतर निर्णीत करके श्लेष और व्यग्य में पृथ्वीराज से कहा— "पृथ्वीराज, तुम्हारी 'वेल' को 'हरण' चरगया। इस प्रकार बादशाह ने 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' को घटिया और 'रुक्मिणी हरण' को बढिया बताया। परन्तु यह बात मानने योग्य नही है। 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के

रुखमियो जाणि भ्रत जाळणी राळियौ
भला भीकम तम्हे वर भाळियौ ॥६॥
—रुक्मिणी हरण

दुरसाजी

ये आढा गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं० १५९२ में जोधपुर राज्यान्तर्गत धूंदला नामक गाव में हुआ था। इनके पिता का नाम मेहाजी और दादा का अमराजी था। ये बहुत छोटी अवस्था मे पितृ-विहीन हो गये थे। इसलिए बगड़ी गॉव के ठाकुर प्रतापसिंह ने इनका पालन-पोषण किया और वयस्क होने पर अपने यहॉ नौकर भी रख लिया। ठाकुर प्रतापसिंह की प्रशसा मे लिखा हुआ दुरसाजी का एक दोहा मिला है जिसमे उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की गई है—

माथै मावीतॉह, जनम तणौ क्यावर जितौ।
सोहड सुध पातॉह, पाळणहार प्रतापसी[१८] ॥

कहा जाता है कि दुरसाजी का मुगल दरबार मे बडा सम्मान था और बादशाह अकबर ने इनको लाखपसाव भी प्रदान किया था। इनके मुगल दरबार मे प्रवेश करने तथा सम्राट अकबर द्वारा सम्मानित होने आदि की कुछ दन्तकथाऍ राजस्थान मे प्रचलित हैं जो दोहराते-दोहराते अब इतिहास के रूप मे बदल गई हैं। पाठको की जानकारी के लिए इन दन्तकथाओं का साराश हम यहा देते हैं—

(१) एक बार सोजत के मार्ग से होकर सम्राट अकबर आगरे से अहमदाबाद की तरफ जा रहा था। रास्ते मे सोजत उसके ठहरने का एक प्रधान स्थान था जहा से लेकर ठेठ गूंदोच के डेरे तक उसके राह-प्रबन्ध की जिम्मेदारी बगडी के ठाकुर प्रतापसिंह के ऊपर थी। अतः प्रतापसिंह ने यह काम दुरसाजी के सिपुर्द किया। उन्होने सारे काम को बड़ी चतुराई से सॅभाला जिससे बादशाह बहुत खुश हुआ और लाखपसाव तथा सेवा का प्रशसा-पत्र देकर उसने इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। यहीं पर इनकी बादशाह से सलामी भी हुई।

१८- वीरों और सुकवियों का पालन करनेवाले हे प्रतापसिंह ! माता के जन्म-दान देने के समान मेरे सर पर तेरा एहसान है ।

(२) जोधपुर के लक्खाजी बारहट अकबर के दरबारी कवि थे। वे दुरसाजी को एक दिन अपने साथ शाही दरबार में ले गये और उनकी बादशाह से सलामी करवाई। इस सुकृपा के बदले में दुरसाजी ने लक्खाजी की प्रशंसा में यह दोहा बनाया—

> दिल्ली दरगह अंब-तरु, ऊँचो फळद अपार।
> चारण लक्खो चारणाँ, डाळ नमावणहार[१०] ॥

(३) एक बार दुरसाजी पुष्कर-स्नान के लिये अजमेर की ओर गये। उस समय सम्राट अकबर का अभिभावक बैरामखाँ किसी कारणवश अजमेर आया हुआ था। दुरसाजी ने उससे भेंट करने की बड़ी कोशिश की लेकिन उसके नौकर-चाकरों ने भेंट न होने दी। इस पर उससे भेंट करने का इन्होंने एक नया उपाय ढूँढ निकाला। एक दिन संध्या को जब बैरामखाँ कहीं घूमने को अपने डेरे से बाहर जा रहा था तब ये उसके रास्ते से थोड़ी दूर पर जाकर खड़े हो गये और निम्नोक्त दोहे को जोर-जोर से पढ़ने लगे—

> आफताब अँधेर पर, अगनी पर ज्यूँ नीर।
> दुरसा कवि का दुक्ख पर, है बहराम वजीर ॥

इस पर बैरामखाँ का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ। उँगली के इशारे से उसने इन्हें अपने पास बुलाया। पास जाकर दुरसाजी ने उपरोक्त दोहे के अतिरिक्त ये तीन दोहे और भी सुनाये :—

> तूँ बन्दा अल्लाह का, मैं बन्दा तेराह।
> तेरा है मालिक खुदा, तूँ मालिक मेराह ॥
> पीर पराई मेटणा, एह पीर का काम।
> मेरी पीड़ा मेट दे, बडा पीर बहराम ॥
> बिभीषण कूँ वारिधि तट, भेंटे वो एक राम।
> अब मिलग्या अजमेर में, दुरसा कूँ बैराम ॥

सुनकर बैरामखाँ बहुत प्रसन्न हुआ और दुरसाजी को अपने डेरे पर आने का निमंत्रण दिया।। दूसरे दिन दुरसाजी उसके डेरे पर गये। वहाँ बैरामखाँ ने इनकी बड़ी आवभगत की और एक लाख रुपया पुरस्कार में दिया। दो चार दिन तक दुरसाजी वहाँ रहे। एक दिन बात ही बात में

१०. दिल्ली-दरबार [illegible]

इन्होंने बेरामखा से कहा कि बादशाह से मिलने की मेरी बडी इच्छा है और यह अलभ्य अवसर आप ही की कृपा से प्राप्त हो सकता है। इस पर बेरामखा ने इनसे कहा कि दो माह बाद दिल्ली आना, तुम्हारा मुजरा करवा देंगे।

ठीक दो महीने के बाद दुरसाजी दिल्ली पहुँचे, और बेरामखाँ से मिले। प्रतिज्ञानुसार वह इन्हे शाही दरबार मे ले गया। जिस समय बादशाह दरबार में आया, इन्होंने बड़े ऊँचे शब्दों मे उसकी बिरदावली कही और फिर मुजरा किया। मुजरे के वक्त बादशाह ने इनसे पूछा—"तुम कौन हो?" प्रत्युत्तर में दुरसाजी ने भी वापस यही प्रश्न बादशाह से किया—"तुम कौन हो?" इस पर बादशाह ने थोड़ी सी उग्र दृष्टि से इनकी तरफ देखा और बोला—"तूँ मुझे नहीं पहिचानता?" "पहिचानता हूँ"—दुरसाजी ने उत्तर दिया। फिर डिंगल भाषा का यह गीत सुनाया—

(गीत छोटो साँणोर)

वाणावळि लखण (कै तूँ) अरजण वाणावळि[२०]
सरदस रोळण (कै तूँ) कस-मॅहार ॥
सासौ भाज हमायु समोभ्रम (तूँ)
अकब्बर साह कवण अवतार ॥१॥
निगम साख मानव गत नाही,
असपत कथ साँचौ अणवार।
वेधण भ्रमर कै तूँ मछ-वेधण,
गिरतारण कै तूँ गिरधार ॥२।
जोगी परा करामत जोते,
(तूँ) आदम नहीं वडो कोइ ऑम।

२०- तू लक्ष्मण की बाणावली है या अर्जुन की बाणावली। तू रावण को मारनेवाला है या कंस का संहारक। हे हुँमायू के पुत्र अकबर! तू मेरे इस संशय को दूर कर कि तू किसका अवतार है ॥१॥ शास्त्र और मनुष्य की गति नहीं है। हे बादशाह! सच कह दे कि तू भ्रमर का वेधक है या मच्छ का। तू गिरि-तारण (रामचन्द्र) है या गिरधारी (कृष्ण) ॥२॥ तेरी करामात जोगी से भी परे है। तू मनुष्य नहीं, कोई बड़ा अवतार है। तू मेघनाद को मारनेवाला है या कर्ण का विध्वंसक। तू रघुवंशी है या यदुवंशी ॥३॥ हे दिल्ली के स्वामी! बतला कि तू इनमें से कौन है, शेष या मनुष्य। तू अतुल्य बलवानों को गिरानेवाला है या कालिय नाग का नाथनेवाला ॥४॥ (कवि पूछता है कि हे अकबर! तू मुझे बतला कि लक्ष्मण, अर्जुन, राम और कृष्ण इन चारों में से तू कौन है?)

थोडे-बहुत अन्तर के साथ उपरोक्त कहानियाँ राजस्थान मे कई वर्षों से प्रचलित हैं, पर इनमे से किसी की पुष्टि अकबर के समय की लिखी मुसलमानी तवारीखों तथा राजस्थान की प्राचीन ख्यातो आदि से नहीं होती। अकबरनामे और आईने-अकबरी मे जहाँ अकबर के प्रायः सभी बडे-बडे दरबारियों, कवि-कोविदों और कलाकारो का सन्निवेश हो गया है वहाँ दुरसाजी का नामोल्लेख भी नहीं है। यदि दुरसाजी को लाखपसाव या क्रोडपसाव मिला होता तो उसका जिक्र अकबरनामे अथवा आइने-अकबरी मे अवश्य होता। क्योंकि लाखपसाव, क्रोडपसाव आदि का मिलना उन दिनों बडे आदर की बात समझी जाती थी और जिस किसी को इतने बडे पुरस्कार मिलते थे उनका निर्देश उक्त ग्रथो मे कर दिया जाता था। इसके सिवा एक बात और भी है। दुरसाजी ने अपनी "विरुद छहत्तरी" मे अकबर के लिए 'अकबरियो' 'अधम' 'लालची' आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो अकबर के प्रति उनकी असीम घृणा को सूचित करते हैं। अकबर द्वारा सम्मानित कवि ही अकबर की घोर निंदा करे यह बात भी कुछ कम समझ में आती है। इसे तो कृतघ्नता की पराकाष्ठा ही समझना चाहिए। फिर अकबर जैसे प्रतापी सम्राट की निन्दा करके भी क्या दुरसाजी उसके दरबार मे बने रह सकते थे, यह बात भी विचारणीय है। वस्तुतः ये दन्तकथाएँ दुरसाजी जैसे यशस्वी कवि और अकबर जैसे महान सम्राट दोनो के गौरव के अनुकूल नहीं हैं। इसके सिवा विषय की दृष्टि से भी इनमें परस्पर बहुत विरोध है। जो दुरसाजी एक स्थान पर अकबर को श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण का अवतार बतलाते हैं वही दूसरे स्थान पर उसे 'अधम' कह कर सम्बोधित करते हैं, यह कैसे सभव हो सकता है? साराश यह कि दुरसाजी का अकबर के दरबारी कवि होने तथा अकबर द्वारा उनको लाखपसाव, क्रोड़पसाव आदि मिलने की जो बातें कही जाती हैं उनमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। दुरसाजी के यश तथा अपनी जाति के महत्व को बढाकर बतलाने के लिए चारण लोगों ने इनको गढ लिया है। कहना न होगा कि जिन लोगो ने ये कहानियाँ गढी हैं उनको अकबरी दरबार के ठाट-बाट और शिष्टाचार आदि विषयक बातों का कुछ भी ज्ञान न था। किसी साधारण श्रेणी के क्षत्रिय नरेश के राजदरबार को देखकर ही उन्होंने इन कहानियों की कल्पना कर ली है।

दुरसाजी निरे कवि ही न थे, योद्धा भी थे। कहते हैं कि स० १६४० मे जिस समय सम्राट अकबर ने सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये जोध-

पुर के रायसिंह चन्द्रसेनोत और दाँतीवाड़ा के स्वामी कोलीसिंह की अध्यक्षता में एक सेना सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध भेजी उस समय दुरसाजी भी रायसिंह के साथ थे। आबू के पास दताणी नामक स्थान पर भयंकर रक्तपात और भीषण मारकाट हुई जिसमें रायसिंह, कोलीसिंह, जगमाल इत्यादि मारे गये और दुरसाजी के भी बहुत से घाव लगे। युद्ध के समाप्त होने पर राव सुरताण और उसके सरदार जब रण-भूमि का निरीक्षण कर रहे थे तब उन्होंने खून से लथपथ दुरसाजी को वहाँ पड़ा देखा और एक साधारण सिपाही समझकर इन्हें भी दूध पिलाना (मारना) चाहा। परन्तु तलवार को म्यान से निकालकर ज्यों ही एक आदमी इनकी तरफ बढ़ा त्योंही ये बोल उठे—"मुझे मत मारो मैं राजपूत नहीं हूँ, चारण हूँ"। इस पर इनसे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस देवड़ा समरा की प्रशंसा में जो अभी-अभी काल-कवलित हुआ है, कोई कविता कहो। इस पर दुरसाजी ने यह दोहा सुनाया—

धर रावो जस डूगरौं, ब्रद पोतो सत्र हाण।
समरे मरण सुधारियो चहुँ थोका चहुवाण [२७]॥

सुनकर राव सुरताण बहुत खुश हुआ। पालकी में बिठाकर वह इन्हें अपने साथ घर लिवा ले गया और इनके घावों के पट्टियाँ बँधवाईं। कालान्तर में राव सुरताण ने इन्हें अपना पोलपात बना लिया और कोटपराव के साथ पेशुवा और साल नामक दो गाँव देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

दुरसाजी के दो स्त्रियाँ थीं जिनसे इनके चार पुत्र हुए— भारमलजी, जगमलजी, सादूलजी, और किसनाजी। ये प्रायः अपने सबसे छोटे बेटे किसनाजी के साथ पांचेटिया में रहते थे। वहीं सं० १७१२ में इनका देहान्त हुआ।

दुरसाजी राजस्थान के बहुत लोकप्रिय और यशस्वी कवि हैं। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना मान इनको मिला उतना राजस्थान के किसी कवि को आज तक प्राप्त नहीं हुआ। यदि किसी कवि की ख्याति को उसकी काव्योन्नति का मापदंड माना जाय तो इस दृष्टि से दुरसाजी का स्थान निस्सन्देह बहुत ऊँचा है। इनके लिखे तीन ग्रंथ बतलाए जाते हैं:

[२७] चौहान समरा ने घोर रण में अपनी मृत्यु को सार्थक किया। क्योंकि उसने [illegible] सुरताण की भूमि की रक्षा की, [illegible] की प्रशंसा करवाई, अपने [illegible] के लिए [illegible] छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुँचाई।

थोडे-बहुत अन्तर के साथ उपरोक्त कहानियाँ राजस्थान मे कई वर्षों से प्रचलित हैं, पर इनमे से किसी की पुष्टि अकबर के समय की लिखी मुसलमानी तवारीखो तथा राजस्थान की प्राचीन ख्याती आदि से नहीं होती। अकबरनामे और आईने-अकबरी मे जहाँ अकबर के प्रायः सभी बडे-बडे दरबारियों, कवि-कोविदो और कलाकारों का सन्निवेश हो गया है वहाँ दुरसाजी का नामोल्लेख भी नहीं है। यदि दुरसाजी को लाखपसाव या क्रोडपसाव मिला होता तो उसका जिक्र अकबरनामे अथवा आइने-अकबरी में अवश्य होता। क्योंकि लाखपसाव, क्रोडपसाव आदि का मिलना उन दिनो बडे आदर की बात समझी जाती थी और जिस किसी को इतने बडे पुरस्कार मिलते थे उनका निर्देश उक्त ग्रथो मे कर दिया जाता था। इसके सिवा एक बात और भी है। दुरसाजी ने अपनी "विरुद छहत्तरी" मे अकबर के लिए 'अकबरियो' 'अधम' 'लालची' आदि शब्दो का प्रयोग किया है जो अकबर के प्रति उनकी असीम घृणा को सूचित करते हैं। अकबर द्वारा सम्मानित कवि ही अकबर की घोर निंदा करे यह बात भी कुछ कम समझ में आती है। इसे तो कृतघ्नता की पराकाष्ठा ही समझना चाहिए। फिर अकबर जैसे प्रतापी सम्राट की निन्दा करके भी क्या दुरसाजी उसके दरबार में बने रह सकते थे, यह बात भी विचारणीय है। वस्तुतः ये दन्तकथाएँ दुरसाजी जैसे यशस्वी कवि और अकबर जैसे महान सम्राट दोना के गौरव के अनुकूल नहीं हैं। इसके सिवा विषय की दृष्टि से भी इनमे परस्पर बहुत विरोध है। जो दुरसाजी एक स्थान पर अकबर को श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण का अवतार बतलाते हैं वही दूसरे स्थान पर उसे 'अधम' कह कर सम्बोधित करते हैं, यह कैसे सभव हो सकता है? साराश यह कि दुरसाजी का अकबर के दरबारी कवि होने तथा अकबर द्वारा उनको लाखपसाव, क्रोड़पसाव आदि मिलने की जो बातें कही जाती हैं उनमे कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। दुरसाजी के यश तथा अपनी जाति के महत्व को बढाकर बतलाने के लिए चारण लोगो ने इनको गढ लिया है। कहना न होगा कि जिन लोगों ने ये कहानियाँ गढी हैं उनको अकबरी दरबार के ठाट-बाट और शिष्टाचार आदि विषयक बातों का कुछ भी ज्ञान न था। किसी साधारण श्रेणी के क्षत्रिय नरेश के राज-दरबार को देखकर ही उन्होने इन कहानियो की कल्पना कर ली है।

दुरसाजी निरे कवि ही न थे, योद्धा भी थे। कहते हैं कि स० १६४० मे जिस समय सम्राट अकबर ने सीसोदिया जगमाल की सहायता के लिये जोध-

पुर के रायसिंह चन्द्रसेनोत और दाँतीवाड़ा के स्वामी कोलीसिंह की अध्यक्षता में एक सेना सिरोही के राव सुरताण के विरुद्ध भेजी उस समय दुरसाजी भी रायसिंह के साथ थे। आबू के पास दताणी नामक स्थान पर भयंकर रक्तपात और भीषण वढ़ाकटी हुई जिसमें रायसिंह, कोलीसिंह, जगमाल इत्यादि मारे गये और दुरसाजी के भी बहुत से घाव लगे। युद्ध के समाप्त होने पर राव सुरताण और उसके सरदार जब रण-भूमि का निरीक्षण कर रहे थे तब उन्होंने खून से लथपथ दुरसाजी को वहाँ पड़ा देखा और एक साधारण सिपाही समझकर इन्हें भी दूध पिलाना (मारना) चाहा। परन्तु तलवार को म्यान से निकालकर ज्यों ही एक आदमी इनकी तरफ बढ़ा त्योंही ये बोल उठे—"मुझे मत मारो मैं राजपूत नहीं हूँ, चारण हूँ"। इस पर इनसे कहा गया कि यदि तुम चारण हो तो इस देवड़ा समरा की प्रशंसा में जो अभी-अभी काल-कवलित हुआ है, कोई कविता कहो। इस पर दुरसाजी ने यह दोहा सुनाया—

> धर रावाँ जस डूगराँ, वद पोताँ सत्र हाण।
> समरै मरण सुधारियो चहूँ थोकाँ चहुवाण [२२]॥

सुनकर राव सुरताण बहुत खुश हुआ। पालकी में बिठाकर वह इन्हें अपने साथ घर लिवा ले गया और इनके घावों के पट्टियाँ बँधवाईं। कालान्तर में राव सुरताण ने इन्हें अपना पोलपात बना लिया और क्रोड़पसाव के साथ पेशुवा और साल नामक दो गाँव देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

दुरसाजी के दो स्त्रियाँ थीं जिनसे इनके चार पुत्र हुए— भारमलजी, जगमलजी, सादूलजी, और किसनाजी। ये प्राय. अपने सबसे छोटे बेटे किसनाजी के साथ पाँचेटिया में रहते थे। वहीं सं० १७१२ में इनका देहान्त हुआ।

दुरसाजी राजस्थान के बहुत लोकप्रिय और यशस्वी कवि हैं। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना मान इनको मिला उतना राजस्थान के किसी कवि को आज तक प्राप्त नहीं हुआ। यदि किसी कवि की ख्याति को उसकी काव्योत्तमता का मापदंड माना जाय तो इस दृष्टि से दुरसाजी का स्थान निस्संदेह बहुत ऊँचा है। इनके लिखे तीन ग्रंथ बतलाए जाते हैं :

---

२२ चौहान समरा ने चारों तरफ से अपनी मृत्यु को सार्थक किया। अर्थात् इसने राव सुरताण की भूमि की रक्षा की, पहाड़ों की प्रशंसा करवाई, अपने वंशजों के लिए सम्मान छोड़ गया और शत्रुओं को हानि पहुँचाई।

'विरुद छहत्तरी, 'किरतार बावनी' और 'श्री कुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गजगत'। इनमें 'विरुद छहत्तरी' तो वास्तव में इन्हीं की लिखी हुई हैं। परंतु शेष दो ग्रन्थों को इनके रचे मानने का कोई दृढ आधार नहीं है। इन ग्रथों के अतिरिक्त इनके लिखे फुटकर गीत-कवित्त भी राजस्थान में बहुत प्रचलित हैं। दुरसाजी की भाषा विशुद्ध डिंगल का उत्कृष्ट नमूना है। कविता बहुत सरल एवं वीरदर्प पूर्ण है और हिन्दूधर्म की महिमा से उद्भासित है। यदि इनकी कविता की तुलना डिंगल के किसी दूसरे कवि की कविता से हो सकती है तो वह है बीकानेर के राठौड पृथ्वीराज की कविता। वही बल, वैसी ही गति, उतनी ही प्रचण्डता इनकी कविता में भी पाई जाती है। उदाहरण देखिए—

अकबर गरब न आण, हींदू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दिवाँण, करतो लटका कटहड़ै ॥१॥
अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागै जग-दातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥२॥
अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिन्दू-तुरक।
मेवाड़ौ तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसी ॥३॥
अकबरियै इक बार, दागळ की सारी दुनी।
अणदागळ असवार, रहियौ राण प्रतापसी ॥४॥
लोपै हींदू लाज, सगपण रोपै तुरकसूँ।
आरज-कुळ री आज, पूँजी राण प्रतापसी ॥५॥
सुख-हित स्याळ-समाज, हींदू अकबर-बस हुवा।
रोसीलौ म्रगराज, पजै न राण प्रतापसी ॥६॥
अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥७॥
ढिग अकबर दळ ढाण, अग-अग झगड़ै आथड़ै।
मग-मग पाड़ै माण, पग-पग राण प्रतापसी ॥८॥
अकबर हियै उचाट, रात-दिवस लागी रहै।
रजवट - वट - समराट, पाटप राण प्रतापसी[23] ॥९॥

---

23 दिवाँण=महाराणा। कटहडे=शाही कटहर में। ऊँघाणा=ऊँघने लग गये। अवर=अन्य। पोहरे=पहरे पर। पोयण=कमल। दागल=दागयुक्त। दुनी=दुनिया। सगपण रोपै=वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर। स्याल=सियार। रोसीलो=क्रोधी। पजैन=परास्त नहीं होता। भेला=इकट्ठा। हेक=एक। ढिग=पास।

ये खरतर गच्छीय जैन कवि जैनाचार्य अभयधर्म के शिष्य थे। ये राजस्थान-निवासी थे, पर जन्म-स्थान का ठीक ठीक पता नहीं है। इनका जन्म सं० १५८० के आसपास हुआ था। अच्छे पंडित और सुकवि थे। इनके निम्नलिखित ग्रंथों का पता है—

कुशललाभ

(१) ढोला मारू री चोपई (२) माधवानल-कामकंदला चौपई (३) तेज सार रास (४) अगड़ दत्त चौपई (५) पार्श्वनाथ स्तवन (६) गौडी छंद (७) नवकार छंद (८) भवानी छंद (९) पूज्य वाहण गीत (१०) जिन पालित-जिन रक्षित संधि गाथा और (११) पिंगल शिरोमणि।

इनमें 'ढोला मारू री-चोपई' और 'माधवानल-कामकंदला' इनकी बड़ी लोकप्रिय रचनाएँ हैं। पहले ग्रंथ में राजस्थान के सुप्रख्यात ग्रंथ 'ढोला मारू रा दूहा' का चोपई-बंध किया गया है। यह जैसलमेर के रावळ मालदेव के युवराज हरराज के लिए लिखा गया था। इसका रचना-काल सं० १६१७ है। दूसरे ग्रंथ में माधवानल और कामकंदला की प्रेम-कथा का वर्णन है।

कुशललाभ की भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। रचना-शैली सहज और चित्ताकर्षक है। वर्णन-वैचित्र्य द्वारा पाठक का ध्यान इधर-उधर न भटकने देने की जो क्षमता एक कहानीकार में होनी चाहिए वह इन में पूरी-पूरी पाई जाती है। इनकी रचना का नमूना लीजिए—

> इणि अवगुण मारू हुँइ तणा। माळवणी कहिया अति घणा॥
> ढोलो वात सुणी गहगहै। हँसि नै मारवणी प्रति कहै॥
> रहि मारवणी ताहरो देस। केहवा माणस केहवा वेस॥
> वळती मारवणी इम कहै। प्रिय आपे रुपाळी पणि लहै॥
> मारवणी रै मन री प्रीति। ढोला दाखै देसी रीति॥
> मरुधर देस भला छै नारी। पणि ज्यां मारू उपम नहीं॥

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के संत हरिव्यास देव जी के चेले थे। इनका जन्म [illegible] कुल में हुआ था। इनकी रचना

[illegible]

परशुराम काल स० १६७७ के आस पास है। निम्बार्क संप्रदाय के प्रमुख आचार्यों में इनकी गणना होती है। इनका लिखा 'परशुराम-सागर' प्रसिद्ध है। इसमें इनके २२ ग्रंथ और ७५० के लगभग फुटकर पद संगृहीत हैं। ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) साखी का जोड़ा (२) छंद का जोडा (३) सवैया दस अवतार का (४) रघुनाथ चरित (५) श्रीकृष्णचरित (६) सिंगार सुदामा-चरित (७) द्रौपदी का जोड़ा (८) छप्पय गज ग्राह को (९) प्रहलाद-चरित (१०) अमर बोध लीला (११) नाम निधि लीला (१२) शौच-निषेधलीला (१३) नाथ-लीला (१४) निज रूप लीला (१५) श्री हरि लीला (१६) श्री निर्वाण लीला (१७) समभणी लीला (१८) तिथि लीला (१९) नंद लीला (२०) नक्षत्र लीला (२१) श्री बावनी लीला (२२) विप्रमती (रचना काल स० १६७७)।

परशुराम जी की भाषा पिंगल है। इनकी रचना निर्गुणवादी और सगुणवादी दोनों विचार परंपराओं से प्रभावित है। इन्होंने कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म पर भी कविता की है और कृष्ण-भक्तों की तरह सगुण ब्रह्म पर भी। इनकी कविता अर्थ-गौरवपूर्ण और सामान्य रूप से सरस है। उदाहरण—

गुरु द्रोही जो आतमा, सो मम द्रोही जान।
परसा जो गुरु भक्त है, सो मम भक्त पिछान ॥१॥
सीप न निपजै सिंधु बिन, मुक्ताहल बिन सीप।
साधु न निपजै साधु बिन, परसुराम कहुँ दीप ॥२॥
गुन आयो तब जानिये, अवगुन नाम विलाय।
अरथ भलो सो परसराँ, जो अनरथ बहि जाय ॥३॥
जानै कौन अगाध की, जाके आदि न अंत।
हरि दरिया में परसुराँ, हम से जीव अनत ॥४॥
अपना कीया दूर कर, हरि का कीया देख।
मिटै न काहू के किये, परसराम हरि लेख ॥५॥
परसराम हरि नाम में, सब काहू की सीर।
कहि जाणे सोई कहै, अत्यज विप्र अहीर ॥६॥

ये दधवाडिया-गोत्र के चारण चूँडा जी के बेटे थे। इनका जन्म सं० १६१० और स० १६१५ के बीच में किसी समय हुआ था। इनके जन्म-

माधौदास स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है। परन्तु कहा जाता है कि ये जोधपुर राज्य के बलूंदा गांव में पैदा हुए थे। एक बार जब ये अपने घर से कहीं बाहर गये हुए थे तब कुछ मुसलमान इनकी गाएँ चुरा ले गये। घर लौटने पर जब इनको इस बात का पता लगा तब इन्होंने अपने पुत्र के साथ उनका पीछा किया। लड़ाई हुई। ये मारे गये। यह घटना सं० १६६० के आसपास की है।

ये जोधपुर के महाराजा सूरसिंह के आश्रित थे। बीकानेर के राठौड़ पृथ्वीराज से भी इनका अच्छा हेल-मेल था। एक बार पृथ्वीराज ने अपना ग्रंथ 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' इनको सुनाया। सुनकर ये बहुत ख़ुश हुए और उसकी बहुत बड़ाई की। इसके बदले में पृथ्वीराज ने भी इनकी प्रशंसा में यह दोहा लिखा—

चूंडे चत्रभुज सेवियो, ततफळ लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधौदास॥

माधौदास बहुत उच्चकोटि के कवि और हरिभक्त थे। इन्होंने "रामरासौ" और "भाषा दसमस्कंध" नामक दो ग्रंथ बनाये। दसमस्कंध का पता नहीं लगता। पर रामरासौ की अनेक हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं। सोलह सौ से अधिक छंदों का यह एक बहुत बड़ा और उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसमें रामकथा का वर्णन है। इसकी भाषा डिंगल है। ग्रंथ कवि की काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। एक पद देखिए—

राग मारू

भरथ या सब रघुनाथ बडाई,
बधि कपि बालि सुग्रीव निवाजे केकधा ठकुराई॥टेक॥
मम बल हीण अलप साखाम्रिग त्रिकुट सलित न कुदाई।
राम-प्रताप स्यध सो जोजन उलंघत पलक न लाई॥१॥
बौह जळ हो पाथर तळ बूडत तिल प्रमांण कण राई।
लिखि श्री राम-नाम गिर डारत दधि सिर जात तिराई॥२॥
इद्रजीत बांहि कुंभ दसाणण सुरगाह बदि छिड़ाई।
सकल संग्राम म्रितक कपि स्यन्या अम्रित आंणि जिवाई॥३॥
जा के चरण गहत सरणागति लंक बभीषणि पाई।
माधौदास बदंति जस महिमा हणूमान रघुराई[२४]॥४॥

---

२४ केकधा=किष्किंधा। सलित=नदी। स्यध=सिंधु। बौह=बहुत। दधि=उदधि बांहि=मारकर। दसाणण=रावण। स्यन्या=सेना।

दामकृत लक्ष्मणसेन-पद्मावती (सं० १५१६), प्रतापसिंह कृत चंदकुंवर री वात (सं० १५४०), सिद्धसेन कृत विक्रम पंचदंड चौपई (सं० १५५६), हीरकलश कृत सिंहासन बत्तीसी (सं० १६३६), हेमरत्न कृत पद्मिनी चौपई (सं० १६४५), भद्रसेन कृत चंदन मलियागिर री वात (सं० १६७५), सुमति हंस कृत विनोदरस (सं० १६६१) इत्यादि रचनाएँ भी इसी काल की हैं। और इनका प्रचार भी थोड़ा-बहुत पाया जाता है। परन्तु साहित्य की दृष्टि से इनका महत्त्व विशेष नहीं है।

फुटकर गीत, दोहा, कवित्त आदि के रचयिता इस काल में इतने हो गये हैं कि उनके नाम गिनाना ही कठिन है। कुछ बहुत प्रसिद्ध नाम ये हैं: महाराणा कुंभा (सं० १४९०-१५२५) पसाइत (सं० १४९०), बारूजी (सं० १५२०), चानण (सं० १५४०), चौहथ (सं० १५४०), सांवळ (सं० १५६०), महाराणा उदयसिंह (सं० १५९४-१६२८), महाराणा-प्रतापसिंह (सं० १६२८-५३), सादूळ (सं० १६००) महाराजा रायसिंह (सं० १६२८-६८) ढेवौ (सं० १६३२), महाराजा मानसिंह (सं० १६५६-७१) महाराणा अमरसिंह (सं० १६५३-७६), पीरजी (सं० १६४०), रंगरेलौ (सं० १६४०), सूरचंद (सं० १६४०), लालादे (सं० १६४०), शंकर (सं० १६४५), चांपादे (सं० १६५०), गैपौ (सं० १६५६), लक्खाजी (सं० १६६०), हरनाथ (सं० १६६०), हरपाल (सं० १६६०), नरूजी (सं० १६६०), किशनदास (सं० १६६०), हरसूर (सं० १६६२), डूंगरसिंह (सं० १६६२), नेतौ (सं० १६६२), हरपौ (सं० १६६५), मोतीसर चतरौ (सं० १६७०), लीलाधर (सं० १६७६), चतुर्भुज सहाय (सं० १६७७), और देदौ (सं० १६८०)।

चौथा प्रकरण

उत्तर मध्यकाल (सं० १७००-१९००)

लगभग सं० १७०० से राजस्थानी साहित्य का उत्तर मध्यकाल प्रारंभ होता है जो सं० १९०० तक चलता है। इस काल में डिंगल के साथ-साथ पिंगल की भी अच्छी उन्नति हुई और दोनों भाषाओं में उच्चकोटि के ग्रन्थ रचे गए। इस समय के अधिकांश कवियों का प्रिय विषय था, कृष्ण। राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं को लेकर कवियों ने छोटे-मोटे बहुत से शृंगारात्मक ग्रंथ तथा फुटकर पद, कवित्त-सवैया आदि बनाए जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। अनेक रीति-ग्रन्थों का निर्माण भी इसी युग में हुआ। कुछ कवियों ने वीररस में भी उत्कृष्ट रचनाएँ कीं और कुछ कवि ऐसे भी पैदा हुए जिनकी तुलना अन्य भारतीय भाषाओं के किसी भी बड़े से बड़े कवि के साथ की जा सकती है। इनमें बिहारीलाल, वृन्द और नागरीदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माधोदास दधवाडिया ने रामरासो लिखकर रासो लिखने की जो परिपाटी राजस्थान में कायम की थी उसको इस युग में बहुत बल मिला। और खुंमाण रासो, पृथ्वीराज रासो, हमीर रासो, राणा रासो इत्यादि अनेक रासो ग्रंथ इस शैली पर लिखे गए।

पूर्व मध्यकाल में चारण आदि जातियों के कवि अधिकतर फुटकर गीत आदि लिखने में व्यस्त थे, पर इस काल में उन्होंने भी अपना ढंग बदला और फुटकर रचनाओं के अतिरिक्त राजरूपक, सूरजप्रकाश इत्यादि कई ऐसे प्रशंसनीय ग्रन्थों का निर्माण किया जो इतिहास की दृष्टि से महत्व पूर्ण और सुपाठ्य हैं।

सारांश, भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से इस काल में राजस्थानी साहित्य की सौन्दर्य वृद्धि हुई और इस आधार पर यदि इस युग को राजस्थानी साहित्य का 'सुवर्ण काल' भी कह दिया जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

ये जोधपुर के महाराजा गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६८३ की माघ सुदि ४ को बुरहानपुर (दक्षिण) में हुआ था। इतिहास

जसवतसिंह

प्रसिद्ध अमरसिंह राठौड, जिन्होने बादशाह शाहजहाँ की भरी सभा मे बख्शी सलाबतखॉ को मारा था, इनके बडे भाई थे। स्वेच्छाचारी एवं उद्धत प्रकृति होने के कारण महाराजा गजसिंह ने अमरसिंह को देश निकाला दे दिया था। इसलिए उनके बाद जसवतसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के समय इनकी अवस्था १२ वर्ष की थी। अतः बादशाह शाहजहॉ ने शाही मनसबदार आसोप के ठाकुर कूँपावत राजसिंह को इनकी शिक्षा तथा मारवाड की देख-भाल के लिए नियुक्त किया। जसवतसिंह बडे वीर, साहसी और रणकुशल व्यक्ति थे। मुगल सिंहासन को प्राप्त करने के लिए जब शाहजहॉ के पुत्रो मे झगड़ा हुआ, इन्होंने सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र दारा का पक्ष लिया था। क्योकि राज्य का वास्तविक अधिकारी वही था। इसलिए औरङ्गजेब इनसे बहुत कुढता था। इनका बिगाड़ तो वह कुछ न सका, पर अपने राज्य से दूर रखने के लिए उसने इन्हे काबुल का गवर्नर बनाकर उधर भेज दिया। वहीं स०१७३५ की पोष वदि १० को इन्होंने अपनी देह-लीला समाप्त की। इनकी मृत्यु का समाचार जब औरङ्गजेब के पास पहुँचा तब उसके आनद का पारावार न रहा और हर्ष से उछलकर उसने कहा

"दर्वाजए कुफ्र शिकस्त"[1]

महाराजा जसवन्तसिंह का साहित्यिक जीवन उनके ऐतिहासिक और राजनैतिक जीवन से किसी अश मे कम महत्वपूर्ण न था। ये डिंगल-पिंगल के पूर्ण ज्ञाता एव मर्मज्ञ कवि थे और कवियो तथा विद्वानो का बहुत आदर करते थे। इनके रचे भाषा-ग्रथो के नाम ये हैं —

(१) भाषाभूषण (२) सिद्धान्तबोध (३) सिद्धान्तसार (४) अनुभवप्रकाश (५) अपरोक्षसिद्धान्त (६) आनदविलास (७) चद्र-प्रबोध (नाटक) २ (८) पूर्ली जसवन्त सवाद और (९) इच्छा-विवेक।

जसवन्तसिंह हिन्दी साहित्य मे अलकारो के एक विशिष्ट आचार्य समझे जाते है। यही एक ऐसे महाशय थे जो यथार्थ मे आचार्य रूप से साहित्य क्षेत्र मे आए। इनके तत्वज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ विशेष लोकप्रिय नहीं हैं, परन्तु भाषाभूषण का काव्य-प्रेमियो मे बडा आदर है। यह ग्रन्थ जयदेवकृत चन्द्रालोक की छाया तथा शैली पर लिखा गया है। पर कवि ने अपने

---

१ आज धर्म-विरोध का दरवाजा टूट गया।

२ यह संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नामक नाटकका अनुवाद है

रहे थे। ये जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे जिनकी ओर से प्रति दोहे पर इन्हे एक अशरफी मिला करती थी। इनका देहान्त स० १७२० मे हुआ था।

अपने जीवन-काल में बिहारीलाल ने सिर्फ एक ही ग्रन्थ, बिहारी सतसई, बनाया जो हिन्दी साहित्य की स्थायी सपत्ति और काव्यकला का उत्कृष्ट नमूना माना जाता है। यह एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी मे हो सकता है कि इस पर ६० के लगभग टीकाएँ तो बन चुकी हैं और फिर भी यह क्रम जारी है। इसमे ७१३ दोहे हैं। इसकी भाषा ब्रजभाषा है जो बहुत ललित, प्रौढ एव परिमार्जित है। बिहारी की कविता का मुख्य विषय है, शृगार। परन्तु नीति, भक्ति इत्यादि अन्य विषयों पर भी इन्होने कुछ कहा है और बहुत अच्छे ढग से कहा है। अपूर्व काव्य-कौशल और अद्वितीय माधुर्य्य बिहारी की कविता के प्रधान गुण हैं। और गहरी तो वह इतनी है कि ज्यो-ज्यो हम उसकी गहराई की थाह लेने की कोशिश करते हैं वह अधिकाधिक गहरी होती जाती है। विशेषकर नायक-नायिकाओं के मनोभावों का विश्लेषण करने मे बिहारी ने कमाल कर दिया है। इस फन मे अग्रेज कवि शेक्सपियर बहुत निपुण समझे गए हैं। अतः उनकी तुलना मे बिहारी का काव्य-चमत्कार देखिए—

रोज़ेलिंड की सखी सीलिया उसके प्रेम-पात्र ऑरलेंडो से मिलकर वापस आती है। उस समय प्रिय-सदेश के सुनने मे आतुर रोजेलिंड पागल-सी हो जाती है और सीलिया से कहती है कि यदि नायक से मिलने के सब समाचार उसने फौरन ही न कहे तो वह उससे इतने प्रश्न करेगी कि जिनसे सारा उत्तरी सागर भर जायगा। पर उसकी उत्सुकता को बढाने के लिए सीलिया फिर भी मौन ही रहती है। इस पर रोजेलिंड प्रश्नो की झडी लगा देती है—

"what did he when thou saw'st him? What said he? Wherein went he? What makes he here? Did he ask for me? Where remains he? How parted he with thee? And when shalt thou see him again? Answer me in one word'[3]

---

[3] As you Like It · Act III, Sc. II

ऐसी ही दुविधावस्था में बिहारी की नायिका भी है। नायिका, राधा, की सहेली कृष्ण से मिलकर घर आती है। इस पर बिहारीलाल लिखते हैं—

फिरि फिरि बूझति कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यों बात॥

प्रसंग दोनों का एक है। बिहारी की तरह शेक्सपियर ने भी स्त्री-हृदय के उस स्थल पर हाथ डाला है जो सबसे कमजोर है, पर जिस समय रोजेलिंड के मुँह से शेक्सपियर प्रश्न करवाते हैं उनकी कल्पना-शक्ति कुन्द हो जाती है और उनकी कलम से कुछ ऐसे प्रश्न निकलते हैं जिनमें रस चमत्कार, वाक्-विदग्धता आदि कुछ भी नहीं है। वस्तुतः शेक्सपियर के ये प्रश्न परीक्षा पत्र में दिए हुए प्रश्नों के सदृश जटिल और शुष्क प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत बिहारी नारी-हृदय को खोलकर बाहर निकल आते हैं और सारी बात को बहुत संक्षिप्त, परन्तु हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिसमें व्यंग्य है, व्यंजना है, और है मार्मिक भाव। निःसन्देह अंगरेज कवि के प्रश्न संख्या में अधिक हैं। पर सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न को तो वे फिर भी भूल ही गए हैं जिसका उल्लेख बिहारी ने अपने दोहे के अन्तिम चरण में किया है 'अली चली क्यों बात'। हे सखी! मेरी बात चली कैसे? मेरा प्रसंग आया क्यों? सच पूछिए तो यही कवि-हृदय की मार्मिक अनुभूति है, काव्य कौशल की अन्तिम सीमा है।

सतसई के अतिरिक्त बिहारी के रचे तीन कवित्त भी हाल ही में उपलब्ध हुए हैं। सतसई में से कुछ दोहे और ये तीनों कवित्त यहाँ दिए जाते हैं—

दोहा

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परे, स्यामु हरित-दुति होइ॥१॥
अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन कैं संग॥२॥
बेधक अनियारे नयन, बेधत करि न निषेधु।
बरबट बेधत मो हियौ, तो नासा कौ बेधु॥३॥
मोहू न नैननु कौ कछू, उपजी बड़ी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ॥४॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली हीं सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल ॥५॥
कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पटु, कहूँ मुकुट बनमाल ॥६॥
हौं ही बौरी बिरह-बस, कै बौरौ सब गाँव।
कहा जानि ए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नाँव ॥७॥
सुनत पथिक-मुँह माह निसि, चलति लुवैं उहिं गाम।
बिनु बूझै बिनु ही कहैं, जियति बिचारी बाम ॥८॥
स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराएँ पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि ॥९॥
दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं, दई नई यह रीति ॥१०॥
वे न इहाँ नागर बढ़ी, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गवँई गाँव गुलाब ॥११॥
बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ ॥१२॥
बिरह-जरी लखि जीगननु, कह्यौ न उहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी, बरसत आजु अँगार ॥१३॥
पटु पाँखै भखु काँकरे, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं, एकै तुहीं विहंग ॥१४॥
चाह भरी अति रस भरी, विरह भरी सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुनु के, चले पौरि लौं जात ॥१५॥
कर लै सूँघि सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध गुलाब कौ, गँवई गाहकु कौनु ॥१६॥
कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ॥१७॥
अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान ॥१८॥

कवित्त

महाराजा मानसिंह पूरब पठान मार
श्रोणित की सरिता अजौं न सिमटति है।

जान अरबी, फारसी, सस्कृत आदि भाषाओ के सुज्ञाता, अच्छे इतिहासज्ञ और आशु कवि थे। इन्होंने कुल ७५ ग्रथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

(१) मदनविनोद (२) ज्ञान दीप (३) रसमजरी (४) अलफखाँ की पैडी (५) कायम रासो (६) पुहुप बरखा (७) कवलावती कथा (८) बरवा ग्रथ (९) छाबे सागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूपमजरी (१३) मोहनी (१४) चदसेन राजा सीलनिधान की कथा (१५) अरदेसर पाति साह की कथा (१६) कामरानी या पीतमदास की कथा (१७) पाहन परिच्छा (१८) शृगार शतक (१९) भाव शतक (२०) विरह शतक (२१) बलूकिया बिरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलदर की (२४) कथा निर्मल की (२५) सतवती की कथा (२६) शीलवती की कथा (२७) कुलवती की कथा (२८) खिजरखाँ साहिजादा व देवल देवी (२९) कनकावती की कथा (३०) कौतूहली की कथा (३१) कथा सुभटराय की (३२) बुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतन नामा (३५) सिख ग्रथ (३६) सुधा सिख ग्रथ (३७) बुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) घूघट नामा (४०) दरसनामा (४१) अलक नामा (४२) दरसन नामा (४३) बारह मासा (४४) मत नामा (४५) बर्न नामा (४६) चौंटी नामा (४७) बाज नामा (४८) कबूतर नामा (४९) गूढ ग्रथ (५०) देसावली (५१) रस कोप (५२) उत्तम सब्द (५३) सिख्या सागर (५४) वैद्यक सिख शतपद (५५) शृगार तिलक (५६) प्रेमसागर (५७) वियोग सागर (५८) षट् ऋतु पवगम छद (५९) रस तरगिनी (६०) रतन मजरी (६१) नल-दमयती (६२) पेमनामा (६३) मानविनोद (६४) विरही को मनोरथ (६५) जफरनामा (६६) पट नामा (६७) भाव कल्लोल (६८) कंदर्प कल्लोल (६९) नाम माला —अनेकार्थी (७०) रतनावती (७१) सुधासागर (७२) श्वास सग्रह (७३) लैला मजनू (७४) कविवल्लभ (७५) वैदक मति।

जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे हैं। इसलिए इनकी रचना मे शृगार-रस का प्राधान्य है। इनकी भाषा पिगल है। कविता सरस और भाव-पूर्ण है। उदाहरण—

> नात कह्यो हौ बिदेस को जैहो सुने तिय को उपज्यो दुखु भारो।
> झाकि रही नभ ओरि क्रिसोदरी हा हा दई कीर हो जिन न्यारो॥
> हारि परी गई कुज लता गधि बोलि है कोकिल की उनिहारो।
> गोन निवारन कौ कियौ कारन जानि अगत रहै जिन प्यारो॥

पेजी साइज के एक हजार से अधिक पृष्ठों का बहुत बड़ा ग्रथ है। इसमें राजस्थान के विभिन्न राज्यों के इतिहास के अतिरिक्त गुजरात, काठियावाड़ कच्छ, बघेलखड, बुदेलखड और मध्य भारत के इतिहास पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। इनका दूसरा ग्रथ जोधपुर राज्य का गजेटियर है। इसमे जोधपुर राज्य के परगनों का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। ये दोनों ग्रथ इतिहास के अमूल्य रत्न और अपने रग ढग के अप्रतिम हैं।

उच्च कोटि के इतिहासज्ञ होने के साथ-साथ नैणसी डिंगल भाषा के सिद्धहस्त गद्य लेखक भी थे यह बात इनकी उक्त रचनाओं से साफ झलकती है। इनकी भाषा बहुत सरल, परिमार्जित और चलती हुई है। वर्णन-शैली सुगठित एव रोचक है। नमूने के तौर पर इनकी ख्यात मे से थोड़ा-सा अश यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"डूगरपुर सहर, ता उगवण नै दिपण बेउ तरफ भाखर छै। खोहल माहे सहर मगरा री खभ बसीयो छै। छोटो-सो कोट छै। उठै रावळ रा घर छै। गाँव माहे देहुरा घणा छै। चोहटा घणा पिण हाटे उसडी पीठ को नहीं। डूगरपुर थी उत्तर दिस नु रावळ पूजा रौ करायौ गोवं-रधननाथ रौ बड़ो देहरो छै। गाँव सूँ ईसान कूँण मै रावळ गैपा रौ करायौ बड़ो तळाब छै। सहर रै पाछै भाखर छै। सिकार रौ आहुखाँनो पिण उण हीज भाखर ऊपर छै। घणी दूर आहूखानै रै वास्तै भीत छै। सहर सूँ कोस पूण मैं गाँगड़ी नदी छे। तिण रै टाहै रावळ पूजा रौ करायौ बड़ो राज-बाग छै"।[५]

नरहरिदास

ये रोहड़िया शाखा के चारण लक्खाजी के पुत्र थे। इनका जन्म स १६४८ और देहान्त स० १७३३ मे हुआ था। ये जोधपुर नरेश महाराजा गजसिंह के आश्रित थे जिन्होंने इन्हे टहला नामक गाँव प्रदान किया था। ये दो भाई थे। छोटे भाई का नाम गिर-धर दास था। इनके कोई सन्तान नहीं थी। इस सम्बन्ध मे इनकी भावज ने इन्हें एक दिन जब ताना दिया तब क्रुद्ध होकर इन्होंने उससे कहा कि सन्तान तो मेरे नहीं हैं जिससे मेरे मरने के पश्चात मेरे वश का नाम दुनियाँ मे रह सके, पर

५—उगवण नै दिपण=पूरब और दक्खिन। बेउ=दोनों। भाखर=पहाड़। खोहल माहे=बीच मे। मगरा=पर्वत। खभ=ढालू। उसटी=वैसी, उतनी। पीठ=व्यापार। आहूखानो=शिकारगाह। उण हीज=उसी। भीत=दीवार। पूण=पौन। टाहै=तट पर। घणा=बहुत

विधाताने मुझे कविता करने की अलौकिक शक्ति प्रदान की है जिसके द्वारा मैं अपने नाम को सदैव के लिए संसार में अमर कर दूँगा। इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए इन्होंने 'अवतार-चरित्र' की रचना की, जिससे अभी तक इनका नाम चला आता है।

अवतार चरित्र ज्ञान सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हो चुका है, जो बहुत अशुद्ध है। इसमें ५२० पृष्ठ हैं। इनमें ३२० पृष्ठों में रामावतार का और शेष में कृष्णावतार, कपिलावतार, बुद्धावतार आदि का संक्षिप्त वर्णन है। ग्रंथ की भाषा पिंगल है जो बहुत सरल एवं व्यवस्थित है। कथा-प्रसंग के अनुकूल छंदों को चुनने में भी कवि ने अच्छी पटुता प्रदर्शित की है, पर नरहरिदास के भावों में मौलिकता का प्रायः अभाव सा है। मालूम होता है, तुलसी के रामचरित मानस तथा केशव की रामचन्द्रिका को सामने रखकर कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है। क्या रचना-पद्धति, क्या घटनाक्रम, क्या भावव्यंजना और क्या उक्ति-चमत्कार सभी रामचरित मानस से मिलते-जुलते हैं। जहाँ कहीं रामचरित मानस से विभिन्नता है, वहाँ केशव की रामचन्द्रिका का अनुकरण किया गया है।

चाप चढ़ावन को गने, सके न अवनि छुड़ाइ।
भई उर्व्वी निर्वी अब, कह्यौ जनक अकुलाइ॥
जो जानत निर्वीर भुव, तो न करत पन एह।
पावक प्रजलत गेह अब, तब कहँ खनत गेह॥
रही कुँवारी कन्यका, लिखत बिरंचि ललार।
पन छीनौं जो परिहरौं, तौ उपहास संसार॥

—अवतार चरित्र

रहा चढ़ाउब तोरब भाई, तिल भरि भूमि न सकै छुड़ाई॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी, बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू, लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू
सुकृत जाइ जो प्रण परिहरऊँ, कुँवरि कुँआरि रहै का करऊँ
जो जनतेऊँ बिन भट महि भाई, तो प्रण करि करतेऊँ न हँसाई॥

—रामचरित मानस

कहि पूछत सुभ मुद्रिका, होत मौन रहि दैन।
नाम सिपजीन आपने, तिहि उत्तर नहिं दैन॥

—अवतार चरित्र

तुम पूछत कहि मुद्रिकै, मौन होत यहि नाम ।
ककन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम ।

—राम चन्द्रिका

कहते हैं कि अवतार-चरित्र के अतिरिक्त नरहरिदास ने १६-१७ ग्रंथ और भी बनाए थे पर उन सब का पता नहीं लगता । केवल नीचे लिखे छह ग्रन्थों के नामों का पता है—

(१) दशम स्कन्ध भाषा (२) रामचरित्र कथा (३) अहिल्या पूर्व प्रसग (४) वाणी (५) नरसिंह अवतार कथा (६) अमरसिंहजी रा दूहा । इनकी कविता देखिए:—

जा दिन आन उपाइ थकै सब, ता दिन भाइ सहाइ करैगो ।
शोक अलोक बिलोकि त्रिलोक, रह्यो भव पूरसु दूरि टरैगो ।।
जैसे चढै गजराज की पीठि, त्यौं कूकर वादि हिं भूमि मरैगो ।
जौं करुणामय स्याम कृपा तो, कहा जग की अकृपा बिगरैगो ।।

कटक कपूर भए कौतुक भयानक से,
हार अहि भए ॲवियार भयो आरसौ ।
नाहर से नूपुर पहार से पहर भए
सेज समसान भए, भूखन सुभारसौ ।।
आक सो तवार सिरवाइ सी सुवास सबै,
चीर भए कोछी से, अजन अगार सौ ।
विपति दुसह ऐसी कपि अवधेस विना
प्रान भए पाहुनैं से प्रेम भौ प्रहार सौ ।।

कल्याणदास

कल्याणदास रचित 'गुण गोविंद' नामक एक ग्रंथ का पता हाल ही मे लगा है । इसके अन्तिम दोहे मे इन्होंने थोड़ा-सा अपना व्यक्तिगत परिचय भी दिया है जिससे सूचित होता है कि ये मेवाड़ राज्य के समेळा गाँव के निवासी लाखणोत शाखा के भाट बाघजी के बेटे थे—

वास समेळे बाघ तणा, लाखणोत कालियाण ।
गायौ श्री गोविंद गुण, पाए भगत प्रमाण ।।

गुण-गोविंद डिंगल भाषा का ग्रंथ है । सं० १७२५ की लिखी हुई इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती भडार मे सुरक्षित है । ग्रंथ स० १७०० मे रचा गया था—

धरा कप जळ उमँग गैत्र अबर फिर गाजै।
बिन घन पवन अकास भानु ससि कुडल राजै॥
यहु गर्ग रिषि कै वचन सुनि पडित व्है सो उर धरै।
उल्लकापात जो एक हुव सरब धान सग्रह करौ॥

डूँगरसी ये बूदी राज्य- निवासी जाति के राव थे। इनका रचना-काल स०१७१० के लगभग है। ये बूदी के राव राजा शत्रुसाल के आश्रित थे। उन्होंने इन्हे नैनवा नामक एक गाँव प्रदान किया था जो अभी तक इनके वंशवालों के अधिकार में है। इन्होंने 'शत्रुसाल रासौ' नामक ग्रथ बनाया जिसमे शत्रुसाल के राज्य-वैभव, शौर्य-पराक्रम, इत्यदि का सविस्तर वर्णन है। लगभग ५०० छदों का यह एक भारी ग्रथ है। इसकी भाषा-शैली चद कृत पृथ्वीराज रासौ से मिलती-जुलती है। उदाहरण—

वजै चग बाजिया अनग सारग भणकै।
उडै गुलाल रँग अमर, लाल लज्जा अवसकै॥
श्रम अबीर त्रीविध, समीर जुध नीर सजै गति।
समै वाज सुर पँचम, रग अंबुज पराग अति॥
वन फूलि भूलि कसलै ललित कुरग रति आरति करै।
राजाधिराज सत्रुसाल रमै, वारै मध्य वसंत रै।

जग्गाजी ये खिड़िया शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम रतनाजी था। इनकी जन्म भूमि आदि का ठीक-ठीक पता नहीं है। इनके वंशज आज-कल सामलखेड़ा गाँव में रहते हैं जो सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत है। इन्होने सं० १७१५ के लगभग 'वच-निका राठौड रतनसिंहजी री महेसदासोतरी' नामक एक ग्रंथ बनाया जिसका दूसरा नाम 'रतन रासौ' है। यह ग्रथ बगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित भी हो चुका है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह और मुगल सम्राट शाहजहाँ के विद्रोही पुत्र औरगजेब तथा मुराद के बीच मे उज्जैन के रण-क्षेत्र पर स० १७१५ का युद्ध वर्णित है। इस लड़ाई में रतलाम के राठौड़ राजा रतनसिंह बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए काम आए थे। इसलिए उन्हीं के नाम से ग्रन्थ का नामकरण हुआ। यह एक वीर रस प्रधान ग्रन्थ है। इसकी भाषा डिंगल है। इसमे गद्य और पद्य दोनों हैं। ग्रथ साहित्य-रसिकों एव इतिहास-प्रेमियों दोनो के काम का है।

गिरधर

ये मेवाड-निवासी आशिया शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल सं० १७२० के लगभग है। इन्होंने "सगतसिङ्घ रासौ" नाम का एक ग्रथ बनाया जिसमें प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्तिसिंह का चरित्र-वर्णन है। दोहा भुजगी, कवित्त आदि कुल मिलाकर कोई ५०० छदों मे ग्रन्थ समाप्त हुआ। इसकी भाषा डिंगल है। रचना प्रौढ और इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है। उदाहरण—

ऊदळ रायौ एक दिन, सभ पूछियौ स कोइ।
अणी सिरै कर आहयौ, हूसरै हूं सोइ ॥१॥
मैंगळ मैंगळ सारिपौ, सीह सारिपौ सीह।
सगतौ उदियासिंघ तण, अग पित जिसौ अबीह ॥२॥
चख रत्तै मुख रत्तडौ, वैस जिहि कुळ वग्ग।
सगतै जमदड्ढा सिरै, आफाळियौ करग्ग ॥३॥
कियौ हुकुम न काणि की, ए वट एह अवट्ट।
ऊदळ राण कमखीयौ, पह दी सीख प्रगट्ट ॥४॥
पिता हुकुम लिखियौ परम, अंग अहकार अथाह।
सगतौ उदियासिंघ तण, सु बसीयौ पतसाह[७] ॥५॥

जोगीदास

ये प्रतापगढ़ राज्य के महारावत हरिसिंह के आश्रित कवि जाति के चारण थे। इनके रचे हरिपिंगल-प्रबन्ध नामक एक बहुत उच्च कोटि के ग्रथ का पता हाल ही मे लगा है यह स०१७२१ मे लिखा गया था। रचना काल का दोहा यह है—

सवत सतर इकवीस में, कातिक सुभ पख चंद।
हरिपिंगल हरिअद जस, वणियौ खीरसंमद ॥

यह छंद-शास्त्र का ग्रथ है। इसकी भाषा डिंगल है। इसमें सस्कृत, हिंदी और डिंगल मे प्रयुक्त मुख्य-मुख्य छन्दों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन है। ग्रथ तीन परिच्छेदो में बॅटा हुआ है। अन्तिम परिच्छेद के अधिकाश में

७— अणी = कटारी। ऊदल = उदयसिंह। आहणे = चोट कर। सभ = सभा। मैगल = हाथी। सारिपौ = समान। तण = तनय। अग = पहाड। अबीह = निडर। आफालियौ = मारा। काणि = मर्यादा। कमखीयौ = रुष्ट हुआ। वट = मार्ग, प्रण।

जोगीदास ने अपने आश्रयदाता महारावत हरिसिंह के वंश-गौरव का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है जो वास्तविक और उपादेय है। साहित्य एवं इतिहास दोनों ही दृष्टियों से यह एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रन्थ है। भाषा-रचना इस ढंग की है—

> वाणी नेम उच्चारवा, मैं मन कीधो पेस।
> ताकीदा लोटे न की गज भ्रमता देस॥
> इगमत सहजे दाकियाँ, गौ लोपे महराण।
> न की न कूदे दादरी, हत्थ-बेहत्थ प्रमाण॥
> गणी गज-मोताहळ, वीह मंडे सगणगार।
> की भीली भाले नहीं, गळ गुजाहळ हार[८]॥

ये जैन कवि गोजल नगर के निवासी थे। इनके गुरु का नाम कल्याणलाभ था। इन्होंने तीन ग्रन्थ बनाए : राठोड़ पृथ्वीराज कृत

कुशल धीर 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की टीका (सं० १६९६), केशवदास कृत रसिकप्रिया की टीका (सं० १७२७), और लीलावती रास (सं० १७२८)। प्रथम दो ग्रंथ गद्य में और तीसरा पद्य में है। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। रचना से ऊँची प्रतिभा और विद्वत्ता झलकती है। इनके गद्य का थोड़ा-सा अंश यहाँ दिया जाता है—

"हिव रुक्मिणी माता नउ कथा प्रसंग कहइ। दक्षिण दिसि विदर्भ नामा देस दीपइ। तीयइ देस विषइ कुंदणपुर नामइ पुर नगर अत्यन्त मनोहर पणइ शोभइ। तिणि नगर विषइ भीषमक एह राजा राज करइ। जेहवउ इन्द्र राजान करइ। अरि कहता नागलोक। नर, मनुष्य-लोक। असुर, राक्षस लोक। सुर, देवलोक। तीयां माहि यशाइ करी। शिरिहिं मुगट समान सर्व राजा माहि॥"

ये कुलपति मिश्र माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम परशुराम था। ये जयपुर के राजकवि थे। इनका रचना-काल सं० १७२४-४३

कुलपति है। कहा जाता है कि इन्होंने कुल पचास ग्रन्थ बनाए थे, परन्तु इन सब का पता नहीं लगता। केवल नीचे लिखे हुए ग्रंथ मिलते हैं—

८—जगमाल, जग हमीर... [illegible]

(१) रस रहस्य (२) दुर्गाभक्ति चद्रिका (३) द्रोण पर्व (४) गुण रस रहस्य (५) सग्राम सार (६) मुक्ति तरंगिणी (७) नखशिख (८) दुर्गा सप्तसती का अनुवाद (६) मरूप करूप वाद (१०) आसाम की वाढ़ (११) विप-अमृत का झगडा (१२) मेवा की वाद (१३) सतसई।

कुलपति बहुत उच्च कोटि के कवि थे। इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिस पर इनका असाधारण अधिकार था। इनकी कविता ललित, कलापूर्ण और प्रासाद गुण युक्त है। उदाहरण देखिए—

दान बिन धनी सनमान बिन गुनी ऐसे
विप बिन फनी अनी सूर न सहत है।
मंत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे
लाज बिन कामिनि के गुननि कहत हैं।
वेद बिन यज्ञ जप जोग मन बस बिन
ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निवहत है।
चद बिन निशा प्राण प्यारी अनुराग बिन
सील बिन लोचन ज्यो सोभा को लहत हैं।

मानजी

इनका पूरा नाम मानसिंह था। ये विजयगच्छीय जैन यति थे। इनका सम्पर्क मेवाड़ के राजवंश से था। अत. सभव है कि ये मेवाड-निवासी हो। परन्तु इस विपय मे ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। कविराजा बॉकीदास के 'वात सग्रह' मे एक स्थान पर इनका उल्लेख आया है ."मानजी जती राज-विलास नाव रूपक राणा राजसिंह रो बणायौ।" इनका कविता-काल स० १७३४-४० है। इनके लिखे दो ग्रथ प्रसिद्ध हैं राज-विलास और बिहारी-सतसई की टीका।

राज-विलास का प्रारम्भ सं० १७३४ मे और समाप्ति उसकी स० १७३७-३८ मे हुई थी। इसकी प्राचीनतम प्रति उदयपुर के राजकोय पुस्तकालय मे सुरक्षित है जो स० १७४६ की लिखी हुई है। राज-विलास एक वीर रस प्रधान काव्य है। यह अठारह विलासो मे विभक्त है। इसकी भाषा पिंगल है। इसमे मेवाड़ के महाराणा राजसिंह का जीवन-इतिहास वर्णित है। ग्रथ के आदि मे सीसोदिया वश का सक्षिप्त इतिवृत्त दिया गया है। मुख्य कथा महाराणा राजसिंह के राज्यारोहण (स० १७०६) से प्रारम्भ होती है। ग्रन्थ मे महाराणा राजसिंह के समय की प्राय. सभी मुख्य-मुख्य घटनाओं का

वृन्द

जहाँ स० १७०० में इनका जन्म हुआ था।[१०] इनकी माता का नाम कौशल्या और पत्नी का नवरंगदे था। वृन्द जब दस वर्ष के थे तब इनके पिता ने इनको विद्याध्ययन के लिए काशी भेज दिया। वहाँ ताराजी नामक एक पंडित के पास रहकर इन्होंने साहित्य, वेदान्त आदि अनेकानेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया और कविता करना भी सीखा। काशी से लौटकर जब ये अपने जन्म-स्थान मेड़ते गए तब वहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने कुछ भूमि पुण्यार्थ देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। महाराजा जसवन्तसिंह ने इनका परिचय बादशाह औरंगजेब के कृपापात्र वजीर नवाब मुहम्मदखाँ से भी करवा दिया, जिससे आगे चलकर इनका शाही दरबार में प्रवेश हो गया।

कहते हैं कि पहले-पहल जिस समय नवाब मुहम्मद खाँ वृन्द को शाही दरबार में ले गया उस समय इनकी परीक्षा लेने के लिए औरंगजेब ने इन्हें यह समस्या दी—

"पयोनिधि पैर्यो चाहै मिसरी की पुतरी"

वृन्द ने फौरन ईश-महिमा विषयक यह कविता रचकर सुनाई—

पूरन परम परब्रह्म को भरोसो धारि
सुर मुनि साख जिन डोलैं इत उत री।
थिरचर जीवन की जीवन की वृत्ति जाके
नाहीं सू रुचि रुचि राच प्रीत जुत री॥
वृन्द कहै साहिब समरत्थ सब बातन में
उनकी कृपा तें ऐसी बात अद्भुत री।
पगु गिरि गाहैं मूक निगम निबाहै क्यौं न
पयोनिधि पैरयो चाहै मिसरी की पुतरी

परन्तु बादशाह को यह कविता कुछ कम पसंद आई। इसलिए वृन्द ने उसकी पूर्ति दूसरी तरह से फिर की—

कुम्भज करूर ता की कठिन करूर दीठ
देखि कै डरानो न हलानो इत उत री।

१०. मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म सं० १७४२ माना है और श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'कविता-कौमुदी' में इनका जन्म सं० १७३४ लिखा है। यह दोनों ही गलत हैं।

उससे वृन्द की कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। ज्ञान, नीति तथा. उपदेश सम्बन्धी विचारों को वृन्द ने ऐसे मन-मोहक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से चित्रित किया है कि वे तुरन्त पाठक के हृदय में घर कर लेते हैं। प्रसाद गुण की बहुलता होने से साधारण पढ़े-लिखे लोग भी इन दोहों का मर्म समझ लेते हैं और स्थान-स्थान पर उद्धृत कर अपने पक्ष एवं प्रसंग, का समर्थन करते हैं। दोहे लोकोक्तियाँ बन गई हैं। हिन्दी साहित्य में अधुना सात-आठ सतसइयाँ प्रचलित हैं। काव्य-प्रेमियों में सभी का यथेष्ट सम्मान भी है। परन्तु सर्वप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो विहारी सतसई के अनन्तर वृन्द सतसई ही उत्कृष्ट रचना ठहरती है।

(२) यमक सतसई—इसमें सातसौ दोहे हैं। वृन्द सतसई में कवि ने भाव प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान रखा है। पर इसकी रचना उन्होंने कविता के कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों को सामने रख कर की है। यमक अलंकार की छटा एवं भाव और भाषा का सामंजस्य देखते ही बनता है।

(३) भाव पञ्चाशिका—पच्चीस दोहे और पच्चीस सवैयों के इस छोटे ग्रन्थ की रचना सं० १७४३ में औरङ्गाबाद में हुई थी। इसमें मनोभावों का बहुत ही चमत्कारपूर्ण वर्णन है।यद्यपि यह ग्रंथ छोटा है तथापि इसकी रचना बहुत ही सरस, और हृदय-ग्राहिणी है और वृन्द की भावुकता का परिचय देती है। भाषा भी इसकी बहुत परिमार्जित, प्रौढ़ और श्रुति-मधुर है। इसकी रचना के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है। जब वृन्द औरंगाबाद में थे तब वहाँ पर किसी काव्य-प्रेमी सज्जन ने कवियों की एक सभा की और वृन्द को भी उसमें सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण दिया। जिस समय सब लोग इकट्ठे हो गए, वहाँ यह प्रश्न उठा कि इस सभा में सब से अच्छा कवि कौन है और आज कौन इसका सभापति बनाया जाय। बड़ी देर तक बहस हुई। जब कुछ भी तय न हो सका तब उस सज्जन ने कहा कि जो आज रात में सब से अच्छी कविता करके लाएगा वही कवि-शिरोमणि समझा जाएगा। रात भर में वृन्द ने यह ग्रंथ बनाया और प्रातः काल होते ही सबों के सामने जाकर पढ़ा। वृन्द की कविता के सामने किसी दूसरे कवि का रंग न जमा और यही बहु मत से सर्वोत्कृष्ट कवि माने गए। वृन्द के शिष्य किशनगढ़ के मीर मुन्शी माधौदास ने भी अपने 'शक्ति भक्ति प्रकाश' में इस घटना की ओर संकेत किया है:—

ने ऐसा मौलिक, ओजपूर्ण और लोमहर्षण वर्णन किया है कि पढ़ते ही भुजाएँ फड़कने लगती हैं।

(६) सत्यस्वरूप—यह ग्रथ स० १७६४ मे बना था। यह वृन्द की अतिम रचना है। इसमे बादशाह औरगजेब के मरने पर दिल्ली के तख्त के लिए शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह), आजम, कामबख्श आदि की लड़ाई का वर्णन है। इस युद्ध मे किशनगढ के महाराजा राजसिह बहादुरशाह की ओर से लड़े थे। उनके हाथ से आजमशाह के पक्ष के नवाब व राजा, महाराजा आदि लड़नेवालो के १७ हौदे खाली हुए जिनमे दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराव राजा रामसिह मुख्य थे। इस लड़ाई की विजय का सुयश राजसिह ही को मिला। इतिहास की लगाम को मानते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा से सत्यस्वरूप को एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रथ बना दिया है। भाषा, भाव, छन्द और शब्द-विन्यास, सभी का इसमे अपूर्व सम्मिलन है। विस्तार मे तो यह ग्रथ वचनिका से बडा है ही, साथ ही उसकी अपेक्षा इसकी कविता भी अधिक पुष्ट और भावमयी है।

ये इनके बड़े ग्रथ हैं। छोटे ग्रन्थो के नाम ये है: पवनपचीसी, समेत सिखर छन्द, हितोपदेशाष्टक, भारतकथा और हितोपदेश।

वृन्द-रचित पिगल और डिगल दोनो प्रकार की रचनाओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

दोहे

आप बरद वाहन बरद, कर त्रिसूल हर सूल।
अहितन अहितन हितनकर, सिव प्रभु सिव सुख मूल ॥
दीन बीनती दीन-प्रति, मानहु परम प्रवीन।
हम से अपराधीन को, करिये अपराधीन ॥
कुहुकि धूमि चूमै चुगै, रहै परेवी संग।
अरे परेवा काम को, तू सुख लेत विहग ॥
रह्यौ सबूरी साधि कै, चतुर परेवा जानि।
परी परेवी नीड दिव, कॉकर साकर मानि ॥
रागी औगुन ना गनत, यहै जगत की चाल।
देखो सब ही स्याम कूँ, कहत बाल सब लाल ॥
रस अनरस समझै न कछु, पढै प्रेम की गाथ।
बीछू मंत्र न जानही, साँपहि डारे हाथ ॥

वकारै हकारै हाथी भिड़ायै बरच्छी वाहै।
　　　　पछाड़ियौ हाडौ राम मान रै महीप ॥३॥
धसे जठी तठी घणा वैरिया विधूसै धींग।
　　　　चाचरा धपायै धरा रङ्गी घणू चोळ॥
पाड़ै घणा उमीरा हमीरा होदा विचाँ पाड़ै।
　　　　रूपहरै कीधी फतै वैरिया विरोळ[१२] ॥४॥

बादर ये जाति के ढाढी थे। इनका लिखा 'वीरमाण'* नामक डिंगल भाषा का एक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें मंडोवर के राव मल्लिनाथ के पुत्र जगमाल और उनके भतीजे वीरमजी की युद्ध-वीरता का वर्णन है। परन्तु,जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं, यह वीरमजी की समकालीन रचना नहीं है। कोई अठारहवीं शताब्दी के मध्य में यह रची गई है। इसके अधिक भाग में वीरमजी और जोइयों की उस लड़ाई का वृत्तान्त है जो सं० १४४७ के लगभग लखबेरा नामक स्थान में हुई थी और जिसमें वीरमजी बड़ी वीरता से लड़ते हुए काम आए थे।

१२— औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके बेटों-मुअज्जम आजम और कामबख्श में राजसिंहासन के लिए युद्ध हुआ जिसमें किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह ने मुअज्जम का और कोटा के महाराव रामसिंह ने आजम का पक्ष लिया। रामसिंह महाराजा राजसिंह द्वारा मारे भी गये थे। इस गीत में उसी युद्ध का वर्णन है।

छिड़ा के मुसलमान दिल्ली की तरफ धमचक मचा रहे हैं। सब सूरों ने चटकर कायरों के घरों को संभाल लिया है। भटाभट-धड़ाधड़ आवाज करती हुई बन्दूकें चल रही हैं जिससे पृथ्वी गूंजती है। तीर चल रहे हैं। तोपों से बड़े वेग के साथ गोले छूट रहे हैं। ॥१॥ बख्तरों की कड़ियां तड़ातड़ टूट रही हैं। धमाधम की आवाज के साथ भालों के भारी हार हो रहे हैं। तलवारों से भड़ाभड़ी भीक उड़ रही है। महाराजा राजसिंह राठौड़ तलवारों से खेल रहे हैं ॥२॥ प्रहारों से आजम की सेनाओं का दलनकर, जोरावरों को गिराकर, अजीमुश्शान (आजम का बेटा) की जीत की ललकार टकारकर हाथी भिड़ाये और फिर बरछी चलाकर महाराजा मानसिंह के बेटे राजसिंह ने हाडा रामसिंह को पछाड़ा ॥३॥ इधर-उधर घुसकर उस जबरदस्त ने वैरियों का विध्वंस किया। पृथ्वी को लाल रंग से खूब रंगकर नरमुंडों से तृप्त किया। बहुत अमीर-उमरावों को होदों में गिरा, वैरियों का नाश कर, रूपसिंह के वंशज (राजसिंह) ने विजय प्राप्त की ॥४॥

*वीरम + अयन = वीरम + अयण = वीरमायण = वीरमाण

प्रश्नोत्तरी के वर्णन में भी कवि ने अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता और काव्य-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है। उदाहरण —

> चढिकै तब राज निसान कियै, हय ऊपर पाखर डारि दियै।
> तब ही अँग सूरस कोच कसै, जमराज भयकर रूप जिसै॥
> जरि कै गज माखर साज बने, मनु पाय चले सु पहार घने।
> सजि कै सब तोपन अग्ग कियै, उडि खूरन धूरिन छाय गियै॥

ये मेवाड-निवासी जाति के राव थे। इनका पूरा नाम दयाराम था।

दयाल

इन्होंने राणारासौ नाम का एक ग्रन्थ बनाया जिसमें मेवाड का इतिहास वर्णित है। इसकी स० १६४४ की लिखी हुई एक प्रति मिली है जिसे स० १६७५ की हस्तलिखित प्रति की नक़ल बतलाया गया है[१४]। परन्तु यह बात मान्य नहीं है। क्योंकि इसके अन्तिम भाग मे महाराणा कर्णसिंह (स० १६७६-८४) का सविस्तर वृत्तान्त दिया हुआ है और प्रारम्भ मे महाराणा जगतसिंह (स० १६८४-१७०६), महाराणा राजसिंह (स० १७०६-३७), तथा महाराणा जयसिंह (स० १७३७-५५) का भी नामोल्लेख है जो सब स० १६७५ के बाद हुए हैं—.

> सीसोदा जगपति नृपति, ता सुत राजरू रान।
> तिनकै निरमल बस कौ, करयौ प्रससु बखान॥
> राजस्यघ कै पाट अब, बैठे जैस्यघ रान।
> बरा ब्रम्म अवतार ले, मनौं भान कै भान॥

साफ है कि ग्रंथ महाराणा जयसिंह के समय में स० १७३७ और स० १७५५ के बीच में किसी समय लिखा गया है। और मूल प्रति का लेखन-काल स० १६७५ जो बतलाया गया है वह ठीक नहीं है। शायद स० १७७५ के स्थान पर भूल से स० १६७५ लिखा गया है।

राणारासौ पिंगल भाषा का एक ऐतिहासिक काव्य है। इसकी रचना चारण- भाटों की प्रथाबद्ध रीति पर हुई है। सरस्वती और गणपति की वन्दना के पश्चात् कवि ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से लेकर महाराणा जयसिंह तक के मेवाड के राजाओं की वशावली दी है। बापा रावळ को एकलिङ्ग का पुत्र कहा गया है। बापा रावळ और अजयसिंह के बीच के राजाओं के नामों में से कुछ

१४—राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, (प्रथम भाग), पृ०, ११८

नागरीदास बड़े वीर और बहुत साहसी थे। दस वर्ष की उम्र में इन्होंने एक मतवाले हाथी को तलवार की एक चोट से विचलित कर दिया था और तेरह वर्ष की अवस्था में बूँदी के हाडा जैतसिंह को मारा था। इन्होंने दो अंगुल चौड़े बाढ़वाली नये ढंग की एक तलवार का आविष्कार किया था जिसे 'सावतशाही बाढ़' कहते हैं।

इनके पिता महाराजा राजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुखसिंह राजगद्दी का मोह छोड़कर साधु हो गए थे और द्वितीय पुत्र फतहसिंह का देहान्त पिता के जीवन-काल ही में हो गया था। इसलिए किशनगढ़ की राजगद्दी पर अब नागरीदास का हक पहुँचता था। परन्तु दैव-दुर्विपाक से एक दिन के लिए भी इन्हें राज्य-सुख भोगने का अवसर नहीं मिला। बात यह हुई कि सं० १८०५ में जब इनके पिता महाराजा राजसिंह का देहान्त हुआ तब ये दिल्ली में थे। वहीं बादशाह अहमदशाह ने इन्हें किशनगढ़ राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया। परन्तु इनकी अनुपस्थिति में इधर इनके छोटे भाई बहादुरसिंह किशनगढ़ के राजा बन बैठे। भाई के अनधिकार प्रयत्न की सूचना जब नागरीदास को दिल्ली में मिली तब एक महती सेना लेकर उनसे लड़ने के लिए ये किशनगढ़ आए। दोनों भाइयों की सेनाओं से भयंकर युद्ध और रक्तपात हुआ। परन्तु बहादुरसिंह की सेना ने इन्हें किशनगढ़ की सरहद में पाँव न रखने दिया। निराश होकर ये दिल्ली लौट गए और वहाँ से अपने राज्य को पुनः हस्तगत करने का उद्योग करते रहे। मुगल साम्राज्य के ढलते दिन थे और अहमदशाह की अवस्था उस समय अत्यंत दयनीय थी। इसलिए वह इन्हें यथेष्ट सहायता न दे सका। अतएव दिल्ली में अधिक दिनों तक रहना व्यर्थ समझ तथा मरहठों से सहायता प्राप्त करने की आशा से ये दक्षिण की ओर जाने को रवाना हुए। जब वृन्दावन पहुँचे तब वहाँ हरिदास नामक एक वैष्णव ने इन्हें कहा कि अब आपको राज्याधिकार प्राप्त हो ऐसा योग नहीं है और अवस्था भी आपकी पचास से ऊपर हो गई है। इसलिए सब झंझटों को छोड़कर भगवद्भजन करो और अपने कुँवर को राज्य-प्राप्ति के लिए उद्योग करने दो। यह सुनकर आप तो वहीं रह गए और अपने पुत्र सरदारसिंह को मरहठों की सेना देकर बहादुरसिंह के विरुद्ध लड़ने को भेजा। बहुत लड़ाई के बाद बहादुरसिंह ने किशनगढ़ का आधा राज्य सरदारसिंह को दे दिया, जिसमें सरवाड़, फतहगढ़ और रूपनगर ये तीनों परगने सम्मिलित थे। नागरीदास ने वृन्दावन से आकर आश्विन सुदी १० सं० १८१४ के दिन सरदारसिंह का राज्यतिलक किया।

(१) सिंगार सागर (२) गोपी प्रेम प्रकाश (३) पद प्रसगमाला (४) व्रज वैकुण्ठ तुला (५) व्रजसार (६) भोर लीला (७) प्रात रस मजरी (८) विहार चद्रिका (९) भोजनानन्दाष्टक (१०) जुगल रस माधुरी (११) फूल-विलास (१२) गोधन आगमन (१३) दोहन आनन्द (१४) लग्नाष्टक (१५) फागविलास (१६) ग्रीष्म बहार (१७) पावस पचीसी (१८) गोपीबैन विलास (१९) रास रसलता (२०) रैन रूप रस (२१) सीतसार (२२) इश्क चमन (२३) मजलिस मडन (२४) अरिलाष्टक (२५) सदा की मॉझ (२६) वर्षा ऋतु की मॉझ (२७) होरी की मॉझ (२८) कृष्ण जन्मोत्सव कवित्त (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त (३०) साँझी के कवित्त (३१) रास के कवित्त (३२) चॉदनी के कवित्त (३३) दिवारी के कवित्त (३४) गोवर्धन धारण के कवित्त (३५) होरी के कवित्त (३६) फाग गोकुलाष्टक (३७) हिंडोरा के कवित्त (३८) वर्षा के कवित्त (३९) भक्त मग दीपिका (४०) तीर्थानन्द (४१) फाग विहार (४२) बाल विनोद (४३) सुजनानन्द (४४) वन विनोद (४५) भक्तिसार (४६) देहदशा (४७) वैरागवल्लरी (४८) रसिक रत्नावली (४९) कलि वैराग वल्लरी (५०) अरिल्ल पचीसी (५१) छूटक विधि (५२) परायण विधि प्रकाश (५३) शिखनख (५४) नखशिख (५५) छूटक कवित्त (५६) चरचारियाँ (५७) रखता (५८) मनोरथ मजरी (५९) राम चरित माला (६०) पद प्रबोध माला (६१) जुगल भक्ति विनोद (६२) रसानुक्रम के दोहे (६३) शरद की साँझ (६४) साझी फूल बानन समत सवाद (६५) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त (६६) बसत वर्णन (६७) रसानुक्रम के कवित्त (६८) निकुज विलास (६९) गोविंद परचई (७०) वन जग प्रससा (७१) छूटक दोहा (७२) उत्सव माला (७३) पद मुक्तावली (७४) वेन विलास (७५) गुप्त रस प्रकाश (७६) धन्य धन्य (७७) व्रज सम्बन्धी नाममाला।

नागरीदास शृगारी भक्त एव प्रेमी जीव थे। विधाता ने इन्हे कवि हृदय प्रदान किया था। अत. शृङ्गार का पूर्ण परिपाक इनकी रचनाओ मे विद्यमान है। वैष्णव सम्प्रदाय के कृष्णोपासक भक्त कवियो के समान इन्होंने भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला विषयक शृङ्गार रसात्मक कविताएँ अधिक सख्या मे रची हैं, पर ईश्वर-भक्ति के नाम पर शृङ्गार रस की पिपासा शान्त करने की प्रवृत्ति कहा भी दृष्टिगोचर नहीं होती। विशुद्ध शृङ्गार के साथ साथ कृष्ण-भक्ति की उत्ताल तरगे इनकी कविता मे प्रवाहित हो रही है और उसमे कुछ ऐसा माधुर्य्य, ऐसा रस एव जादू है कि जो कोई उसे एक बार भी पढ लेता है वह

कृष्ण-भक्ति-सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी ।
'नागरिया' सोई नर निह्चै, जीवत नरक-निवासी ॥

दोहा

मुख मुदे रहु मुरलिया, कहा करत उतपात ।
तेरे हाँसी घर बसी, औरन के घर जात ॥
बाजे मति मति बाँसुरी, मति पिय अधरन लागि ।
अरी घर बसी देत क्यों, रोम रोम मे आगि ॥
पीय लियो पिय मन लियो, लियो अधर रस झूम ।
इतौ लयो तै कहा दियो, बैरनि बंसी सूम ॥
गाठ गठीले बाँस की, महा द्रोह की खान ।
मति मारै री मुरलिया, तानन विष के बान ॥

ये जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम के रहनेवाले रत्नू शाखा के चारण थे। इनका जन्म स० १७४५ मे और देहावसान स० १७६२ में हुआ था।

वीरभाण

इनका लिखा 'राजरूपक' डिंगल भाषा का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इसका मुख्य विषय जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार शेर बिलंदखाँ की लड़ाई है जो स०१७८७ में अहमदाबाद मे हुई थी और जिसमें शेर विलदखा परास्त हुआ था। परन्तु महाराजा अभयसिंह के पिता महाराजा अजीतसिंह और दादा महाराजा जसवतसिंह की जीवन-घटनाओ पर भी इसमे खूब प्रकाश डाला गया है। उल्लिखित अहमदाबाद की लड़ाई मे वीरभाण महाराजा अभयसिंह के साथ थे। अतः इस ग्रंथ मे उन्होंने इस युद्ध का अपनी आँखों देखा वर्णन किया है। राजरूपक की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमें घटनाओं के ठीक-ठीक सवत् और युद्ध में भाग लेने वाले सरदार-सामतों आदि के नाम भी दिए गए हैं जो बहुत उपयोगी हैं। ग्रथ ४६ प्रकाशों मे विभक्त है। इसका ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। भाषा इस तरह की है—

सुदर भाल विसाल, अळक सम माळ अनोपम ।
हित प्रकास म्रदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम ॥
क्रपा-धाम नव कज, नयन अभिराम सनेही ।
रुचि कपोळ ग्रीवा त्रिरेख, छवि वेस अछेही ॥
निरखत संत सनमुख निज करण र ।
गुण मान दान चाहै घ

कृष्ण-भक्ति-सुख लेत न अजहूँ, वृद्ध देह दुख-रासी ।
'नागरिया' सोई नर निहचै, जीवत नरक-निवासी ॥

दोहा

मुख मुदे रहु मुरलिया, कहा करत उतपात ।
तेरे हाँसी घर बसी, औरन के घर जात ॥
बाजे मति मति बाँसुरी, मति पिय अधरन लागि ।
अरी घर बसी देत क्यों, रोम रोम मे आगि ॥
पीय लियो पिय मन लियो, लियो अधर रस भूम ।
इतौ लयो तै कहा दियो, बैरनि बसी सूम ॥
गाठ गठीले बॉस की, महा द्रोह की खान ।
मति मारै री मुरलिया, तानन विष के बान ॥

ये जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम के रहनेवाले रत्नू शाखा के चारण थे। इनका जन्म स० १७४५ मे और देहावसान स० १७६२ मे हुआ था।

वीरभाण

इनका लिखा 'राजरूपक' डिंगल भाषा का एक सुप्रसिद्ध ग्रथ है जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इसका मुख्य विषय जोधपुर के महाराजा अभयसिह और गुजरात के सूबेदार शेर विलदखॉ की लडाई है जो स०१७८७ मे अहमदाबाद मे हुई थी और जिसमें शेर विलदखा परास्त हुआ था। परन्तु महाराजा अभयसिंह के पिता महाराजा अजीतसिंह और दादा महाराजा जसवतसिह की जीवन-घटनाओ पर भी इसमे खूब प्रकाश डाला गया है। उल्लिखित अहमदाबाद की लड़ाई में वीरभाण महाराजा अभयसिह के साथ थे। अतः इस ग्रंथ में उन्होंने इस युद्ध का अपनी आँखों देखा वर्णन किया है। राजरूपक की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इसमे घटनाओं के ठीक-ठीक सवत् और युद्ध में भाग लेने वाले सरदार-सामतों आदि के नाम भी दिए गए हैं जो बहुत उपयोगी हैं। ग्रथ ४६ प्रकाशो मे विभक्त है। इसका ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। भाषा इस तरह की है—

सुदर भाल विसाल, अळक सम माळ अनोपम ।
हित प्रकास म्रदु हास, अरुण वारिज मुख ओपम ॥
क्रपा-धाम नव कज, नयन अभिराम सनेही ।
रुचि कपोळ ग्रीवा त्रिरेख, छवि वेस अछेही ॥
निरखत संत सनमुख निजर, करण पुनीत सुप्रीत कर ।
गुण मान दान चाहै सु ग्रहि, कवि सुग्यान औ ध्यान धर ॥

ये पुष्कर-क्षेत्र के रहनेवाले गौड़ ब्राह्मण थे और सं० १७६५ में पैदा हुए थे। श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे। इनके माता, पिता आदि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। नागरीदास के भाई हित वृन्दावनदास बहादुरसिंह इन्हें बहुत मानते थे। इसलिए ये प्रायः किशनगढ़ ही में रहा करते थे। पर बाद में जब राजघराने में राज्य सम्बन्धी झगड़े उठ खड़े हुए तब ये किशनगढ़ छोड़ कर वहां से वृन्दावन चले गए और अन्त समय तक वहीं रहे। सं०१८४४ तक की इनकी रची कविताएं मिलती हैं पर इसके बाद की नहीं मिलती। इससे अनुमान होता है कि उक्त संवत् के आसपास किसी समय इन्होंने शरीर छोड़ा होगा।

वृन्दावनदास भगवान श्री कृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होंने कृष्ण-लीला विषयक छोटे-बड़े कई ग्रंथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

(१) कृष्ण गिरि पूजन बेलि (२) श्री हितरूपचरित बेलि (३) भक्तिप्रार्थनावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्री ब्रज प्रेमानन्द सागर (७) कृष्ण गिरिपूजन मंगल (८) हरिनाम महिमावली (९) हितहरिवंश चन्द्रजू की सहस्र नामावली (१०) भाव विलास टीका (११) राधा सुधा निधि (१२) सेवक बानी (१३) रसिक यशवर्णन (१४) युगल प्रीतिपचीसी (१५) आनन्द-वर्द्धन बेलि (१६) नवम समय प्रबन्ध शृंखला (१७) कृष्ण सुमिरन पचीसी (१८) कृष्ण विवाह उत्कंठा (१९) रास उत्साह वर्द्धन (२०) इष्टभजन पचीसी (२१) जगनिर्वेद पचीसी (२२) पद (२३) प्रार्थनापचीसी (२४) राधाजन्म उत्सव बेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी (२६) राधाबाल विनोद (२७) लाडली जी की जन्म बधाई (२८) हित कल्पतरु (२९) भक्त सुजस बेलि (३०) करुणा बेलि (३१) भँवर गीत (३२) लीला (इसमें छोटे-छोटे ४१ ग्रंथ हैं) (३३) हरि कला बेलि (३४) लाड सागर (३५) सेवक जी की विरुदावली (३६) छद्म षोडशी (३७) रसिक अनन्य (३८) ख्याल विनोद (३९) ब्रज विनोद (४०) बेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२) सेवकजी की परिचयावली।

इनके सिवा इन्होंने अष्टयाम, समय प्रबन्ध, अष्टक, बेलि, पचीसी आदि भी कई लिखे हैं।

इन्होंने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बड़ा विशद वर्णन किया है। सब से बड़ी विशेषता जो इनकी रचना में हमें दीख पड़ती है वह इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित ब्रजभाषा है। इनकी पदावली में कान्ति, माधुर्य्य और कोमलता है। पद-विन्यास भी बहुत ललित है। भावुक कवि के

ये पुष्कर-क्षेत्र के रहनेवाले गौड ब्राह्मण थे औ
थे। श्रीराधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गु
आदि के सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात न
हित वृन्दावनदास बहादुरसिंह इन्हे बहुत मानते
किशनगढ ही मे रहा करते थे।
मे राज्य सम्बन्धी झगडे उठ खडे हुए तब ये
वृन्दावन चले गए और अन्त समय तक वहीं रहे
रची कविताएँ मिलती हैं पर इसके बाद की नहीं
है कि उक्त संवत् के आसपास किसी समय इन्हों-

वृन्दावनदास भगवान श्री कृष्ण के अनन्य
लीला विषयक छोटे-बडे कई ग्रथ बनाए, जिनके

(१) कृष्ण गिरि पूजन वेलि (२) श्री हितरूप
नावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्री
कृष्ण गिरिपूजन मगल (८) हरिनाम महिमाव्ली
की सहस्र नामावली (१०) भाव विलास टीका (१
सेवक बानी (१३) रसिक यशवर्णन (१४) युगल प्री
वर्द्धन वेलि (१६) नवम समय प्रबन्ध श्रृंखला
पचीसी (१८) कृष्ण विवाह उत्कंठा (१६) रास
इष्टभजन पचीसी (२१) जगगिर्विद पचीसी (२२) पद (
(२४) राधाजन्म उत्सव वेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी
विनोद (२७) लाडली जी की जन्म बधाई (२८) हित कल्प
सुजस वेलि (३०) करुणा वेलि (३१) भँवर गीत (३२) लील
छोटे ४१ ग्रथ हैं) (३३) हरि कला वेलि (३४) लाड सागर (३
की विरुदावली (३६) छद्म षोडशी (३७) रसिक अनन्य (३८) र
(३६) ब्रज विनोद (४०) वेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२,
की परिचयावली।

इनके सिवा इन्होंने अष्टयाम, समय प्रबन्ध, अष्टक, वेलि, पचीसी
भी कई लिखे हैं।

इन्होंने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बडा विशद व
किया है। सब से बडी विशेषता जो इनकी रचना मे हमें दीख पडती है वे
इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित ब्रजभाषा है। इनकी पदावली मे कान्ति,
माधुर्य्य और कोमलता है। पद-विन्यास भी बहुत ललित है। भावुक कवि वे

मथुरापुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर ॥
पिता बसन्त सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि ॥

सूदन भरतपुर के राजा सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित थे। इन्होंने 'सुजान-चरित्र' नामक एक ग्रथ बनाया जिसमें सूरजमल के युद्धो का वर्णन है और स० १८०२ से स० १८१० तक की घटनाएँ कही गई हैं। ग्रथ सात जगों में विभक्त है। प्रत्येक जग मे कई अक हैं जिनको किसी खास नियम के अनुसार नही रखा गया है। स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि सूरजमल की वीरता की जो घटनाएँ कवि ने 'सुजान चरित्र' में वर्णित की हैं वे कपोल-कल्पित नही, ऐतिहासिक हैं। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है। क्योंकि इसमें अनेक ऐसी बाते लिखी मिलती हैं जो वास्तविकता से बहुत दूर हैं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर सूदन ने सूरजमल का मेवाड़ को जीतना लिखा है जो बिलकुल निर्मूल है। सच तो यह है कि मेवाड़ के किसी महाराणा का कोई युद्ध ही सूरजमल के साथ नहीं हुआ। हार-जीत तो बहुत दूर की बात है।

सूदन की भाषा पिंगल है जिस पर पूरबी-पजाबी का भी पुट लगा हुआ है। केशवदास की तरह इन्होंने भी छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले हैं और जिस स्थान पर जिस छन्द का प्रयोग किया है वहाँ छन्द-शास्त्र के नियमों का पूरी तरह से पालन किया है। अतएव एक तो छन्दोभग इनकी कविता में बहुत कम है, दूसरे, गति भी अच्छी है। इनकी वर्णन-शैली साधारण रूप से सजीव एव कविता ओजस्विनी है, पर जैसा कि युद्ध की तैयारी के समय हथियारो तथा दिल्ली की लूट के समय बाजार के वर्णन में देखा जाता है, वस्तुओं की नामावली प्रस्तुत करने में कही-कही ये इतने आगे बढ गए हैं कि पढते-पढते जी ऊब जाता है। इनकी कविता का थोडा-सा अश यहाँ देते हैं—

जुटे रुहेले जट्टहीं। न कोई वीर हट्टही ॥
सु एक एक डट्टही। झपट्टही लपट्टहीं ॥
अनेक अग्ग बाहही। कितेक मार छाँहहीं ॥
किते परे कराहहीं। हकार सौं रपट्टहीं ॥
कहूँक हथ्थ हथ्थहीं। भरैं कहूँक बथ्थही ॥
परे सु लथ्थपथ्थहीं। सपट्टि कै चपट्टहीं ॥

इक्क समय दीवान, मौज दरियाव नाव मधि।
राजत सकल समाज, रूप रतिराज सु विधि विधि ॥
इत जलमदिर निरखि, सरस सुन्दर सर राजै।
उत जगमदिर जोति, वरा सारी सिरताजै ॥
दुहुँ बीच ठौर सरसी सरस, या तैं यह पुनि कीजियै।
सब दिखे जिते मोहैं जगत, आप पेखि मन रीझियै ॥

खेतसी

ये साँदू शाखा के चारण जोधपुर के महाराजा अभयसिंह के आश्रित थे। इन्होंने महाभारत के अठारह पर्वो का साराश डिंगल भाषा मे लिखा, जो 'भाषा भारथ' के नाम से प्रख्यात है। यह लगभग तेरह हजार छन्दों का एक भारी ग्रथ है। इसमे मोतीदाम, हनूफाल, दोहा, छप्पय इत्यादि विविध प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसका रचना-काल स० १७६० है। ग्रथ डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के ग्रथो मे गणना करने योग्य है। इसकी भाषा का नमूना लीजिए—

वेदव्यास धुरि वरणि, अनन्त अवतार उदारह।
कजि ससारि उधारि, वेद किय चार प्रकारह ॥
जै भारथ भाषियौ, निगम पचहमो वायण।
जगत हेत जुग कियो, वळे भागवत पुरायण ॥
सति मात सती पित धूम जिह, सतति सुप वाचा विमळ।
जिह कियौ परेपत त्रिपत कूँ, नभगामी रिष आप कळि ॥

दलपतिराय और बसीधर

ये दोनो अहमदाबाद के रहनेवाले थे। इनमे दलपतिराय जाति के महाजन और बसीधर ब्राह्मण थे। मेवाड के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) की आज्ञा से इन्होने 'अलकार-रत्नाकार' नामक एक ग्रथ स० १७६८ मे बनाया जो पहले-पहल स० १६३८ मे उदयपुर के राज्य यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। इसमे अलकारों का सोदाहरण विवेचन है और अलकार विषयक कुछ बातो को पद्य के साथ-साथ गद्य मे भी समझाने का उद्योग किया गया है। यह एक तरह से महाराजा जसवतसिंह कृत 'भाषा भूषण' की टीका है। ग्रन्थारम्भ मे लिखा है कि कुवलयानन्द का अर्थ तो दलपतिराय ने किया और कवित्त बसीधर ने बनाये। पर दलपतिराय के रचे कवित्त

उदाहरण— न

महारान जगतेस सुहायौ । जगनिवास मधि ता ैय लब ॥
सीस महल अनमित चित्रसारी । देवदारु मय अमित किवारी ॥
बुरजे गौख चादिनी चौरी । चढि अरास मुकता रग धौरी ॥
रगि तरहट बहैं सक धारी । अहि निसि सुभग सींचियतु क्यारी ॥
सब रितु तहाँ बसत हि मानौ । इमि जगमहल सुगर्धान सानौं ॥

हरिचरणदास ये किशनगढ के रहनेवाले जाति के ब्राह्मण थे । इनका जन्म स० १७६६ में और मृत्यु स० १८३५ मे हुई थी । इन्होंने केशवदास कृत रसिक-प्रिया एव कवि-प्रिया, बिहारीलाल कृत सतसई और महाराजा जसवन्तसिंह कृत भाषा-भूषण की टीकाएँ लिखीं । इनके अतिरिक्त इन्होंने दो स्वतत्र ग्रन्थ भी रचे थे: सभा प्रकाश और बृहत्कविवल्लभ । ये बहुत उच्चकोटि के कवि थे । इनकी भाषा ब्रजभाषा है । कविता बहुत रसीली, प्रौढ़ एव भावमयी है । उदाहरण—

आनद कौ कद वृषभानुजा कौ मुख-चद
लीला ही तैं मोहन के मानस कौ चौरै हैं ।
दूजो तैसो रचिबै कौ चाहत विरचि नित
ससि कौ बनावैं अजौ मनकौ न मौरें हैं ॥
फेरत हैं सान आसमान पैं चढ़ाय फेरि
पानप चढाइबै कौ वारध मे बौरै हैं ।
राधिका को आनन के जोट न विलोकै विधि
टूक टूक तौरै पुनि टूक टूक जोरै हे ।

सुन्दरकुवरि ये किशनगढ के महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं । इनका जन्म स० १७६१ मे हुआ था । सुप्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास इनके भाई थे । जब बाईजी चौदह वर्ष की थीं तब इनके पिता की मृत्यु हो गई थी और तदनन्तर इनके भाइयो में किशनगढ़ के राजसिहासन के लिए झगडे होने शुरू हो गए थे, इसलिये इनका विवाह न हो सका और ३१ वर्ष की उम्र तक ये कुँवारी रही । बाद मे जब इनके भतीजे सरदारसिंह गद्दी पर बैठे तब उन्होंने इनका विवाह राघोगढ के राजा वलभद्रसिंह के कुवर बलवन्तसिंह के साथ किया । बाई जी का देहान्त स० १८५३ के लगभग हुआ था ।

सुन्दर कुवरि बाई साहित्यिक वायु-मडल मे पली थी और कविता इनकी पैतृक सम्पति थी । इनके पिता राजसिंह, माता ब्रजदासी, भ्राता नागरीदास

और भतीजी छत्रकुंवरि बाई सभी साहित्य रुचि-सम्पन्न एवं प्रकृत कवि थे। इस वातावरण से इन्हें सत्काव्य-रचना में बड़ी सहायता मिली। पन्द्रह वर्ष की आयु में आप बहुत अच्छी कविता करने लग गई थी और बाद में तो काव्य रचना का इन्हें ऐसा व्यसन पड़ गया था कि जिस दिन थोड़ा-बहुत भी नहीं लिख लेतीं, इन्हें चैन न पड़ती थी। इन्होंने ग्यारह ग्रन्थों की रचना की जिनके नाम ये हैं—

(१) नेह निधि (२) वृन्दावन गोपी माहात्म्य (३) संकेत युगल (४) रंग झर (५) गोपी माहात्म्य (६) रस-पुंज (७) प्रेम-संपुट (८) सार-संग्रह (९) भावना प्रकाश (१०) राम-रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त।

सुंदर कुवंरि बाई की कविता में भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है। इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छंद, अलंकार आदि का इन्हें प्रौढ़ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामञ्जस्य को अच्छी तरह से समझती थीं। इनकी भाषा बड़ी शिष्ट, स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित है। इन्होंने काव्य के कला पक्ष तथा भाव पक्ष दोनों ही का बड़ी सुन्दरता से निर्वाह किया है। इनके दो कवित्त यहां दिए जाते हैं—

स्याम रूप-सागर में नैन वार पार थके
नचत तरंग अंग-अंग रंगमगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बैन,
नागिन अलक जुग सोभै सगबगी है॥
भौंर त्रिभंगताई पान पै लुनाई ता में,
मोती मणि जालन की जोति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकाय लोपी पाज तातें
लाज भई लाज की जहाज डगमगी है॥

साखनि गिरी है कोऊ मोल उभरी है कोऊ
कछु बिसरी है ते लगी है द्रुम डारि पै।
आसन द्वै के भुज भरी गर दै के गाढ़
बैठि गई कोऊ सोर सटकी उघारि है॥
नैन-नव पागि कोऊ फूलन है लागी कोऊ
मोती मणि भूषन उतारैं उर वारि कै।
ऐसी गति [illegible] करैं हेरि हेरि,
मदन डुलावै [illegible] [illegible] [illegible]॥

ये पाल्हावत शाखा के चारण थे। इनका जन्म जयपुर राज्यान्तर्गत ढणूँनिया नामक ग्राम में सं० १८०० में हुआ था। इनके पिता का नाम सामतजी और दादा का धामीराम था। युवावस्था में

उम्मेदराम

उम्मेदराम को अलवर के राव राजा बख्तावरसिंह ने अपने यहाँ बुला लिया था और अच्छी जीविका प्रदान की थी। वहीं सं० १८७८ में इनकी मृत्यु हुई।

उम्मेदराम डिंगल और पिंगल दोनों में सुमधुर एवं सरल कविता करते थे। इनके नीचे लिखे ग्रंथों का पता है—

(१) वाणी भूषण (२) राजनीति चाणक्य (३) रामचन्द्रजी की राजनीति (४) अवध पचीसी (५) मिथिला पचीसी (६) जनक शतक (७) बिहारी सतसई की टीका (८) कवि-प्रिया की टीका (९) मरसिया बख्तावरसिंह जी।

उम्मेदराम की भाषा मजी हुई और सरस है। उसमें अलंकार की छटा भी यत्र-तत्र पाई जाती है। इनकी भावना सीधे हृदय को जाकर स्पर्श करती है। इनके जैसी कलात्मक और विचार-वैभव पूर्ण कविता करनेवाले कवि चारणों में बहुत थोड़े हुए हैं। इनके तीन दोहे नीचे उद्धृत किए जाते हैं :—

कारज आछौ औ बुरो, कीजै बहुत विचार।
कियै जलद नाहीं बनै, रहत हिये में हार॥
पर नारी सब मातु सम, पर धन धूलि समान।
सबे जीव निज जीव सम, देखै सो दृगवान॥
इक तरु सूखे की अगनि, जारत सब वनराय।
त्योंही पूत कपूत तें, वंश समूल नसाय॥

ये आदि गौड़ कुलोत्पन्न अत्रि गोत्रीय ब्राह्मण थे और अपने समय के प्रसिद्ध कवि होने के सिवा अच्छे ज्योतिषी भी थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। अपने आश्रयदाता नीमराणा के अधिपति महाराज

जोधराज

चन्द्रभानु की आज्ञा से इन्होंने हमीर रासौ लिखा, जो सं० १७८५ में समाप्त हुआ था—

चन्द्र नाग वसु पञ्च गिनि, संवत माधव मास।
शुक्ल सत्रनिया जीव जुत, ता दिन ग्रन्थ प्रकास॥

दुहुँ द्वन्द्व जुद्ध सुर्कान । मनु जुटे मल्ल नवीन ॥
तरवारि वज्जिय ताय । मनु लागी ग्रीष्म लाय ॥
करि चरण सीस रु हत्थ । परि लुत्थ जुत्थ सुतत्थ ॥
समसान थान सु धीर । धर धरनि खेलत वीर ॥
गजराज लुट्टत भुम्मि । बहु तुरंग परत सु भुम्मि ॥
बिय वीर वज्जिय मार । तरवार वग्गहु धार ॥
दोऊ भ्रात स्वामि सकाम । जग में किये अति नाम ॥
दोहुँ वीर देखत दूर । चढि गए मुख अति नूर ॥
दल दोय दिक्खत वीर । पहुँचे विहस्त गहीर ॥

तजिये तप पावस विति सब । ऋतु शारद बादर दीस अब ॥
सरिता सर निम्मल नीर वहैं । रस रंग सरोज सुफुल्लि रहैं ॥
बहु खंजन रंजन भृंग भ्रमैं । कलहंस कलानिधि वेद भ्रमैं ॥
वसुधा सब उज्जल रूप किये । सित बासन जानि बिछाय दिये ॥
बहु भाँति चमेलिय फूलि रही । लखि मार सुमार सुदेह दही ॥
बन रास विलास सुवास भरैं । तिय काम कमान सुतानि धरैं ॥
भ्रमणे पर तैं नर काम जगे । विरही सुनि के उर घाव खगै ॥
धर अम्बर दीपक जोति जगी । नर नारि लखैं उर प्रीति पगी ॥

बुधसिंह

बूंदी-नरेश महाराव राजा बुधसिंह का जन्म सं० १७४२ में हुआ था। अपने पिता राव राजा अनिरुद्धसिंह की मृत्यु के पश्चात् स० १७५२ में ये बूंदी की राजगद्दी पर आसीन हुए थे। बडे वीर, रणपटु एवं अपने वंश गौरव के नाम पर मर-मिटनेवाले आत्माभिमानी पुरुष थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो बेटों, बहादुर शाह और आजम, में दिल्ली के राजसिंहासन के लिए जो संग्राम हुआ उसमें बहादुरशाह की विजय इन्हीं के कारण हुई थी। कर्नल टॉड के शब्दों में "केवल बुधसिंहजी के पराक्रम ही से शाह आलम अपने प्रतिद्वंद्वियों को जीत कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ सका। कोटे के रामसिंहजी और दतिया के दलपति बुंदेला तोप के गोले से उड़ गए और शाहजादा आजम अपने बेटे केदारबख्श समेत इस लडाई मे बुधसिंहजी की तलवार खा कर सदा के लिए क़बर मे सो गया"। बुधसिंह का देहान्त स० १७९६ मे अपनी सुसराल बेगूं से तीन कोस की दूरी पर बाघपुर गाँव में हुआ था।

महाराव राजा बुधसिंह कला और सौन्दर्य्य के उपासक थे, साथ ही प्रतिभावान कवि भी थे। इन्होंने 'नेहतरंग' नाम का एक रीतिग्रंथ बनाया जो

अपने रग-ढग का अप्रतिम है। यह सं० १७८४ में रचा गया था जैसा कि इसके अन्तिम दोहे से सूचित होता है—

> सतरहसै चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार।
> शुक्ल पच्छ भादौ प्रगट, रच्यो ग्रथ सुख सार॥

'नेहतरग' चौदह तरगों मे विभक्त है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि कुल मिलाकर ४४६ छदो मे यह समाप्त हुआ है। इसकी भाषा व्रजभाषा है। कविता शृगार रस से सराबोर है। अत्यत सरस एव सराहनीय रचना है। उदाहरण—

> साजै सिंगार सषीन की सगति देखी हुँती वृषभान दुलारी।
> लालन चित्त घनै ललचै भुज भेटन कौं वढि बाँह पसारी॥
> नैन की सैन निसक झुकी उझकी कटु बैन उचारत गारी।
> जानैं कहा चतुराई कौं जो रस आखर गोरस वेचन हारी॥

ये रत्नू शाखा के चारण कच्छ-भुज के राजा महाराव श्री देशल जी प्रथम (स० १७७४—१८०८) के महाराज कुमार लखपत जी के आश्रित थे।

हमीर इनका जन्म जोधपुर राज्य के घडोई गाँव में हुआ था। विद्या अध्ययन इनका कच्छभुज में हुआ जहाँ भाट-चारणों के लिए उन दिनों विशेष सुविधा थी। इन्होंने लखपत-पिंगल, गुण पिंगल-प्रकास, हमीर नाम माला, जोतिष जड़ाव, ब्रह्माण्ड पुराण, भागवत दर्पण इत्यादि बाईस ग्रथ बनाए जिनमे लखपत-पिंगल इनकी सर्वोपयोगी रचना है। यह डिंगल के छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। इसकी रचना स० १७९६ मे हुई थी—

> सवत सत्तर छिनुओं पर्णों तस वरस पटतर।
> तिथि उत्तिम सातिम्म वार, उत्तिम गुरु वासर॥
> माह माम व्रतमान अरक बैठौ उतराइणि।
> सुकल पष्य रिति सिसिर महा सुभ जोग सिरोमणि।
> विसतार गाह मात्रा वरण सुजि पसाउ सरसत्ती रौ॥
> कहियौ हमीर चित चाजि करि पिंगल गुण लखपत्ति रौ॥

लखपत पिंगल मे चार प्रकरण हैं जिनमे क्रमश. वार्णिक छन्दो, मात्रिक छन्दों, गाहा छद के विविध भेदो और गीता की विविध जातियो का सविस्तर

दुहुँ द्वन्द्व जुद्ध सुकीन। मनु जुटे मल्ल नवीन ॥
तरवारि बज्जिय ताय। मनु लगी ग्रीषम लाय ॥
करि चरण सीस रु हत्थ। परि लुत्थ जुत्थ सुतत्थ ॥
घमसान थान सु धीर। धर धरनि खेलत वीर ॥
गजराज लुट्टत भुम्मि। बहु तुरंग परत सु झुम्मि ॥
त्रिय वीर बज्जिय मार। तरवार बरसहु धार ॥
दोऊ भ्रात स्वामि सकाम। जग में किये अति नाम ॥
दोहुँ वीर देखत दूर। चढि गए मुख अति नूर ॥
दल दोय दिख्खत वीर। पहुँचे बिहस्त गहीर ॥

तजिये तप पावस वित्ति सब। ऋतु शारद बादर दीस अब ॥
सरिता सर निम्मल नीर बहैं। रस रग सरोज सुफुल्लि रहैं ॥
बहु खजन रजन भृंग भ्रमैं। कलहस कलानिधि वेद भ्रमैं ॥
बसुधा सब उज्जल रूप किय। सित वासन जानि बिछाय दिय ॥
बहु भाँति चमेलिय फूलि रही। लखि मार सुमार सुदेह दही ॥
बन रास विलास सुबास भरैं। तिय काम कमान सुतानि धरैं ॥
भ्रमणे पर तैं नर काम जगै। विरही सुनि कै उर घाव खगै ॥
धर अम्बर दीपक जोति जगी। नर नारि लखै उर प्रीति पगी ॥

बुधसिंह

बूंदी-नरेश महाराव राजा बुधसिंह का जन्म स० १७४२ में हुआ था। अपने पिता राव राजा अनिरूद्धसिंह की मृत्यु के पश्चात् सं० १७५२ में ये बूंदी की राजगद्दी पर आसीन हुए थे। बडे वीर, रणपटु एव अपने वश गौरव के नाम पर मर-मिटनेवाले आत्माभिमानी पुरुष थे। औरगजेब की मृत्यु के बाद उसके दो बेटों, बहादुर शाह और आजम, में दिल्ली के राजसिंहासन के लिए जो सग्राम हुआ उसमे बहादुरशाह की विजय इन्हीं के कारण हुई थी। कर्नल टॉड के शब्दों में "केवल बुधसिंहजी के पराक्रम ही से शाह आलम अपने प्रतिद्वद्वियों को जीत कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ सका। कोटे के रामसिंहजी और दतिया के दलपति बुदेला तोप के गोले से उड़ गए और शाहजादा आजम अपने बेटे केदारबख्श समेत इस लड़ाई मे बुधसिंहजी की तलवार खा कर सदा के लिए कबर में सो गया"। बुधसिंह का देहान्त स० १७९६ मे अपनी सुसराल बेगूं से तीन कोस की दूरी पर बाघपुर गाँव मे हुआ था।

महाराव राजा बुधसिंह कला और सौन्दर्य्य के उपासक थे, साथ ही प्रतिभावान कवि भी थे। इन्होंने 'नेहतरग' नाम का एक रीतिग्रथ बनाया जो

अपने रग-ढग का अप्रतिम है। यह सं० १७८४ मे रचा गया था जैसा कि इसके अन्तिम दोहे से सूचित होता है—

> सतरहसै चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार।
> शुक्ल पक्ष भादौं प्रगट, रच्यौ ग्रथ सुख सार ॥

'नेहतरग' चौदह तरगों मे विभक्त है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि कुल मिलाकर ४४६ छदों में यह समाप्त हुआ है। इसकी भाषा व्रजभाषा है। कविता शृगार रस से सराबोर है। अत्यत सरस एव सराहनीय रचना है। उदाहरण—

> साजैं सिंगार सपीन की सगति देखी हुँती वृषभान दुलारी।
> लालन चित्त घनैं ललचै भुज भेटन कौं बढि बाँह पसारी ॥
> नैन की सैन निसक झुकी उझकी कछु बेन उचारत गारी।
> जानैं कहा चतुराई कौं जो रस आखर गोरस बेचन हारी ॥

ये रत्नू शाखा के चारण कच्छ-भुज के राजा महाराव श्री देशल जी प्रथम (स० १७७४—१८०८) के महाराज कुमार लखपत जी के आश्रित थे।

हमीर

इनका जन्म जोधपुर राज्य के घड़ोई गाँव में हुआ था। विद्या अध्ययन इनका कच्छभुज में हुआ जहाँ भाट-चारणों क लिए उन दिनो विशेष सुविधा थी। इन्होंने लखपत-पिंगल, गुण पिंगल-प्रकास, हमीर नाम माला, जोतिप जड़ाव, ब्रह्माण्ड पुराण, भागवत दर्पण इत्यादि बाईस ग्रथ बनाए जिनमे लखपत-पिगल इनकी सर्वोपयोगी रचना है। यह डिगल के छन्दशास्त्र का ग्रन्थ है। इसकी रचना स० १७९६ मे हुई थी—

> सवत सत्तर छिनुऔ पणाँ तस वरस पटतर।
> तिथि उत्तिम सातिम्म वार उत्तिम गुरु वासर ॥
> माह मास व्रतमान अरक वैठो उतराइणि।
> सुकल पष्य रिति सिसिर महा सुभ जाग सिरोमणि।
> विसतार गाह मात्रा वरण सुजि पसाउ सरसत्ती रौ ॥
> कहियौ हमीर चित चौजि करि पिगल गुण लखपत्ति रौ ॥

लखपत पिंगल मे चार प्रकरण हैं जिनमे क्रमश. वार्णिक छन्दो, मात्रिक छन्दों, गाहा छद के विविध भेदों और गीतो की विविध जातियों का सविस्तर

वर्णन किया गया है। कुल मिलाकर ४६६ छंदों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। पहले छंद का लक्षण देकर फिर उदाहरण दिया गया है जिसमें महाराज कुमार लखपत जी की प्रशंसा की गई है। भाषा-रचना इस ढंग की है—

> महादेव सुत करि महर, गणपति सुमति गभीर।
> कुअर बखाणा कुल तिलक, धजबधी लखधीर ॥ १ ॥
> अति उत्तिम दीजै उकति, सरसति हू सुप्रसन्न।
> गाओं लखपती गुणे, महिपती वड मन्न ॥ २ ॥
> किया छंद पिंगल कवि, के हजार लख कोड़ि।
> आखाँ हूँ तिण ऊपरे, जाति अमोलिक जोडि ॥ ३ ॥

सोमनाथ

ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका रचना काल सं० १७६०—१८१० है। ये भरतपुर के महाराज बदनसिंह के आश्रित थे, जिन्होंने इनको राज्याचार्य, दानाध्यक्ष आदि के पद दे रखे थे। संस्कृत—हिंदी के प्रकांड पंडित होने के अतिरिक्त ये ज्योतिष एवं काव्य-रचना में भी परम प्रवीण थे। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) रस पीयूष निधि (२) सुजान विलास (३) माधव विनोद (४) कृष्ण लीलावली (५) पंचाध्यायी (६) दशम स्कंध भाषा (७) ध्रुव विनोद (८) राम कलाधर (९) वाल्मीकि रामायण (१०) अध्यात्म रामायण (११) अयोध्याकाण्ड (१२) सुन्दरकाण्ड (१३) व्रजेन्द्र विनोद (१४) रस विलास (१५) रामचरित्र रत्नाकर।

सोमनाथ व्रजभाषा मे कविता करते थे। इनकी भाषा बहुत कर्णमधुर, सरस और सीधी-सादी है। कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष, भावपूर्ण और रसीली है। एक उदाहरण दिया जाता है—

> दिसि विदिसनि ते उमडि मढ़ि लीनो नभ,
> छाँडि दीने धुरवा जवासै-जूथ जरिगे।
> डहडहे भये द्रुम रंचक हवा के गुन,
> कहूँ कहूँ मोरवा पुकारि मोद भरिगे ॥
> रहि गए चातक जहाँ के तहाँ देखत ही,
> सोमनाथ कहै बूँदाबाँदी हू न करिगे।

सोर भयो घोर चहुँ ओर महि मण्डल मैं,
आए घन आए घन, आयकै उघरिंगे ॥

जयपुर नगर के बसानेवाले महाराजा सवाई जयसिंह से तीसरी पीढी मे महाराजा माधवसिह हुए जिनके दो पुत्र थे, पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह। पृथ्वीसिंह का जन्म स० १८१६ में और प्रतापसिंह का स० १८२१ मे हुआ था। माधवसिंह के बाद

प्रतापसिह

पृथ्वीसिंह जयपुर के उत्तराधिकारी हुए। परन्तु स० १८३३ मे इनकी अकाल मृत्यु हो गई। इनके कोई सतान न थी, इसलिए प्रतापसिंह को राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

महाराजा प्रतापसिंह के समय में मरहठों का राजस्थान मे बड़ा आतंक और जोर था। इसलिए उनका दमन करने के लिए महाराजा को कई युद्ध करने पडे और दो-एक बार इन्होंने उन्हे पराजित भी किया। पर राजपूतों की अनेकता तथा अन्तः कलह के कारण राजस्थान का राजनैतिक वातावरण उस समय कुछ ऐसा बिगड़ा हुआ था कि इन्हे अपने प्रयत्न मे स्थायी सफलता न मिली। निरतर युद्ध मे लगे रहने के कारण इनकी धन-जन से ही हानि नहीं हुई, बल्कि इनके स्वास्थ्य को भी भारी धक्का पहुँचा और अत में स०-१८६० मे इनके जीवन का अतिम अभिनय हो गया।

ये बडे मिलनसार, हँसमुख एव गुणग्राही थे और काव्य, सगीत, चित्र-कारी आदि कलाओं के सरक्षक थे। कवियों, विद्वानों, और गायकों का इनके दरबार मे बड़ा सम्मान होता था। इन्होने आईने-अकबरी, दीवाने हाफिज आदि ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद करवाया और ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वैद्यक, सगीत आदि विषयो पर भी बहुत से ग्रन्थ लिखवाए, जो जयपुर के राज पुस्त-कालय में सुरक्षित हैं। इनके सिवा इन्होंने कविता के संग्रह ग्रथ भी बहुत से तैयार करवाए थे, जिनमे 'प्रताप वीर हजारा' और 'प्रतापसिंगार हजारा' मुख्य हैं।

महाराजा स्वय भी बहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होंने बहुत से ग्रन्थ बनाए जिनका काव्य-प्रेमियों मे बडा आदर है। कविता मे ये अपना नाम 'ब्रजनिधि' लिखते थे। इनके ग्रन्थों के नाम नीचे दिए जाते हैं। ये सभी ग्रंथ नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा 'ब्रजनिधि-ग्रथावली' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। ग्रथों के नाम ये हैं—

(१) प्रीतिलता (२) स्नेह सग्राम (३) फाग रंग (४) प्रेम प्रकाश (५) विरह सलिता (६) स्नेह वहार (७) मुरली विहार (८) रमक-जमक बत्तीसी (६) रास का रेखता (१०) सुहाग रैन (११) रग-चौपड़ (१२) नीति मजरी (१३) शृगार मजरी (१४) वैराग्य मजरी (१५) प्रीति पच्चीसी (१६) प्रेमपथ (१७) ब्रज शृगार (१८) श्री ब्रजनिधि मुक्तावली (११६ दुख हरण वेलि (२०) सोरठा ख्याल (२१) व्रजनिधि पद सग्रह (२२) हरि पद सग्रह (२३) रेखता सग्रह ।

व्रजनिधि की भाषा व्रजभाषा है और कविता के विषय हैं—शृगार, नीति और वैराग्य । इनकी कविता बहुत सरल, परिमार्जित एव उल्लास-पूर्ण है । वर्णन-शैली बहुत सहज और मार्मिक है । कृष्ण-लीला के विविध दृश्य जो इन्होंने अकित किए है वे बहुत मर्य्यादा-पूर्ण तथा लोक-रजककारी हैं, और उनसे इनकी अखंड कृष्ण-भक्ति ही झलकती है । पर राधा के चित्राकन से इनको इन्द्रिय-लिप्सा व्यजित होती है । व्रजनिधि की राधा एक भक्त कवि की राधा नही, वरन किसी कामुक शृगारी कवि की राधा प्रतीत होती है । इनकी दो कविताएँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

विधि वेद-भेदन बतावत अखिल विस्व,
पुरुष पुरान आप धारयौ कैसौ स्वाग वर ।
कइलास वासी उमा करति खवासी दासी,
मुक्ति तजि कासी नाच्यौ राच्यौ कैयो राग पर ॥
निज लोक छॉड्यौ व्रजनिधि जान्यौ व्रजनिधि,
रंग रस बोरी सी किसोरी अनुराग पर ।
ब्रह्मलोक वारौ पुनि शिवलोक वारौ और,
विष्णु लोक वारि डारौ होरी व्रज फाग पर ॥

राधे बैठी अटारियॉ, झॉकत खोलि किवार ।
मनौं मदन गढ तैं चली, द्वै गोली इकसार ॥
द्वै गोली इकसार, आनि ऑखिन मे लागी ।
छेदे तन-मन-प्रान, कान्ह की सुधि बुधि भागी ॥
व्रजनिधि है वेहाल, विरह बाधा सौं दाधे ।
मद मद मुसकाइ, सुधा सो सीचति राधे ॥

इनका रचना काल स० १८६५ के आसपास है । ये जोधपुर राज्य के गॉव खराडी के निवासी खिडिया शाखा के चारण थे । इनके पिता का

कृपाराम नाम जगराम था। बडे होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गए और अत समय तक वहीं रहे। इनको ढाणी गाँव मिला जो 'कृपाराम की ढाणी' के, नाम से मशहूर है।

राजिया के नाम से जो सोरठे राजस्थान मे प्रचलित हैं वे कृपाराम के बनाए हुए हैं। राजिया इनका नौकर था। उसी को सबोधित करके ये सोरठे कहे गए हैं।

कृपाराम रचित इन सोरठो की सख्या १७५ के लगभग है। इनमें नीति और उपदेश की बातें कही गई हैं। भाषा इनकी डिंगल है। प्रासाद गुण युक्त होने से अपढ लोग भी इन सोरठो का मर्म समझ लेते हैं और बात-बात में इनका प्रयोग करते हैं।

कहा जाता है कि इन फुटकर सोरठों के अतिरिक्त कृपाराम ने 'चालक-नेसी' नामक एक नाटक और अलकारो का एक ग्रन्थ भी बनाया था। परन्तु इनका पता नहीं लगता। राजिया के कुछ सोरठे यहाँ दिए जाते हैं—

कारज सरै न कोय, बळ प्राक्रम हीमत बिना।
हलकारयाँ की होय, रंग्या स्याळाँ राजिया॥

(बल, पराक्रम और हिम्मत के बिना कोई काम पूरा नहीं हो सकता। हे राजिया! रगे हुए सियारो को हिम्मत दिलाने से क्या हो सकता है?)

काळी भोत कुरूप कसतूरी काँटै तुलै
साकर बडी सरूप रोड़ाँ तूलै राजिया॥

(कस्तूरी बहुत काली और बदसूरत होती है पर काँटे पर तोली जाती है। परन्तु हे राजिया! शक्कर बहुत सुन्दर होने पर भी पत्थरों के बराबर तोली जाती है।)

गहभरियौ गजराज, मदछकियौ चालै मतै।
कूकरिया बेकाज, रोय भुसै क्यूँ राजिया॥

(गभीर हाथी मद मस्त होकर अपनी मौज से चला जा रहा है। हे राजिया! कुत्ते क्यो रो-रोकर भौंकते हैं।)

गुण-औगण जिण गाँव, सुणै न कोई साँभळै।
मच्छ-गळागळ माँय, रहणो मुसकल राजिया॥

(जिस गाँव मे गुण-अवगुण को सुनने व समझने वाला कोई नहीं है और जहाँ अराजकता फैली हुई है। हे राजिया! वहाँ रहना कठिन है।)

पाटा पीड़ उपाव, तन लागाँ तरवारियाँ।
बहै जीभ रा घाव, रती न ओषद राजिया॥

(शरीर में तलवारो के घाव लगने पर पट्टी द्वारा उसकी पीडा का इलाज हो सकता है। पर हे राजिया! जीभ के घावों की रत्ती भर भी दवा नहीं है।)

मुख ऊपर मीठास, घट माँही खोटा घड़ै।
इसड़ा सूँ इखळास, राखीजै नहँ राजियाँ॥

(मुँह से मीठे बोलते हैं पर हृदय से बुराई करते रहते हैं। हे राजिया! ऐसे लोगों से कभी संपर्क नहीं रखना चाहिये।)

मूसा नै मजार, हितकर बैठा हेकठा।
सौ जाणै ससार, रस नहँ रहसी राजिया॥

(चूहा और बिल्ली प्रेम पूर्वक एक साथ बैठे हुए हैं। परन्तु हे राजिया! सारा ससार जानता है कि यह प्रेम रहने का नही है।)

लावा तीतर लार, हर कोई हाका करै।
सिंघाँ तणौ सिकार, रमणौ मुसकल राजिया॥

(लवा और तीतर के पीछे प्रत्येक आदमी हाँक लगा सकता है। परन्तु हे राजिया! सिंहों की शिकार करना कठिन है।)

रोटी चरखौ राम, इतरौ मुतलब आप रो।
की डोकरियाँ काम, राज कथा सूँ राजिया॥

(रोटी, चरखा और राम इन बातों से बुढियाओ का मतलब होना चाहिए। हे राजिया! राजनीति से उन्हे क्या करना है?)

मानसिंह

ये महाराजा विजयसिंह के पौत्र और गुमानसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म स० १८३९ मे हुआ था। इकीस वर्ष की अवस्था में ये जोधपुर की गद्दी पर बैठे। कुछ सरदारो के षड्यत्रों, नाथो तथा मरहठों के कारण इनके राज्य मे बडी अव्यवस्था रही और इन्हे बडे कष्ट झेलने पडे। मरहठो आदि से तो इन्होंने खूब लोहा लिया और बड़ी चतुराई से उनका दमन किया, पर नाथ सप्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति

होने से नाथों का दमन ये न कर सके। यही नहीं, तत्कालीन पोलिटिकल एजेंट लडलो ने जब दो-एक उपद्रवी नाथों को पकड़कर अजमेर भेज दिया तब इन्हें असीम दुःख हुआ और उनको छुड़वाने की चेष्टा करने लगे। अन्त मे अपने इस प्रयत्न में जब इन्हे सफलता न मिली तब इन्होंने अन्न खाना छोड दिया और सन्यास लेकर इधर-उधर भटकने लगे। इनका देहान्त स० १६०० की भादों सुदी १३ को जोधपुर मे हुआ।

महाराजा मानसिंह बडे गुणाढय, कविता-प्रेमी एव सरस्वती-सेवक थे। विशेषतः काव्यकला को इन्होंने बड़ा प्रोत्साहन दिया। ये इसके रहस्य को भी भली प्रकार समझते थे, और स्वय भी काव्य-रचना मे प्रवीण थे। कवियों, विद्वानों एव पडितो का ये इतना आदर करते थे कि वे पालकियों में बैठे फिरते थे। इन्होने जोधपुर में 'पुस्तक प्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की जिसमे आज सस्कृत की १६७८ और डिंगल आदि की १०६४ हस्तलिखित पुस्तकों का सुन्दर सग्रह है। इसमे सबसे प्राचीन पुस्तक स० १४७२ की लिखी हुई है। महाराजा की गुणग्राहकता के विषय मे यह दोहा आज भी मारवाड मे प्रसिद्ध है—

जोध बसाई जोधपुर, व्रज कीनी व्रिजपाल।
लखनेऊ, काशी, दिली, मान करी नेपाल॥

इनके रचे हिन्दी तथा संस्कृत के ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) नाथ चरित्र (२) विद्वज्जन मनोरजनी (३) कृष्ण विलास (४) भागवत की मारवाडी भाषा की टीका (५) चौरासी पदार्थनामावली (६) जलधर चरित्र (७) जलधर चन्द्रोदय (८) नाथ पुराण (६) नाथ स्तोत्र (१०) सिद्ध गंगा, मुक्ताफल सम्प्रदाय आदि (११) प्रश्नोत्तर (१२) पद सग्रह (१३) शृंगार रस की कविता (१४) परमार्थ विषय की कविता (१५) नाथाष्टक (१६) जलधर ज्ञान सागर (१७) तेज मजरी (१८) पचावली (१६) स्वरूपों के कवित्त (२०) स्वरूपों के दोहे (२१) सेवासागर (२२) मान विचार (२३) आराम रोशनी (२४) उद्यान वर्णन।

महाराजा मानसिंह डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करते थे। नाथ सप्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से इन्होंने उक्त पथ के सिद्धान्तो, उसकी महिमा आदि के विषय में अधिक लिखा है। पर इनकी शृंगार रस की कविताएँ भी थोड़ी-सी मिली हैं जो काव्यकला एव भाव-मौलिकता दोनों ही दृष्टियो से बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं। इनकी कविता देखिए—

सररर बरसत सलिल, धरर धरर घनघोर ।
झररर झरना झरत, दसौं दिसी बोलत मोर ॥
झर पावस चहुँ दिसि, प्रचंड दामिनि दमकाई ।
सर डाबर जल झरत, सरित जलनिधिहिं मिलाई ॥
किलकारि करत जित तितहिं विहँग, मधुर सबद मन भावहीं ।
नृप मान कहत या विधि प्रबल, घन वरषा रितु आवहीं ॥

पद

म्हारी बिगडी कौन सुधारै, नाथ विन बिगडी कौन सुधारै ।
बनी बनी के सब कोय सीरी, कोई बिगडी को नहीं नाथ ॥
कड़वी बेल की कडवी तुमडिया, सब तीरथ कर आई जी ।
गंगा न्हाँही जमुना न्हाँही, अजहुँ न गई कड़वाई जी ॥
नाथ नाम की चुदडी हमारी, चुदड़ी मे दाग लगाया जी ।
नाथ निरजन अरसन-परसन, राजा मान गुण गाया जी ॥

ओपाजी

ये आढा गोत्र के चारण सिरोही राज्य के पेशवा ग्राम में पैदा हुए थे। इनका रचना काल सं० १८६०-६० है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, फुटकर गीत देखने मे आते हैं। ये गीत डिंगल भाषा में हैं और शात रसात्मक हैं। इनके कारण ओपाजी कीर ाजस्थान मे बडी ख्याति है। इन गीतों में बडी सरसता और कोमलता है। भाव-सौन्दर्य्य भी इनमें यथेष्ट पाया जाता है। एक गीत देखिए—

मन जाणै चढूँ हाथियाँ माथै, खुर घासता जनम खुवै ।
नर री चींती वात न होवै, हर री चींती बात हुवै ॥१॥
मन जाणै पदमण हूँ माणूँ, गोबँद बाँधै पथर गळै ।
माडणहारै लेख मॉडिया, मेटण वाळौ कूण मळै ॥२॥
यूं जाणै पकवान अरोगू, धापर मिलै न लूकौ धान ।
हचियौ खाय काय हींचोळा, भोळा रे रचियौ भगवान ॥३॥
दिल मे जाणै पाव दबाऊ, औरा रा पग दाबै आप ।
कळपै कसू कसू मन कोपै, प्राणी लेख तणो परताप ॥४॥
चित में जाणै हुकुम चलाऊँ, हुकुम तणौ वस नार न होय ।
साचा लेख लिख्या उण साईं, काचा करण न दीसै कोय ॥५॥

धापै मन बैठा धौळाहर, तापै सूनौ ढूढ तठै ।
आदू रीत असी है "ओपा", कुटी लिखी सो महल कठै[१६] ।।६।।

ये आशिया शाखा के चारण थे । इनका जन्म जोधपुर राज्य के पचभदरा परगने के भाडियावास नामक गाँव मे स० १८२८ मे हुआ था । इनके पिता का नाम फतहसिंह और दादा का शक्तिदान था ।

बाँकीदास अलकारों के प्रख्यात ग्रन्थ 'जसवंत-जसो- भूषण' के रचयिता मुरारिदान इनके पौत्र थे । छोटी अवस्था मे बाँकीदास ने अपने गाँव में थोड़ा सा पढना-लिखना सीखा और सोलह वर्ष की आयु मे जोधपुर चले गए, जहाँ भिन्न २ गुरुओं से काव्य, व्याकरण, इतिहास, आदि विभिन्न विषयों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया । तदनन्तर अपने ऊँचे व्यक्तित्व एव ऊँची योग्यता के सहारे महाराजा मानसिंह के प्रीति-पात्र बन गए । महाराजा मानसिंह बाँकीदास की कवित्व-शक्ति और विद्वता पर मुग्ध थे । उन्होंने इन्हे अपना काव्य-गुरु बनाया और कालान्तर मे कविराजा की उपाधि ताजीम, पाँव मे सोना, बाँह-पसाव आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा वढाई । गुरु-शिष्य का सबन्ध सूचित करने के अभिप्राय से उक्त महाराजा ने इन्हे कागज़ों पर लगाने की मोहर रखने का मान भी दे रक्खा था, जिस पर निम्नलिखित शब्द अकित थे—

श्रीमन् मान धरणि पति, बहु गुन रास ।
जिन भाषा गुरु कीनौ, बाँकीदास ।।

बाँकीदास सस्कृत, डिंगल, फारसी तथा ब्रजभाषा के अच्छे पण्डित थे और आशु कवि होने के साथ-साथ इतिहास के भी सुज्ञाता थे । कहा जाता है, एक बार ईरान का कोई सरदार भारतवर्ष मे भ्रमण करता हुआ जोधपुर आया और महाराजा मानसिंह से मुलाक़ात करते समय उनसे यह प्रार्थना की कि यदि आपके यहाँ कोई अच्छा इतिहासवेत्ता हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूँ । इस पर महाराजा ने बाँकीदास को उसके पास भेजा । बाँकीदास के ऐतिहासिक ज्ञान, उनकी स्मरण-शक्ति और उनके काव्य-चमत्कार को देखकर वह सरदार दग रह गया और जिस समय जोधपुर से जाने को रवाना हुआ महाराजा से कह गया कि जिस आदमी को आपने मेरे पास भेजा था

१६— घासता=घिसते हुए । खुवै=नष्ट करता है । माणू=वार्तालाप करूँ । गोवद=गोविंद । धापर=पेट भर कर ।

वह इतिहास ही का पूर्ण ज्ञाता नहीं, वरन् उच्चकोटि का कवि भी है। इतिहास का ऐसा पूर्ण और पुख्ता ज्ञान रखनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति मेरे देखने मे अभी तक नहीं आया। इसे समस्त भूमण्डल के इतिहास का भारी ज्ञान है। मैं ईरान का रहनेवाला हूँ, पर ईरान का इतिहास भी मुझ से अधिक वह जानता है।

बाँकीदास का अन्तकाल सं० १८९० मे श्रावण सुदी ३ को जोधपुर मे हुआ था। इनकी मृत्यु से महाराजा मानसिंह को असीम दुःख हुआ और निम्नलिखित शब्दों द्वारा उन्होंने अपने शोकोद्गार प्रकट किए—

सद्विद्या बहु साज, बाँकी थी बाँका वसु।
कर सूधी कवराज, आज कठी गौ आसिया ॥१॥
विद्या-कुळ विख्यात, राज काज हर रहसरी।
बाँका तो विण बात, किण आगळ मनरी कहाँ[१७] ॥२॥

इनके ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) सूर छत्तीसी (२) सींह छत्तीसी (३) वीर विनोद (४) धवळ पच्चीसी (५) दात्तार बावनी (६) नीति मजरी (७) सुपह छत्तीसी (८) वैसक वार्ता (९) मोवडिया मिजाज (१०) कृपण दर्पण (११) मोहमर्दन (१२) चुगल मुख चपेटिका (१३) वैसवार्ता (१४) कु कवि बत्तीसी (१५) विदुर बत्तीसी (१६) सुरजाल भूषण (१७) गज लक्ष्मी (१८) झमाल नख-शिख (१९) जेहल जस जडाव (२०) सिद्ध राय छत्तीसी (२१) संतोष बावनी (२२) सुजस छत्तीसी (२३) वचन विवेक पच्चीसी (२४) कायर-बावनी (२५) कृपण पचीसी (२६) हमरोट छत्तीसी (२७) स्फुट संग्रह।

इन ग्रंथो के अतिरिक्त बाँकीदास के लिखे डिंगल भाषा के बहुत से फुटकर गीत और २८०० के लगभग इतिहास विषयक छोटी-छोटी कहानियाँ (वार्ता) भी उपलब्ध हुई हैं।

बाँकीदास की गणना डिंगल भाषा के प्रथम श्रेणी के कवियों मे की जाती है। इनकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सरस है, वर्णन-शैली संयत

१७— हे बाँकीदास! तेरी सुविद्या रूपी सामग्री के कारण पृथ्वी पर बहुत बाँकपन (निरालापन) था। हे आशिया! आज उसे सीधी करके तू कहाँ चला गया? ॥१॥ विद्या और कुल मे विख्यात हे बाँकीदास! तेरे बिना राज-काज की प्रत्येक बात को किसके आगे जा कर कहूँ? ॥२॥

और स्वाभाविक है। इन्होंने नीति-उपदेश की बातें अधिक कही हैं जिनमें मौलिकता और चमत्कार विशेष दिखाई नही देता परन्तु वीररस की उक्तियाँ इनकी कहीं-कहीं बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं —

सूतो थाहर नींद सुख, सादूळौ बळवंत।
वन काटै मारग वहै, पग-पग हौल पडन्त ॥१॥
वाल घणाँ घर पातळा, आयौ थह मे आप।
सूतौ नाहर नींद सुख, पौहरौ दियै प्रताप ॥२॥
केहर कुम्भ विदारियौ, गजमोती खिरियाह।
जाँणै काळा जळद सूँ, ओळा ओसरियाह[१८] ॥३॥

बाँकीदास को अलकारो का अच्छा ज्ञान था। इसलिए अलकारों की बडी सुन्दर छटा इनकी रचना मे स्थान-स्थान पर दिखाई देती है। इनके मुख्य अलकार अप्रस्तुत प्रशसा, हेतु, उदात्त और समुच्चय हैं। अप्रस्तुत प्रशसा के तो इनको मास्टर हैंड ही समझना चाहिए—

गाज इतै उखेड गज, माँझळ वन तर मूळ।
जागै नहँ थह मे जितै, नख हाथळ सादूळ ॥१॥
सादूळौ वन मातियौ, खाटै पग-पग खून।
कायरडा इण काम नूँ, जबक कहै जबून ॥२॥
के दती शृगी किता, किता नखी वन जत।
समझाया दे दे सज़ा, सादूळै बलवन्त ॥३॥
मयँद धपावै मोतियाँ, हसो लोथिणियाँह।
रहै नहीं जुध रोकियौ, औ धाराँ अणियाँह[१९] ॥४॥

१८-बलवान सिंह अपना माद में सुखपूर्वक सोया हुआ है। पर उन वन के पास वाले मार्ग पर चलते हुए हाथी के मन मे पग पग पर धक्के पड रहे हैं ॥१॥ बहुत से घरों के मनुष्यों का नाश कर सिंह अपनी माद मे आया और सुख पूर्वक निद्रा में सो रहा। उसका प्रताप उसका पहरा देने लगा ॥२॥ सिंह ने हाथी का कुमस्थल विदीर्ण कर दिया जिससे गजमुक्ता निकल पडे। ऐसा प्रतीत होता था मानो काले बादल से ओले बरसे हों ॥३॥

१९ हे गज! जब तक सिंह अपनी माद मे जग न जाय और अपने पजे को ठीक न कर ले तब तक तू गर्जना कर ले और वन के वृक्षों की जडें उखाड ले ॥१॥ वन का स्वामी सिंह पग-पग पर अपराध करता है। कायर-जन्तु इस काम को कठिन बतलाते है ॥२॥ बलवान सिंह ने कितने ही दाँतवालों, कितने ही सींगवालों, और कितने ही नखवालों को सजा दे देकर सीधा किया ॥३॥ मृगेन्द्र भूखे हसों को मोतियों से तृप्त करता है। वह युद्ध में तलवारों की धारों और भालों की नोकों से रोका नहीं रुकता ॥४॥

नीति-उपदेश विषयक अपनी कविताओं मे बाँकीदास ने दुर्जनों, कायरों, मूँजियों, कुकवियो, चुगलखोरों इत्यादि के स्वभाव-लक्षणों को बतलाया है और उनकी बड़ी भर्त्सना की है जो यथार्थ है। परन्तु भावावेश में कही कही इतने आगे बढ़ गए हैं कि साहित्यिक शिष्टाचार को भूल बैठे हैं और वर्णन मे अश्लीलता आ गई है। परन्तु सौभाग्य से ऐसे स्थल बहुत अधिक नहीं है। सामान्यतः बाँकीदास की रचना में ऊँची रुचि और ऊँचे आदर्शों ही के दर्शन होते हैं। उदाहरण—

दोहे

नर कायर आँणै नही, लूण लिहाज लगार।
धोळै दिन छोड़ै धणी, अणी मिलै उण बार॥१॥
बादळ ज्यूँ सुर धनुष बिण, तिलक बिना दुज पूत।
बनौ न सोभै मौड़ बिण, घाव बिना रजपूत॥२॥
कीड़ी कण पावै नही, अदतारा घर आय।
ओर घरा सूं आणियौ, जिको गमाड़ै जाय॥३॥
दाता धन जेतो दियै, जस तेतौ घर पीठ।
जेतौ गुळ लै थाळियाँ, तेतौ जीमण मीठ॥४॥

झमाल

काळी भमरावळि कळी भूँहाँ आँकड़ियाँह।
कमळ प्रभात विकासिया, इसड़ी आँखड़ियाँह॥
इसड़ी आँखड़ियाँह किया म्रग वारणौ।
सर मनमथ गा हारि क अजण सारणौ॥
खूबी न रही काय खतगाँ खजनाँ।
नेही ह्वै मुनिराज विसारि निरंजनाँ[२०]॥

गवरीबाई का जन्म स० १८१५ मे डूँगरपुर शहर मे हुआ था। यह जाति की नागर ब्राह्मण थी। इनके माता-पिता का नाम अविदित है। इनका विवाह

२०. लूण=नमक। लगार=जरा भी। धोळै दिन=दिन ही में। धणी=स्वामी। अणी=सेना। उण=उस। बनौ=दूल्हा। मौड़=सेहरा। कीड़ी=चींटी। कण=दाना। अदतारा=कजूस। आणियौ=लाया हुआ। जिको=वह भी। गमाड़ै=खो देता है। गुळ=गुड़। गा=गये। सारणै=लगाने से। काय=कुछ भी। खतगा=बाण। नेही ह्वै=मोहित होकर। निरजना=ईश्वर।

पाँच-छह वर्ष की बहुत छोटी अवस्था में हो गया था।

गवरीबाई परन्तु विवाह के एक ही वर्ष बाद इनके पति का देहान्त हो गया। वैधव्य धर्म का पालन गवरीबाई से अच्छी तरह से हो सके इस उद्देश्य से इनके माता-पिता ने इन्हें पढाना-लिखाना प्रारम्भ किया और कुछ ही समय में यह पढ-लिखकर होशियार हो गई। कालान्तर में इन्होंने भागवत, गीता, आदि धार्मिक ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन कर लिया और कविता भी करने लग गई। अपना अधिकाश समय यह पूजा-पाठ और भजन कीर्तन में व्यतीत करती थीं। धीरे-धीरे इनकी ज्ञान-गरिमा और भगवत् भक्ति की महिमा चारों ओर फैल गई और हज़ारो की सख्या मे लोग इनके दर्शन करने तथा भजन सुनने के लिये इनके पास आने लगे। उस समय डूँगरपुर पर महारावळ शिवसिंह (स० १७८६ १८४२) राज्य करते थे जो बडे धर्मिष्ठ और प्रभु-भक्त राजा थे। उनके कानों में भी गवरीबाई की कीर्ति-कथा पहुची। एक दिन वे इनके घर गए और इनसे वार्तालाप कर बहुत खुश हुए। उन्होंने इनके लिए एक मन्दिर बनवा दिया जो अभी तक डूँगरपुर में मौजूद है।

कहते हैं कि अत समय मे गवरीबाई काशी चली गई थी और वहीं स० १८६५ के लगभग पचास वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान हुआ था।

गवरीबाई मीराँ का अवतार मानी गई हैं। उनकी तरह इन्होंने भी केवल फुटकर पद लिखे हैं जिनकी सख्या ६१० है। इन पदों मे इन्होंने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की महिमा बतलाई है। इनकी भाषा गुजराती, राजस्थानी तथा व्रजभाषा का मिश्रण है। इनके पदों पर कबीर, सूर आदि प्राचीन भक्त कवियों का प्रभाव स्पष्ट है। परन्तु साथ ही उनमे मौलिकता का सर्वथा अभाव भी नहीं है। सरलता और तन्मयता भी उनमें यथेष्ट पाई जाती है। पद गाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। उदाहरण—

प्रभु मोकूँ एक बेर दरसन दइये ॥
तुम कारन मैं भइ रे दिवानी, उपहास जगत की सहिये ॥
हाथ लकुटिया कंधे, कमळिया, मुख पर मुरली बजैये ॥
हीरा मानिक गरथ भडारा, माल मुलक नहीं चहिये ॥
गवरी के ठाकर सुख के सागर, मेरे उर अतर रहिये ॥

होरी खेले मदन गोपाल।

मोर मुगट कट कछनी काछै चन्चळ नैन विसाल ॥
सब सखियन में मोहन सोहत, ज्यूँ तारन बिच चंद उजाल ॥
चोवा चंदन और कुमकुम, उड़त अबीर गुलाल ॥
ताल मृदंग झांझ डफ बाजै, गावत धमत धमाल ॥
गवरी के प्रभु नटवर नागर, निरखी भई नेहाल ॥

ये सेवक जाति के ब्राह्मण जोधपुर नगर के निवासी थे। इनका जन्म सं० १८३० में और देहान्त सं० १८९२ में हुआ था।

मछाराम इनके पिता का नाम बख्शीराम और माता का रुक्मिणी था। ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह के कृपापात्र थे। कविता करना इन्होंने जोधपुर के तत्कालीन मंत्री भंडारी अमरसिंह के पुत्र किशोरदास से सीखा था, जैसा कि इन्होंने अपने 'रघुनाथ-रूपक' के आरम्भ में बतलाया है—

सदगुर प्रणाम किसोर, सचिव अमरेस सवाई।
करै पिता जिम कृपा, तिकण गुण समझ बनाई ॥

मछराम का लिखा अभी तक सिर्फ एक ग्रन्थ, रघुनाथ-रूपक, प्रकाश में आया है। कहते हैं कि इन्होंने दो-चार ग्रन्थ और भी लिखे थे जो इनके वंशवालों के पास सुरक्षित हैं। 'रघुनाथ-रूपक' डिंगल के छंदों का ग्रन्थ है। इसकी समाप्ति सं० १८६३ में हुई थी—

संवत् ठारै सतक वरस तेसठौ वखाणौ।
सुकल भाद्रवी दसम वार ससि हर वरताणौ ॥

ग्रन्थ नव विलासों में विभाजित है। प्रथम दो विलासों में वर्ण, गण, दग्धाक्षर, दुगण, अक्षर-त्याग, फलाफल, वयण-सगाई, काव्य-दोष, अखरोट, उक्ति के लक्षण-भेद, रसों के नाम-भेद-लक्षण इत्यादि का वर्णन है। शेष सात विलासों में डिंगल भाषा में प्रयुक्त ७२ जाति के गीतों का लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन है। गीतों के उदाहरण में भगवान् श्री रामचन्द्र की कथा कही गई है और इसीलिए ग्रन्थ का नाम रघुनाथ-रूपक रखा गया है—

इण ग्रंथ मो रघुनाथ गुण अर भेद कविता भाखियो।
इण हीज कारण नाम ओ रघुनाथ रूपक राखियो ॥

इसमें वर्णित श्री रामकथा का क्रम तुलसीकृत रामायण के अनुसार रखा गया है। कहीं-कहीं अन्तर भी है पर वह नगण्य है।

रघुनाथ-रूपक बहुत उपयोगी ग्रंथ है। डिंगल भाषा-साहित्य की ज्ञान प्राप्ति के लिए इसका अध्ययन अनिवार्य है। अन्य कविता की दृष्टि से भी काफी महत्त्व का है। इसके विषय में उत्तमचन्द भंडारी की निम्नलिखित राय उल्लेखनीय है—

आछौ कीध इमोह, रस लै साहित-सिंधु रो।
जग सह चित्रण जिसोह, रूपक राम पयोध रुख ॥
मनसाराम प्रबन्ध मझ, राखै मनसा राम ॥
कियौ भलो हिज काम कवि, कियो भलो हिज काम ॥

पाठकों के विनोदार्थ रघुनाथ रूपक में से एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है—

(वरण जथा)

पावडियाँ सहत नरम पद-पंकज,
नूपुर हाटक परम पुनीत ।
छक कडबन्ध सुघरा छाजै
पट अंगा राजै पुण पीत ॥१॥
पुणचा जडत जडाऊ पुणची,
कळ आजान भुजा केयूर ।
बैजंती वळ मुगत बिसाला
प्रगट हियै माळा भरपूर ॥२॥
कडमरी ग्रीवा श्रुत कुंडळ,
चंदण निलै तिलक दुत चंद ।
सिर सिरपेंच सुघट हीरा सद,
क्रीट मुगट सोभै सुखकंद ॥३॥
जळधर वरण भगत भव भंजण,
सीता मन रंजण सज साथ ।
मो मन आण सुजाण सिरोमण,
नित इण वाण वसौ रघुनाथ ॥४॥

(खडाऊँ सहित कोमल चरण-कमलों में स्वर्ण के पवित्र नूपुर हैं, कमर में श्रेष्ठ किंकिणी और शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र सुशोभित होता है ॥१॥ हाथ के पहुँचे पर जडाऊ पहुँची और सुन्दर आजानु भुजाओं पर भुजबन्ध शोभित

हैं। हृदय पर बड़े-बड़े मोतियों की वैजयंती माला है ॥२॥ ग्रीवा में कटसरी, कानों में कुंडल, (ललाट पर) मलयागिरि चंदन का त्रुतिवत तिलक और मस्तक पर अच्छे घाट के सच्चे हीरों का सिरपेच, किरीट और मुकुट सुशोभित होता है ॥३॥ भक्तों के भय को नाश करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों के सिरमौर मेघवर्ण राम और मन को प्रसन्न करनेवाली सीता के साथ हमेशा इस रूप से मेरे मन मे निवास करें ॥४॥)

कृष्णलाल

ये बूँदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधरलाल के वंश मे महंत श्री मोहनलाल के पुत्र थे। इन्होंने सं० १८७२ मे नायिका भेद का एक ग्रन्थ 'कृष्ण-विनोद' और सं० १८७४ में दूसरा ग्रंथ अलंकारो का 'रस भूषण' नाम का बनाया। महाराव राजा विष्णुसिंहजी की रानी राठौड़जी की आज्ञा से भक्तमाल की टीका भी इन्होंने लिखी थी। इनकी भाषा सानुप्रास और कविता मधुर है। एक उदाहरण देखिये—

सूखि सफेद भई विरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी।
अंग मलीन अंगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी॥
ताहि समै भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी।
कृष्ण कहै तब ही वर बाल कै, आय कढ़ी ततकाल त्रिवैनी॥

रामदान

ये जोधपुर राज्य-निवासी लालस गोत्र के चारण थे। इनका जन्म सं० १८१८ में और देहान्त सं० १८८२ में हुआ था। इनके पिता का नाम फतहदान था। सं० १८६५ मे जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने रामदान को तोलेसर नामक एक गाव दिया था। कुछ वर्ष तक ये मेवाड में भी रहे थे। इन्होंने 'भीमप्रकाश' नाम का एक ग्रन्थ रचा जिसमें मेवाड के महाराणा भीमसिंह के राजमहल, राज-दरबार, राजवैभव, गणगौर की सवारी इत्यादि का भव्य वर्णन है। दोहा, कवित्त आदि सब मिलाकर १७५ छन्दों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। बीच में कहीं-कहीं गद्य भी है। प्रारम्भ के ७० छन्दों में मेवाड का इतिहास वर्णित है। फिर महाराणा भीमसिंह का वर्णन शुरू होता है। इसकी भाषा डिंगल है। रचना इस तरह की है—

असंक सेन आरम्भ बोल नकीब बळोबल।
गहर थाट गैमरा चपळ हैमरा चळोबळ॥

भाळ तेज भळहळै ढळै विहुँवै पख चम्मर।
दिन दूलह दीवाण ए चढियौ छक ऊपर॥
तिण वार आप दरियाव तट विडग छडि जगपति त्रियौ।
दीवाण भीम गणगौर दिन एम राण आरम्भियौ[२१]॥

जवानसिंह

ये मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के पुत्र और महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म स० १८५७ में और देहान्त स० १८९५ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध रूपवती कृष्णकुमारी इनकी बहिन थी। ये कविता में अपना नाम 'ब्रजराज' लिखा करते थे। इन्होंने ब्रजभाषा मे अनेक कवित्त, सवैया, पद आदि बनाए जिनका सग्रह 'ब्रजराज पद्यावली' के नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पनाएँ सुघर और रचना-पद्धति सरस है। इनके काव्य मे आत्म-समर्पण की झलक है और उसमें शृङ्गार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है। उदाहरण—

उद्धव आय गये व्रज मे सुनि गोपिन के तन मे सुख छायौ।
आनद सौ उमगी सगरी चलि प्रेम भरी दवि आन वॅधायौ॥
पूछति है मन मोहन की सुधि बोलत ही द्दग नीर चलायौ।
देखि सनेह सखा हरि के घनश्याम वियोग कछू न सुनायौ॥

चडीदान

ये मिश्रण शाखा के चारण बूँदी के रहनेवाले थे। इनका जन्म स० १८४८ में और देहावसान स० १८९२ मे हुआ था। इनके पिता का नाम बदनजी था जो बूदी दरबार के बहु सम्मानित कवि थे। ये सस्कृत, पिंगल एव डिंगल के अच्छे विद्वान् और तत्वज्ञाता थे—

बदन सुकवि सुत कवि मुकुट अमर गिरा मतिमान।
पिंगल डिगल पटु भये धुरधर चडीदान॥
रवि साहित्य सरोज के रनसुम केरो लब।
तत्वबोध वैराग्य निधि अरु स्वधर्म पिक अब॥

इन्होंने पाच ग्रथ बनाए जिनके नाम ये हैं—

---

[२१] नकीब = ढोली। बलाबल = एक के बाद दूसरा। थाट = समूह। बिहुवै = दोनों दिन दूलह = नित नया।

(१) सार सागर (२) वलविग्रह (३) वंशाभरण (४) तीज तरंग और (५) विरुद प्रकास।

चंडीदान की कविता में भाव की नवीनता नहीं है। इनकी वर्णन-शैली भी प्राचीन ढंग की और प्रथाबद्ध है। परन्तु एक तो भाषा इनकी बहुत सरल एवं मधुर है। दूसरे, छन्दों की गति भी अच्छी है। उदाहरण—

घूमत घटा से घनघोर से घुमड़ घाख,
उमड़त आए कमठान तें अधीर से।
चपट चपेट चरखीन की चलाचल तें,
धूरि धूम धूसत धकात बलि वीर से॥
मसत मतंग रामसिंह महिपाल जू के,
डाकिनि डराए मद छाकिनि छकीर से।
साजे साटमारन अखारन के जैतवार,
आरन के अचल पहारन के पीर से॥

किशनजी

ये आढा गोत्र के चारण राजस्थान के प्रसिद्ध कवि दुरसाजी की वंश परम्परा में थे और मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह के आश्रित थे। इनके पिता का नाम दूल्ह था, जिनके छः पुत्रों में ये तीसरे थे। 'रघुवर-जस-प्रकास' में इन्होंने अपना वंश-परिचय इस प्रकार दिया है—

दुरसा घर किसनेस, किसन वर सुकवि महेसर।
सुत महेस खुँमाण, खानसाहिब सुत जिण घर॥
साहिब घर पनसाह, पना सुत दूल्ह सुकव पुण।
दूल्ह घरे षट पुत्र, दान१ जस२ किसन३ बुधोमण४॥
सारूप५ चमन६ सुरधर ऊतन, घणाट नगर पाँचेटियो।
चारण जात आढा बिगत, किसन सुकवि पिंगल कियो॥

किशनजी को हिन्दी तथा संस्कृत के रीति ग्रंथों का प्रौढ ज्ञान था और ये डिंगल-पिंगल दोनों में कविता करने के अभ्यासी थे। इतिहास की ओर इनकी रुचि विशेष थी। इतिहास-सम्बन्धी सामग्री को एकत्र करने के लिए जब कर्नल टॉड ने मेवाड़ में भ्रमण किया था तब ये उनके साथ थे और चारण-भाटों के घरों में पड़ी हुई बहुत-सी सामग्री इन्हीं के अविश्रान्त उद्योग

से कर्नल टॉड को प्राप्त हुई थी। इनकी लिखी सैकड़ों फुटकर कविताएँ, तथा भीमविलास और रघुवर-जस-प्रकास नामक दो ग्रथ प्राप्त हुए हैं। भीमविलास महाराणा भीमसिंह की आज्ञा से स० १८७६ मे लिखा गया था। इसमें उक्त महाराणा का जीवन-वृत्तान्त है। इतिहास की दृष्टि से यह ग्रथ बहुत उपयोगी है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रचना रघुवर-जस-प्रकास है। इसमे डिंगल के छन्दशास्त्र का विस्तृत विवेचन है। यह स० १८८१ मे पूरा हुआ था। इसमें हिन्दी, सस्कृत और डिंगल मे प्रयुक्त प्रधान प्रधान छन्दो के लक्षण बहुत सरल भाषा मे समझाए गए हैं और उदाहरणो मे भगवान रामचन्द्र का यशोगान किया गया है। मात्रा, गण, प्रस्तार, वैणसगाई, काव्य-दोष आदि पर लिखी हुई इनकी व्याख्याएँ वास्तव मे बहुत मौलिकता पूर्ण और अपने रग-ढग की अनुपम हैं। किशन जी का एक छप्पय यहाँ उद्धृत किया जाता है—

हय अरोह कहा लगत, सर्प सिर पै कहा सोहत।
कहा न दाता कहत, सिद्ध कह का को रोकत॥
नर सेवक कहा नाम, कवित के आदि वरत किहिं।
को घटते को कहत, वनिक सचत का कहि वहि॥
लख चलत खाग कहाँ लरत दल, दसरथ सुत कौ है वरन।
कवि क्रस्न इहै उत्तर कियौ, राम नाम जग उधरन॥

मेवाड़ की वर्तमान राजधानी उदयपुर से १३ मील उत्तर दिशा में मेवाड़ के महाराणाओं के इष्टदेव श्री एकलिङ्ग जी का मन्दिर है। जिस गाव मे यह मन्दिर अवस्थित है उसे आज कल कैलाशपुरी कहते हैं। दीनजी इसी गाव के निवासी थे। ये जाति के लोहार थे। इनके जन्म-मृत्यु सम्वत् का ठीक-ठीक पता नही है। परन्तु इनके ग्रथो से इनका रचना काल स० १८६३-८८ निश्चित होता है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हे काठियावाड़-निवासी बतलाया है जो भूल है। काठियावाड़ी ये नहीं, इनके गुरु थे जिनका नाम बाल गुरु था और जो गिरनार के रहनेवाले थे। इस विषय मे दीनजी स्वय एक स्थान पर लिखते हैं—

दीनजी

"गुरु स्थान गिरनार, हौ उदैपुर देस एकलिग वासी"

मेवाड के महाराणा भीमसिह दीनजी को बहुत मानते थे। इसलिए जब तक उक्त महाराणा जीवित रहे तब तक इन्होने मेवाड़ में निवास किया पर

बाद मे कोटे चले गए जहाँ एक दिन जब ये चंबल नदी पर स्नानार्थ गए हुए थे पानी में डूबकर मर गए। यह घटना सं० १८६० के आस-पास की है।

दीनजी प्रतिभावान कवि और योग-सिद्ध पुरुष थे पर पढ़े-लिखे विशेष न थे। इनकी भाषा बोल-चाल की राजस्थानी है। रचना आध्यात्मिक, ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध रखनेवाली और रहस्यवाद-पूर्ण है। उदाहरण—

जितना दीसै थिर नहीं, थिर है निरंजन नाम।
ठाट पाट नर थिर नहीं, नाही थिर धन धाम॥
नाही थिर वन धाम, गाम घर हस्ती घोड़ा।
नजर आत थिर नाहिं, नाहिं थिर साथ सजोडा॥
कहै दीन दरवेस, कहा इतने पर इतना।
थिर निज मन सत शब्द, नाही थिर दीसै जितना॥

बूझै कूप समद कूँ, अड़ियौ सनमुख आय।
तुव मे जल कितनोक है, हम कूँ देव बताय॥
हम कूँ देव बताय, समद कैहै सुन भाई॥
भोले जल मत भूल, नाहिं अपनी सर खाई॥
कहै दीन दरवेस, तुँ होवे तैसा सूझै।
सुनो सुग्यानी संत, कूप समद कूँ बूझै॥

ऊपर जिन कवियों का परिचय दिया गया है उनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि इस काल में हुए हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख आवश्यक है। कुंभकर्ण साँदू शाखा के चारण थे। इन्होने 'रतन रासौ' (स० १७३२) नामक एक ग्रंथ बनाया जिसमे मुग़ल बादशाह शाहजहाँ के विद्रोही पुत्रों की आपसी लडाई का वर्णन है। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह (स० १७३५-८१) अच्छे कवि थे। इनकी रची दो पुस्तकों का पता है, 'गुण सागर' और 'भाव विरही'। इनके अतिरिक्त इनके दो-चार और ग्रथो के नाम मिश्रबन्धु-विनोद मे दिये हुए हैं। मालूम नहीं, ये नाम कहाँ तक ठीक हैं। हरिदास भाट डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने 'अजीतसिंह चरित्र' और 'अमर बत्तीसी' (स० १७००) नामक दो ग्रथ बनाये जो काफी अच्छे हैं। किशनगढ के मीर मुंशी माधौदास कृत 'शक्तिभक्ति-प्रकाश' (स० १७४०) एक उत्तम रचना है। वहाँ के महाराजा राजसिंह (स० १७६३-१८०५) के भी तीन ग्रथ

मिले हैं—राजप्रकाश, वाहु-विलास और रसपाय नायक। ये रचनाएँ कला-समन्वित और ईश-भक्ति से ओत-प्रोत हैं। इनके राज्य में रूप-जी और वल्लभ जी दो अच्छे कवि हुए। रूपजी कृत 'रस रूप' (स० १७३६) नायका-भेद का ग्रन्थ है। वल्लभजी प्रसिद्ध कवि वृन्द के पुत्र थे। इनके दो ग्रन्थ मिले हैं, 'वल्लभ-विलास और वल्लभ-मुक्तावली'। लोकनाथ चौवे बूदी-निवासी ये थे। इनका रचना-काल सं० १७६० है। इन्होंने 'रस तरंग' और 'हरिवंश चौरासी' नामक दो ग्रन्थ वनाये। इनकी स्त्री भी कविता करती थी। नाजिर आनन्दराम रचित 'भगवद्‌गीता' (स० १७६१) प्रसिद्ध है। इसमे गद्य और पद्य दोनों हैं। प्रियादास प्रसिद्ध भक्त नाभादास के शिष्य थे। अपने गुरु के कहने से इन्होंने स० १७६६ मे भक्त माल की टीका बनाई थी। धर्मवर्द्धन (सं० १७००-८१) जैन साधु थे। इनके छोटे-मोटे २३ ग्रंथ उपलब्ध हैं जो जैन धर्म विषयक हैं। इन्होंने चारणी ढग की कविता भी की है। ये उन इने-गिने जैन पंडितो मे से हैं जिनकी रचना मे थोडी-सी साहित्यिकता भी पाई जाती है। भोज मिश्र (स० १७७७) बूँदी के राव राजा बुधसिंह के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'मिश्र शृ गार' नामक एक ग्रन्थ लिखा। पृथ्वीराज साँदू शाखा के चारण थे। इन्होंने 'अभय-विलास' की रचना की जिसमें जोधपुर के महाराजा अभयसिंह (स० १७८१-१८०६) का इतिहास वर्णित है। ग्रन्थ डिंगल भाषा का है। महाराज सुजानसिंह (स० १७६०) करौली के राज-घराने में पैदा हुए थे। 'सुजान-विलास' इनकी एक प्रसिद्ध रचना है। कुँवर कुशल और कनककुशल दोनो भाई थे। ये जैन थे और जोधपुर के रहने वाले थे। इन्होंने कच्छ के राजा लखपतसिंह (स० १७६६) के लिए 'लख-पत-सिंधु' नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बनाया। शिवसहायदास (स० १८०६) जयपुर-निवासी भद्र कवि थे। इनके 'शिव-चौपाई' और 'लोकोक्ति-रस-कौमदी' नामक दो ग्रथों का पता है। गोपीनाथ गाडण शाखा के चारण थे। इनका रचना-काल स० १८१० है। इन्होंने 'ग्रन्थराज' नामका एक ग्रन्थ बनाया जिसमे बीकानेर के महाराजा गजसिंह का वर्णन है। इस ग्रन्थ पर इन्हें लाखपसाव मिला था। ग्रन्थ डिंगल भाषा का है और उपयोगी भी है। मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह ने नागरीदास कृत 'इश्क-चमन' के जवाब में रसिक-चमन (सं० १८२५) लिखा जो एक छोटी पर सरस रचना है। श्री नाथ शर्म्मा जैसलमेर के रावल मूलराज के सभासद थे। सस्कृत, हिंदी और डिंगल के अच्छे कवि एव विद्वान थे। इनके चार ग्रन्थ मिलते हैं: मूल-

राज काव्य, अन्योक्ति मंजूषा, लोलिंबराज और मूलविलास । रसपुंजदास (सं० १८३०) सुकवि थे । इनके रचे चार ग्रन्थ कहे जाते हैं—प्रस्तार प्रभाकर, वृत्त विनोद, चमत्कार चन्द्रोदय और कवित्त श्री माताजी रा । करौली के गणेश कवि चतुर्वेदी ब्राह्मण थे । इनके रचे ग्रन्थो के नाम ये हैं—रस चन्द्रोदय, कृष्ण भक्ति चंद्रिका नाटक, सभासूर्य्य, नखशतक और फागुन माहात्म्य । उत्तम चंद भंडारी (सं० १८६०) जोधपुर के महाराजा मानसिंह के समकालीन थे । इन्होंने चार-पाँच ग्रन्थ बनाये जिनमें 'अलंकार-आशय' सर्वोत्कृष्ट है । भोमाजी बीठू शाखा के चारण थे । इनका रचना-काल सं० १८८० के लगभग है । इन्होंने डिंगल भाषा के तीन-चार ग्रन्थ बनाये जो बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय मे मौजूद हैं ।

इस काल की कवयित्रियों मे छत्रकुँवरि बाई (सं० १७३१), ब्रजदासी (सं० १७८०) रसिक बिहारी उपनाम बणीठणी जी (सं० १७८७), चंद्रसखी (सं० १८८०) और प्रतापबाला (सं० १८६०) मुख्य हैं ।

पूर्व मध्यकाल की तरह फुटकर काव्य-रचयिता इस काल में भी सैकड़ो हो गये हैं ।

पाँचवाँ प्रकरण

संत साहित्य

संत कबीर के सदुपदेशों का जनसाधारण ने अच्छा स्वागत किया और उनकी सफलता से उत्साहित होकर राजस्थान में भी कुछ संत-महात्माओं ने कबीर पंथ से मिलते-जुलते दादू पंथ, चरणदासी पंथ इत्यादि नवीन पंथों को जन्म दिया जो कालांतर में राजस्थान के सिवा अन्य प्रान्तों में भी बड़े लोक-प्रिय सिद्ध हुए। सैद्धान्तिक दृष्टि से इन नये पंथों के जन्मदाताओं की विचार-धारा और कबीर की विचार-धारा में विशेष अंतर न था। कबीर के समान इनकी उपासना भी निराकारोपासना थी और उन्हीं की तरह ये भी मूर्ति-पूजा, कर्मकांड आदि के विरोधी थे और प्रेम, नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा का गुण-गान करते थे। इन सन्तों के कारण राजस्थानी साहित्य की अच्छी उन्नति हुई और इस उन्नति में सबसे अधिक हाथ दादूपंथियों का रहा। कहना न होगा कि ये संत लोग न तो विशेष पढ़े-लिखे होते थे और न काव्य-निर्माण की ओर इनका विशेष ध्यान था। ये पहले भक्त, फिर उपदेशक और फिर कवि थे और जहाँ तक बन सकता अपने विश्वासों को सरल-से-सरल रूप में लोगों के समक्ष रखने का प्रयत्न करते थे। काव्य-कला संबंधी नियमों के निर्वाह एवं भाषा की प्रांजलता की अपेक्षा लोक-कल्याण की ओर इनका ध्यान विशेष रहता था। अतएव अपने धर्म-सिद्धान्तों के प्रचार तथा प्रसार की भावना से प्रेरित होकर जो कुछ भी इन्होंने लिखा उसमें कला पक्ष की अपेक्षा विचार पक्ष की प्रधानता है। निःसंदेह कुछ संत ऐसे भी हुए जिन्होंने विचार-प्रदर्शन के साथ साथ काव्य-चमत्कार और भाषा-लालित्य का भी पूरा खयाल रखा, पर ऐसे संतों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

दादू पंथ

दादूपंथ के जन्मदाता संत दादूदयाल थे। इस पंथ में मुख्यतः चार प्रकार के साधु पाए जाते हैं—खाकी, विरक्त, थाँभाधारी और नागा। इनमें जो खाकी हैं वे शरीर पर भस्म लगाते और सिर पर जटा बढ़ाते हैं। विरक्त कोपीन बाँधते, कषाय वस्त्र पहिनते और हाथ में तूंबी रखते हैं। ये भजन-कीर्तन,

ज्ञान-चर्चा आदि कर अपना समय बिताते हैं। नागे और थॉभाधारी सफेद वस्त्र पहिनते और खेती, नौकरी, वैद्यक आदि द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। नागे साधु बडे वीर, साहसी और रण-कुशल होते हैं। जयपुर के सैन्य-विभाग में एक नागा जमात आज भी विद्यमान है। विवाह करने की सभी प्रकार के साधुओं को मनाई है। गृहस्थों के लडकों को चेला बनाकर ये अपना पथ चलाते हैं। ये लोग न तो तिलक लगाते हैं, न चोटी रखते हैं और न गले में कंठी पहिनते हैं। ये प्राय. हाथ मे सुमिरनी रखते हैं और जब मिलते हैं 'सत्तराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। दादू पंथानुयायी निरंजन निराकार परब्रह्म की सत्ता को मानते हैं और मूर्त्तिपूजा में विश्वास नहीं रखते। ये अपने अस्थलो मे दादूजी तथा उनके प्रधान-प्रधान शिष्यों की वाणियॉ रखते हैं और उन्हीं का अध्ययन-अध्यापन करते रहते हैं। जयपुर से लगभग बीस कोस की दूरी पर नराणा नाम का एक छोटा-सा कस्बा है। इसी के पास भेराणे की पहाड़ी है जहॉ पर दादूदयाल ने शरीर छोडा था। दादू पथी इस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं और यही इनका मुख्य तीर्थ है। यहॉ पर दादूजी के उठने-बैठने के स्थान, कपड़े और पोथियॉ हैं, जिनकी पूजा होती है, प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी चौथ से द्वादशी तक एक भारी मेला लगता है और एक बहुत बड़ी सख्या मे दादू पंथी लोग एकत्र होते हैं।

दादूजी

सत दादू का जन्म स० १६०१ मे हुआ था। इनकी जाति के सबध में विद्वानों मे बहुत मतभेद हैं। कोई इन्हे ब्राह्मण, कोई मोची और कोई धुनिया बतलाते हैं। इनके जन्मस्थान का भी ठीक ठीक पता नहीं है। कहते हैं कि अहमदाबाद के किसी लोदीराम नामक एक ब्राह्मण को ये साबरमती नदी में बहते हुए एक सदूक मे मिले थे। उसीने इनका पालन-पोषण किया। इनके गुरु का नाम भी अज्ञात है। इनके शिष्य जनगोपाल ने 'दादू जन्मलीला परची' मे लिखा है कि एक दिन भगवान ने स्वय सामने आकर इनको दर्शन और उपदेश दिया था। तभी से ये विरक्त हो गये और साधु-सेवा तथा सत्संग मे अपना जीवन बिताने लगे। उन्नीस वर्ष की उम्र में ये अहमदाबाद से राजस्थान में चले आए और सॉभर, आमेर, कल्याणपुर, नराणा आदि स्थानों मे घूम-घूमकर अपने धर्म-सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। दादूजी ने विवाह भी किया था और इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम गरीबदास था जो इनकी मृत्यु के बाद इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। दादूजी का गोलोकवास स० १६६० के आस-पास नराणे में हुआ था।

दादूजी की 'वाणी' प्रसिद्ध है। इसमें इन्होंने प्रेम, गुरुभक्ति, सत्संग, माया, जीव, ब्रह्म आदि तत्वज्ञान सम्बंधी अनेकानेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनकी भाषा पिंगल है जो बहुत सीधी-सादी और सुलझी हुई है। कबीर की भाषा की तरह अटपटापन उसमें नहीं है। भाव-विचार की दृष्टि से इनकी रचना में बड़ी गंभीरता है। इनका एक पद और कुछ साखियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

भाई रे ऐसा पंथ हमारा
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अवरण एक अधारा।
वाद विवाद काहु सौं नाहीं मैं हूँ जग थैं न्यारा॥
समदृष्टी सूँ भाई सहज में आपहि आप विचारा।
मैं तैं मेरी यह मति नाहीं निरवैरी निरविकारा॥
काम कलपना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहज सँभारा॥

घी व दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़ै ते और॥१॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर में धरा न पाइये, जो कर दिया न होय॥२॥
कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान।
सतगुरु बपुरा क्या करै, चेला मूढ़ अजान॥
दादू देख दयाल कौं, सकल रहा भरपूर।
रोम-रोम में रमि रह्यो, तू जिनि जानै दूर॥
केते पारिख पचि मुये, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ॥
क्या मुँह ले हँसि बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥
सुरग नरक संसय नहीं, जिवण मरण भय नाहिं।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालै मन माँहि॥
कहताँ सुनताँ देखताँ, लेताँ देताँ प्रान।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसान॥
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल॥

ये जयपुर राज्य के नराणा नामक गाँव में सं० १६०० और सं० १६१० के बीच किसी समय पैदा हुए थे। इनकी जाति के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है।

बखनाजी

कोई हिंदू और कोई मुसलमान बतलाते हैं। परन्तु अधिक मत मुसलमान मानने के पक्ष में है। इनके मृत्यु-काल का भी निश्चित पता नहीं है। अनुमान किया जाता है कि सं० १६८० के बाद और सं० १६८७ से पूर्व ये ब्रह्मलीन हुए थे।

बखनाजी की 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसमें इनके पद, दोहे आदि संगृहीत हैं। ये गायन विद्या में प्रवीण थे। इसलिये इन्होंने गेय पद अधिक बनाए हैं जिनकी संख्या १६७ है। इनकी भाषा आम जनता की भाषा है। भाव बोधन की शैली क्लिष्ट न होकर बहुत सरल और सुबोध है। उदाहरण देखिए—

बखना हरि जल बरखिया, जल-थल भरे अनेक।
करम कठोरों माणसों, रोम न भीगो एक॥
पाणी में पथर रह्यौ, ऊपरि बँध्या सिवाल।
बखना ढाह्यों नीकळी, माँहि अगन की झाल॥
अपणी माया पार की, पलक एक में होइ।
अगनि दहै तसकर मुसै, देखत विनसै कोइ॥
पय पाणी भेळा पिवै, नहीं ग्यान को अंस।
तजि पाणी पय नै पिवै, बखना साधू हंस॥

रज्जबजी

ये जाति के पठान थे और जयपुर राज्य के सांगानेर नामक स्थान में सं० १६२४ के आसपास पैदा हुए थे। इनका असली नाम रजबअलीखाँ था। कहते हैं कि बीस वर्ष की उम्र में जब ये अपना विवाह करने के लिए सांगानेर से आमेर गये हुये थे तब वहाँ इनका दादूदयाल से साक्षात्कार हुआ और विवाह करने का विचार छोड़ उनके चेले हो गये। तभी से ये दादू जी के साथ रहने और कथा-कीर्तन, सत्संग आदि में अपना समय व्यतीत करने लगे। दादू जी के प्रति इनकी बड़ी श्रद्धा थी और वे भी इनको बहुत मानते थे। कहा जाता है कि दादूजी की मृत्यु से इन्हें संसार सूना प्रतीत होता था और जिस दिन उन्होंने शरीर छोड़ा उस दिन से इन्होंने भी अपनी आँखें बन्द कर ली और आजन्म न खोलीं। इनका देहान्त सं० १७४६ में सांगानेर ही में हुआ था।

रज्जबजी पढ़े-लिखे न थे, पर बहुश्रुत थे। इन्होंने 'बाणी' और 'सर्वंगी' नामक दो बहुत बड़े ग्रन्थ बनाए जिनसे इनकी कवित्वशक्ति, ज्ञानगरिमा और गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भाषा पिंगल और कविता भावमयी है। भक्ति एवं प्रेम के उद्‌गारों का इन्होंने बहुत ही हृदयग्राही और नैसर्गिक ढंग से चित्रण किया है। इनकी रचना के नमूने लीजिए—

पद

संतों मगन भया मन मेरा
अह-निस सदा एक रस लागा दिया दरीबै डेरा ॥टेक॥
कुल मर्याद मैंड सब भागी बैठा भाठी नेरा।
जाति-पाति कछु समझौ नाहीं किस कूं करै परेरा ॥१॥
रस की प्यास आस नहिं औरौं इहिं मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव या ही लै लागी पीवैं फूल घनेरा ॥२॥
सो रस माग्या मिले न काहू सिर साटै बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दे लीया होय धणी का चेरा ॥३॥

साखी

दादू दरिया राम जल, सकल संत जन मीन।
सुख सागर में सब सुखी, जन रज्जब लो लीन ॥१॥
सतगुरु चुम्बक रूप है, सिष्य सुई संसार।
अचल चलैं उनके मिलें, या में फेर न फार ॥२॥
विरही साबित विरह में, विरह बिना मर जाय।
ज्यूं चूने का कांकरा, रज्जब जल मिल जाय ॥३॥
नाव निरंजन नीर है, सब सुकृत बनराय।
जन रज्जब फूलै फलै, सुमिरन सलिल सहाय ॥४॥
रज्जब पारस परस तैं, मिटिगो लोह विकार।
तीन बात तो रहि गई, बांक धार अरु मार ॥५॥
भली कहत मानत बुरी, यहै परकृति है नीच।
रज्जब कोठी गार की, ज्यूं धोवै ज्यूं कीच ॥६॥
सिर छेदे हू वीर को, वीरपना नहीं जाय।
दीन हीनता ना तजै, पद विशेष हू पाय ॥७॥
रज्जब कोल्हू काल कै, सब तन तिली समानि।
सो उबरै कहि कौन विधि, जो आया बिचि घानि ॥८॥

गरीबदास

ये दादूदयाल के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके स्वर्गवास के बाद उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे। इनका जन्म स० १६३२ मे हुआ था। ये बहुत अच्छे पडित और गान-विद्या में निपुण थे। इनके रचे 'साखी' 'पद' 'अनभै प्रबोध' 'अध्यात्म बोध' आदि ग्रन्थ मिलते हैं। एक पद देखिए—

पद

नाद व्यद ले उरधै धरै।
सहज जोग हठ निग्रह नाही पवन फेरि घट माहै भरै ॥ टेक
त्रिकुटी ध्यान साधि नहिं चूके भौर गुफा क्यू भूलै।
द्वै सर साधि अनूप अराधै सुख सागर मे भूलै ॥१॥
इगला प्यगुला सुषमन नारी तिरवेणी सग ल्यावै।
नौसे नवासी फेरि अपूठा दसवें द्वार समावै ॥२॥
अरधै उरधै ताली लखे चन्द सूर सम कीन्हा।
अष्ट कमल दल माहे बिगसे ज्योति सरूपी चीन्हा ॥३॥
रोम रोम धुनि उठी सहज मे परचै प्राण सुपीवै।
गरीबदास गुरमुषि है बूझी जो जाणै सो जीवै ॥४॥

जगन्नाथदास

ये जाति के कायस्थ थे। स० १६४० के लगभग आमेर मे दादूजी के शिष्य हुए थे। दादूजी की इन पर बड़ी कृपा थी। प्राय. उन्ही के साथ रहा करते थे। बड़े योग्य और प्रतिभावान कवि थे। इनके 'वाणी' और 'गुण गजनामा' ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इनके लिखे दो और ग्रन्थों का भी पता है, (१) गीता सार और (२) योग वाशिष्ठ सार। इनकी रचना का नमूना देखिए—

मणियाँ सहज इकीस लै, षटसत माला पोइ।
जगन्नाथ मन सुरति सौं, रात-दिवस भजि सोइ ॥
मन की मेरे कलपना, तन निश्चल जगनाथ।
सुमिरन सो स्वासा रहै, चचल मन नहँ हाथ ॥

जनगोपाल

ये फतहपुर सीकरी के रहनेवाले जाति के वैश्य थे। अपने जन्मस्थान सीकरी मे ही इन्होंने दादूदयाल से गुरु-मत्र लिया था। इनका रचनाकाल स०१६५० के लगभग है। दादूपंथियों में इनके पद और छद बहुत प्रचलित है। इनके ग्रन्थ ये हैं—

(१) दादू जन्म लीला परची (२) ध्रुव चरित्र (३) प्रहलाद चरित्र (४) भरत चरित्र (५) मोहविवेक (६) चौवीस गुरुओ की लीला (७) शुक सवाद (८) अनन्त लीला (९) वारहमासिया (१०) भेट के सवैये-कवित्त (११) जखडी-काया प्राण सवाद (१२) साखी, पद इत्यादि।

इनकी कविता का थोड़ा-सा अंश नीचे उद्धृत है —

तोसी मैं स्वामी ह्वै आये। द्वारै सेवग तिन सुख पाये॥
अरु जव वीते समये दोई। ढुंढाहर की विनती होई॥
स्वामी गये सवनि सुष पाये। रमते नग्र नराणे आये।
वषनौ होरी गावत देख्यौ। गुरु दादू अपनौ करि पेष्यौ॥
कृपा करी तव ऐसी स्वामी। वचन वोलिया अतरजामी।
ऐसी देह रची रे भाई। राम निरजन गावौ आई॥
ऐमा वचन सुन्या है जवही। वषनौ दष्या लीन्ही तबही॥

ये ब्राह्मण कुल मे पैदा हुए थे और दादूजी के प्रधान शिष्यो म से थे इनका रचना-काल स० १६५० के आस-पास है। वहुत वडे सत और शास्त्र-वेत्ता थे। काव्य-रचना में भी निपुण थे। इनकी 'वाणी' एक वहुत बडा ग्रन्थ है। ये पहले वैष्णव थे और दादूपथी वाद में हुए थे। इसलिए इनकी रचना पर वैष्णव धर्म के सिद्धान्तो का प्रभाव भी पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है। इनकी भाषा बहुत सीधी-सादी और सरस है। उदाहरण—

जगजीवन

खीर नीर निरनै करै, पर उपगारी सत।
कहि जगजीवण साखि धर, पारब्रह्म को अत॥
यह सव सम्पत्ति जायगी, विपति पड़ेगी आय।
जगजीवण सोई भली, जै कोइ खरचै खाय॥

ये दादूजी के शिष्य जगजीवनजी के चेले थे। मिश्रबधु-विनोद में इनका समय स० १७१५ बतलाया गया है, जो अशुद्ध है। इनका ठीक समय स० १६५० और स० १६६० के मध्य मे है। इन्होंने गद्य मे मार्कंडेयपुराण का अनुवाद किया था जो काफी अच्छा है। ये पद्य-रचना भी करते थे। दो दोहे देखिए—

दामोदरदास

सगति सुरझै प्राणि सब चार वरण कुल सब्ब।
हरि सुमरण हित सूँ करै कारज होवै तब्ब॥

कोटि कोटि किल कीजिये जो कीजै सतसग ।
सतसगत सुमरण बिना, चढै न जिउ के रग ॥

ये गूलर (मारवाड) के रहनेवाले थे। रचना-काल स०१६६१ है। इनका लिखा 'सत गुण सागर सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसमें २४ तरगें हैं। दादूजी के चरित्र का अनेक छदों मे वर्णन किया गया है। बहुत उपयोगी रचना है। इसका साहित्यिक महत्व भी यथेष्ट है। एक सवैया यहाँ दिया जाता है—

माधौदास

ओसा मे इक भूसर सेवग, ता सुत सुन्दर नाम कहाई।
ता जननी सुत आइ गुरु ढिग, पाद-सरोजहि देख लुभाई ॥
सुन्दर के सिर हाथ धरयौ गुरु कानहिं मे निज मत्र सुनाई।
बालपने उपदेश दियो गुरु मात पिता घर तात रहाई ॥

ये फतहपुर-निवासी जाति के महाब्राह्मण (तारक व आचारज) थे और सतदास के चेले थे। इनका रचना-काल स० १६८२ है। सत्संगी और गुणाढ्य महात्मा थे। इनकी 'भीख बावनी' एक प्रसिद्ध रचना है। इसमे ५३ छप्पय हैं। नीति का यह एक छोटा पर अमूल्य ग्रन्थ है। भाषा इस ढग की है—

भीखजन

सम्वत सोला सह बरस, जब हुतो नियासी।
पोष मास पष सेत, हेत दिन पूरनमासी ॥
सुभ निषत्र गुन करयौ, अखिर जो धरयौ जु आरज।
कथ्यौ भीखजन जान, जाति द्विज कुल आचारज ॥
सब सतन सौं बिनती करै, औगुन मोहि निवारियौ।
मिलते सूँ मिलता रहहु अनमिल ,आक सवारियौ ॥

ये चमडिया गोत्र के अग्रवाल महाजन और दादूजी के बावन प्रधान शिष्यों मे से थे। इनके जन्म-काल का ठीक-ठीक पता नही है। इन्होंने जीवित समाधि ली थी। समाधि-समय स० १६९६ है। इनकी अठखभी की एक छतरी अभी तक फतहपुर में विद्यमान है। इन्होंने 'वाणी' रची थी जिसकी छद-सख्या बारह हजार है। इसी से ये 'बारा हजारी' भी कहलाते थे। रचना इस तरह की है—

संतदास

रैण छमाही हो रही, आया नाँही पीव।
सत सनेही कारणै, तलफै मेरा जीव ॥
विरहणि विछुटी पीव सौं, ढूढत फिरै उदास।
संतदास इक पीव बिन, निहचल नाँही वास ॥

ये बूसर गोती खंडेलवाल महाजन थे और जयपुर राज्यान्तर्गत द्यौसा नगरी में, जो जयपुर शहर से पूर्व दिशा मे १६ कोस पर है, सं० १६५३ में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम चोखा उपनाम परमानंद और माता का सती था। ये दोनों बडे धर्मात्मा, भगवद्-भक्त और साधु-महात्माओं का सत्कार करनेवाले व्यक्ति थे। कहते हैं कि टहटड़ा गाँव की ओर से घूमते हुए एक दिन दादूदयाल जब द्यौसा मे आये और सुन्दरदास के माता-पिता इन्हें लेकर उनके निवास स्थान पर गये तब दादूजी इनकी मुखाकृति से बहुत प्रभावित हुए और होन-हार समझकर इन्हे अपना चेला बना लिया। इस समय सुन्दरदास की अवस्था ६ वर्ष की थी। उसी दिन से इन्होंने अपना जन्म-स्थान तथा परिवार छोड दिया और जगजीवन नामक दादूजी के एक शिष्य की देख-रेख में गुरु के साथ रहने लगे। अपने 'गुरु-सम्प्रदाय' ग्रन्थ मे सुन्दरदास ने इस घटना का उल्लेख किया है—

सुन्दरदास

प्रथमहिं कहौं आपुनी बाता, मोहि मिलायौ प्रेरि बिधाता।
दादूजी जब द्यौसह आये, बालपनैं हम दर्शन पाये ॥
तिन के चरननि नायौ माथा, उनि दीयौ मेरे सिर हाथा।
स्वामी दादू गुरु है मेरौ, सुन्दरदास शिष्य तिन केरौ ॥

दादूजी के स्वर्गवास (सं० १६६०) के समय तक ये नराणे में रहे। तदन्तर अपने माता-पिता के पास द्यौसा चले आए और कुछ दिन वहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी चले गए। लग भग तीस वर्ष की आयु तक काशी में रहकर इन्होंने व्याकरण, साहित्य, वेदान्त, योग और षट्दर्शन के ग्रन्थो का मनन किया तथा भाषा काव्य के छद, रस, अलकारादि विविध अगो के विषय मे भी बहुत से ग्रन्थ पढे। वहाँ से लौटकर ये अपने गुरु भाई प्रयागदास के साथ फतहपुर मे रहने लगे।

सुन्दरदास बाल ब्रह्मचारी, बडे स्वरूपवान, विनोदप्रिय तथा मधुरभाषी थे। उनकी प्रकृति अत्यन्त सरल और उन्मुक्त हँसी बालकों की तरह भोली

थी। उच्चकोटि के दार्शनिक होते हुए भी दार्शनिकों का-सा रूखापन इनके स्वभाव में न था। सरल, निरभिमान तथा आडम्बर-शून्य स्वभाव के साथ-ही साथ स्वामीजी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था कि जिससे प्रत्येक मिलनेवाला प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी मनमोहक मुखश्री और सौम्य मूर्ति के दर्शन मात्र से एक प्रकार की पवित्रता एवं शान्ति का अनुभव होता था। स्वामीजी सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक तथा उन्नायक थे, और कहा करते थे कि शृङ्गार रसात्मक कविता कला की दृष्टि से चाहे कितनी ही उच्चकोटि की क्यों न हो, लोकहित साधन के विचार से तो विष ही है। केशवकृत रसिकप्रिया हिन्दी साहित्य मे रसों पर एक अद्भुत, अपूर्व एव अनूठा ग्रन्थ समझा जाता है पर सुन्दरदास की दृष्टि मे उसका कुछ भी मूल्य न था—

रसिकप्रिया रसमंजरी और सिंगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि॥
विषै बनाई आनि, लगत विषयिन को प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड, सराहैं नख सिख नारी॥
ज्यों रोगी मिष्टान्न, खाइ रोगहिं विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ, जु तौ रसिक प्रिया धारै॥

स्वामीजी को देशाटन का बड़ा शौक था। बिना किसी खास कारण के एक स्थान पर ये विशेष न रहते थे। प्रायः समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मध्यप्रदेश, मालवा आदि का इन्होंने कई बार पर्यटन किया था, और दादू पंथियों के स्थानों को देखा था। इससे इनके ज्ञान-भंडार की अच्छी अभि-वृद्धि हुई और अन्य भाषा-भाषियों के सम्पर्क में आने से अरबी, फारसी, पूर्वी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान हो गया। इनका नियम था कि जिस स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओं से अवश्य मिलते थे। उनके सत्संग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशों से उन्हे लाभान्वित करते थे। अपनी गुणग्राहिता के कारण दादूपंथियों के सिवा इतर धर्मावलम्बी भी इन्हे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते और इनकी ज्ञान-गरिमा, साधुता तथा रचना-पाटव की बड़ी सराहना करते थे।

सुन्दरदास कभी फतहपुर में, कभी मोरा में, कभी कुरसाने मे, और कभी आमेर में रहे पर अन्त समय मे ये सांगानेर में थे, जहाँ सं० १७४६ में इनका बैकुंठवास हुआ।

सुन्दरदास के कई शिष्य थे जिनमें दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास मुख्य थे। इन पाँचों के थाभों को बड़े थाभे कहते हैं। इनमे भी फतहपुर का थाभा प्रधान गिना जाता है। इसलिए ये 'सुन्दरदास फतहपुरिया' भी कहलाते हैं। इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तके, इनके पलग, चादर, टोपा आदि भी फतहपुर मे इनके थाँभाधारियों के पास सुरक्षित हैं। सागानेर मे जिस स्थान पर स्वामीजी का अग्नि-सस्कार हुआ, वहाँ पर उनके शिष्यो ने एक छोटा-सा चबूतरा तैयार कर उस पर एक छोटी-सी गुमटी बना दी थी जो स० १६६५ तक ठीक दशा मे रही पर बाद मे न मालूम किसी ने उसे तोड-फोड डाला और स्वामीजी के चरण-चिन्हो को भी उखाड कर फेंक दिया। इस छतरी में यह चौपाई खुदी हुई थी :—

सवत सत्रासै छीयाला, कातिक सुदि अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरसपतिवार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

इनके रचे ग्रन्थों के नाम निम्न हैं—

ज्ञान-समुद्र, सर्वांगयोग, पचेन्द्रिय चरित्र, सुख समाधि, स्वप्न-प्रबोध, वेद विचार, उक्त अनूप, अद्भुत उपदेश, पच प्रभाव, गुरु सप्रदाय, गुन उताति, सद्गुरु महिमा, बावनी, गुरुदया षटपदी, भ्रमविध्वंशाष्टक, गुरु कृपा अष्टक, गुरु उपदेश अष्टक, गुरु महिमा अष्टक, रामजी अष्टक, नाम अष्टक, आत्मा अचल अष्टक, पजाबी भाषा अष्टक, ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, पीर मुरीद अष्टक, अजब ख्याल अष्टक, ज्ञान झूलना अष्टक, सहजानंद ग्रथ, गृह वैराग्य बोध ग्रथ, हरिबोल चितावनी, तर्क चितावनी, विवेक चितावनी, पवगम छन्द ग्रथ, अडिल्ला छद ग्रथ, मडिल्ला-छद ग्रन्थ, बारहमासो, आयुर्बल भेद आत्मा विचार, त्रिविध अतःकरण भेद ग्रन्थ, पूर्वीभाषा बरवै ग्रन्थ, सवैया (सुन्दर विलास) साखी ग्रन्थ, फुटकर पद, कवित्त इत्यादि—

हिंदी साहित्य के निर्गुणोपासक भक्त कवियो मे सुन्दरदास का एक विशेष स्थान है। शान्तरस और वेदान्त विषयक कविता इनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इनकी भाषा पिंगल और वर्णन-शैली सरस, स्पष्ट एव साहित्यिक है। सत कवियो मे यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो दिग्गज विद्वान एव साहित्य-मर्मज्ञ थे और पद-साखियों के अतिरिक्त कवित्त-सवैया लिखने मे भी सिद्धहस्त थे। अत. रीतिकालीन कवियो की अभिव्यजना पद्धति पर रची हुई इनकी कविताओ का जितना औपदेशिक मूल्य है उतना ही साहित्यिक

भी। और यही कारण है कि उन्हे पढ़कर ज्ञान-पिपासु भक्तजन ही परितृप्त नही होते, बल्कि बड़े-बड़े काव्य कला-कौशल प्रेमी भी आनदित होते और झूमने लगते हैं। इनकी रचना के नमूने देखिए—

कवित्त

अपने न दोष देखै पर के औगुन पेखै
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसे काहू महल सवार राख्यौ नीके करि
कीरी तहॉ जाइ छिद्र ढूढत फिरतु है॥
भोर ही ते सॉझ लग सॉझ ही ते भोर लग
सुन्दर कहतु दिन ऐसे ही भरतु है।
पॉव के तरोस की न सूझै आगि मूरख कौं
और सां कहतु सिर ऊपर वरतु है॥

कामिनी को तन मानों कहिए सघन बन
उहाँ कोउ जाइ सुतो भूलि कैं परतु है।
कुञ्जर है गति कटि केहरि को भय जामैं
बेनि काली नागनांऊ फन कौ धरतु है॥
कुच है पहार जहाँ काम चोर रहे तहाँ
साधि कै कटाक्ष-बान प्रान कौ हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति ता मैं
राक्षस वदन खाउ खाउ ही करतु है॥

सवैया

घात अनेक रहे उर अतर दुष्ट कहै मुख सौ अति मीठी।
लोटत पोटत व्यघ्रहि ज्यौं नित ताकत है पुनि तहि की पीठी॥
ऊपर ते छिरकै जल आनि सु हेठ लगावत जारि अगींठी।
या महि कूर कछू मति जानहु सुन्दर आपुनि आँखिनि दीठी॥

तू ठगि कै धन और को ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै॥
हाकिम को डर नाहिंन सूझत सुन्दर एकहि बार निचौरै।
तू खरचै नहिं आपुन खाइ सु तेरिहि चातुरि तोहि ले बोरै॥

पद

मन कौन सौं लगि भूल्यौ रे ।
इन्द्रिनि के सुख देखत नीके जैसे सवरि फूल्यो रे ॥ टेक ॥
दीपक जोति पतग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥१॥
झूठी माया है कछु, नाहीं मृगतृष्णा मैं भूल्यो रे ॥२॥
जित तित फिरै भटकतौ, यौं ही जैसे वायु वधूल्यौ रे ॥३॥
सुन्दर कहत समुझि नहि कोई भवसागर हैं झूल्यौ रे ॥४॥

खेमदास

ये दादूजी की शिष्य परपरा में रज्जवजी के चेले थे। इनका रचना-काल काल स० १७४० के आसपास है। इन्होंने चार ग्रन्थ बनाए जो इनकी ज्ञान-गरिमा के अच्छे परिचायक हैं। इनकी भाषा प्रौढ और परिमार्जित है। कविता-शैली सघन और गभीर है। ग्रथों के नाम ये हैं कर्म-नर्म सवाद, सुख गवाद चितावणी योग सग्रह, और साखी। इनकी कविता का एक उदाहरण निम्न है। इसमे इन्होंने गुरु रज्जवजी का गुणगान किया है—

ग्यानवन्त गभीर सूर सावन सुलच्छन ।
पच पचीसी मेलि भरम गुन इद्रिय भच्छन ॥
दुरजन द्वै दल मोड़ि मोह मद मच्छर माया ।
खल खवीस सब पीस सीस धरि ईस सजाया ॥
मैमन्त मना गुर ज्ञान मैं खेम बुद्धि लै अरि हते ।
ध्यान अडिग धर धीर धुर जन रज्जव पूरे मते ॥

राघवदास

ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके गुरु का नाम प्रहलाददास था। इन्होंने 'भक्तमाल' नामक एक ग्रथ लिखा जो स० १७७० में समाप्त हुआ था। इसमें दादू पन्थ के प्रधान-प्रधान महन्तों के जीवन चरित्र वर्णित हैं। भाषा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा और कविता सरल तथा सारगर्भित है। दादू पथी बहुत से सन्तों का जीवन-इतिहास हमे इस भक्तमाल के द्वारा विदित होता है और इस विचार से यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। एक उदाहरण देखिए—

द्वीत भान करि दूर एक अद्वीतहि गायौ ।
जगत भगत पट दरस अवनि कै चारिक लायौ ॥

अपणां मत मजबूत थप्यौ अरु गुरू पक्ष भारी।
आन धर्म करि खंड अजा घट मैं निरवारी॥
भक्ति ज्ञान हठि साखिलौ सर्व सास्त्र पारहि गयौ।
संकराचारज दूसरौ दादू के सुन्दर भयौ॥

ये एक पठान के कुल में पैदा हुए थे। मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म संवत् १७०८ दिया है, जो सन्दिग्ध है। राघवदास कृत 'भक्तमाल' में लिखा है कि एक बार एक हरिणी का शिकार करते समय इनके मन में दया का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे हिंसात्मक कार्यों को छोड़कर ये सत्संग में लग गए। इन्होंने दादू पंथ को स्वीकार कर लिया और रात-दिन ईश्वर भजन में व्यतीत करने लगे। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं—

वाजीदजी

(१) अरिलें (२) गुण कठियारा नामा (३) गुण उत्पत्ति नामा (४) गुण श्री मुख नामा (५) गुण घरिया नामा (६) गुण हरिजन नामा (७) गुण नाव माला (८) गुण गज नामा (९) गुण निरमोही नामा (१०) गुण प्रेम कहानी (११) गुण विरह का अंग (१२) गुण नीसानी (१३) गुण-छन्द (१४) गुण हित उपदेश ग्रंथ (१५) पद (१६) राज कीर्तन। उदाहरण

डार छाँड़ि गहि मूल मानि सिख मोर रे।
बिना राम के नाम भलो नहि तोर रे॥
जो हमकू न पत्याय बूझि किहिं गाव में।
परिहाँ वाजीदा जप तप तीरथ वरत सबे एक नाम में॥

ये जयपुर राज्य की उदयपुर तहसील के जाखल नामक गाँव के पास ढाँणी में रहते थे। इनका रचना-काल सं० १६०० के आस पास है। ये जाति के चारण थे, पर दादूपंथ को स्वीकार कर लिया था। कवि होने के सिवा ये वीर और साहसी भी पूरे थे। इन्होंने लगभग १०० ग्रन्थ बनाए जिनमें 'सुन्दरोदय' इनकी सर्वोच्च रचना है। इसमें नागा जमात का वर्णन है। इनका एक पद्य देखिये—

मंगलराम

जै जै जै जग तार, निरंजन निज निरकारा।
सदा झिलमिले जोति, पुजि कहुँ वार न पारा॥
नूर तेज भरपूर, सूर सावंत हजूरा।
गुण विकार करि छार, लह्यौ निज आतम मूरा॥

मुद्रि सरूप अनूप पद, सद सभा निहचल मुदा।
मगल जग निस्तार कूँ, प्रगट रहै पलक न जुदा ॥

इसके अतिरिक्त दादूपंथियों में मोहनदास, रामदास, घडमीदास, नारायणदास, प्रयागदास, कान्हडदास, चतरदास, प्रहलाददास, टीलाजी, कल्याणदास, चैनदास, इत्यादि और भी अनेक अच्छे साहित्यकार हुए हैं।

चरणदासी पथ

यह पथ चरणदासजी से निकला है और कबीर पथ से बहुत मिलता-जुलता है। इस पथ के अनुयायियों में शब्द मार्ग बहुत प्रचलित है और गुरु चरणों का आश्रय लेना ही सर्वोच्च साधन मानते हैं। चरणदास ने मूर्ति-पूजा का खडन और निराकारोपासना का समर्थन किया था। पर आजकल उनके अनुयायी मूर्ति-पूजा भी करने लग गए हैं। चरणदासी साधु पीले वस्त्र पहिनते हैं, और ललाट पर गोपी चदन का पतला तिलक लगाते हैं। ये सिर पर पीले रग की पगड़ी बाँधते हैं, जिसके नीचे भी पीले रग की एक नोकदार टोपी होती है।

चरणदास

इनका जन्म मेवात प्रदेश के डहरा नामक ग्राम में स० १७६० के लगभग हुआ था। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण और कुछ दूसर बनिया बतलाते हैं। इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुजो था। जब ये सात वर्ष के थे तब इनके पिता घर छोडकर कहीं चले गए जिससे अपनी माता के साथ ये भी अपने नाना के घर दिल्ली में जाकर रहने लगे। कहते है कि वहीं १९ वर्ष की आयु में शुकदेव मुनि ने इन्हें शब्दमार्ग का उपदेश दिया। बारह वर्ष तक गुरुपदिष्ट मार्ग से साधन-अभ्यास कर बाद में चरणदास ने लोगों को उपदेश देना प्रारभ किया इन्होंने चरणदासी पथ चलाया और अपने पीछे ५२ शिष्य छोडकर स० १८३८ में परलोक सिधारे, जिनकी गद्दियाँ आज भी विभिन्न स्थानों में चल रही हैं। चरणदासजी ने १४ ग्रन्थों की रचना की। इनके नाम ये हैं—

(१) अष्टाग योग (२) नासकेत (३) सन्देह सागर (४) भक्ति सागर (५) हरि प्रकाश टीका (६) अमरलोक खड धाम (७) भक्ति पदारथ (८) शब्द (९) मन विरक्त करन गुटका (१०) राम माला (११) ज्ञानस्वरोदय (१२) दान लीला (१३) ब्रह्मज्ञान सागर (१४) कुरुक्षेत्र की लीला।

उदाहरण—

म सिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
चरणदास घायल किए तन मन बींधे प्रान॥
सतगुरु ऐसा सूरमा, करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का, ढहे भरम का कोट॥
कडुवा वचन न बोलिए, तन सों कष्ट न देय।
अपना सा सब जानि के, गने तो दुख हरि लेय॥

ये महात्मा चरणदास की शिष्या थी और उन्हीं के गाँव मे पैदा हुई थी। सं० १७५० और सं० १७७५ के बीच किसी समय इनका जन्म हुआ था। इन्होंने दयाबोध और विनयमालिका नामक दो ग्रन्थों की रचना की। दयाबोध की रचना सं० १८१८ मे हुई थी। इस सम्बन्ध मे इन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ मे लिखा है —

दयाबाई

संवत् ठारा मै समै, पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवी भयो ग्रन्थ सुभ रीति॥

दयाबाई की कविता के विषय हैं— गुरु-महिमा, प्रेम का अंग, सूर का अंग, सुमिरन का अंग इत्यादि। इनकी कविता मे दैन्य और वैराग्य की प्रधानता है और इन पर इनके उच्चादर्श तथा स्त्री सुलभ कोमलता की छाप लगी हुई है। इनके चार दोहे नीचे देते हैं—

प्रेम पंथ है अटपटो, कोई न जानत बीर।
कै मन जानत आपणो, कै लागी जेहिं पीर॥
निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्रान अधार।
नहिं संजम नहिं साधना नहिं तीरथ व्रत दान।
मात भरोसो रहत है, ज्यों बालक नादान॥
सीस नवै तो तुमहिं कं, तुमहिं सूँ भाखूँ दीन।
जो झगरूँ तो तुमहिं सूँ तुम चरनन आधीन॥

इनका जन्म सं० १८०० के लगभग मेवात प्रदेश के डहरा नामक गाँव मे एक दूसर वैश्य के घर मे हुआ था। दयाबाई की तरह ये भी महात्मा

सहजोबाई

चरणदास की शिष्या थीं। इनके पिता का नाम हरिप्रसाद बतलाया जाता है। सहजोबाई ने अपने गुरु चरणदास की बड़ी महिमा गाई है और उन्हें भगवान से भी ऊँचा माना है। इनकी रचना सरल एवं उल्लासपूर्ण है और उसमें प्रेम की प्रधानता है। इनकी कविता का नमूना देखिए—

प्रेम दिवाने जे भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर॥
साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रङ्क।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसङ्क॥
अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजारि।
सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार॥

रामस्नेही पथ

राजस्थान में रामस्नेहियों के मुख्य केन्द्र तीन हैं: शाहपुरा, खेड़ापा और रैण। शाहपुरे का रामस्नेही पथ रामचरणजी से चला है। इनके अनुयायी निर्गुण परमेश्वर को राम के नाम से मानते हैं और उसी का ध्यान करते हैं। ये मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं रखते। रामस्नेही साधु रामद्वारों में रहते हैं और भिक्षा माँगकर अपनी उदर-पूर्ति करते हैं। ये कपड़े नहीं पहनते, सिर्फ लंगोट बाँधे रहते हैं और ऊपर से चादर ओढ़ लेते हैं। पहले कोई-कोई साधु नंगे भी रहते थे, जो परमहंस कहलाते थे। ये प्रायः तुम्बी, लंगोट, चादर, माला और पोथी के सिवा कोई दूसरी वस्तु अपने पास नहीं रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते हैं। ये विवाह नहीं करते। किसी उच्च वर्ण के लड़के को अपना चेला मूँड लेते हैं और जो चेला सबसे पहले मूँडा जाता है उसी का गुरु की गद्दी पर अधिकार होता है। बड़े चेले को छोटे चेले नमस्कार करते और गुरुवत् समझते हैं। ये साधु रामद्वारों में रहते हैं जहाँ कथा बाँचते तथा भजन गाते हैं। यों तो सभी जातियों के लोग इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते हैं, पर अग्रवालों तथा महेश्वरियों की भक्ति इनके प्रति विशेष है। ये रामस्नेही साधु शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते हैं जहाँ प्रत्येक वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र बदि ६ तक मेला भरता है।

खेड़ापे का रामस्नेही पन्थ हरिरामदासजी से निकला है। हरिरामदास-जी का जन्म-स्थान सिंहथल (बीकानेर) था और इन्होंने सं० १८०० में बीकानेर राज्यान्तर्गत दुलचासर नामक गाँव में जैमलदास नाम के एक रामानन्दी वैष्णव साधु से दीक्षा ली थी। इनके एक शिष्य रामदासजी हुए।

इन्होंने खैडापे मे अपनी गद्दी स्थापित की । अतएव खैडापे के रामस्नेही राम दास जी को अपना आदि गुरु, हरिरामदासजी को आदि प्रवर्तक और जैमलदासजी को आदि आचार्य मानते हैं। इनके अनुयायियों की सख्या बीकानेर, जोधपुर, गुजरात और मालवे में अधिक है । रामदासजी स्वय गृहस्थ थे और अपने चेलों को भी उन्होंने गृहस्थ धर्म के पालन का आदेश दिया था । अपने शिष्यों के लिए किसी प्रकार का स्वरूप और वाना भी उन्होंने नियत नहीं किया । पर बाद मे इनके बेटे दयालदास और पोते पूर्ण दास ने रामस्नेहियो के विरक्त, विदेही, परमहस, प्रवृत्ति और घरवारी ये पाँच भेद कर दिए जो आज तक चले आते हैं । शाहपुरे के रामस्नेहियों की भाँति ये भी मूर्तिपूजा नहीं करते । रामद्वारे मे अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते हैं । पर यह प्रथा भी हरिरामदासजी से बहुत पीछे से चली है । ये साधु भग, तम्बाखू, गॉजा, मदिरा आदि किसी प्रकार का नशा नहीं करते और भक्षा-भक्ष का पूरा ध्यान रखते हैं । ये रात्रि मे भोजन नहीं करते और पानी को भी वार वार छानकर पीते हैं । खेडापे का गुरुद्वारा सिंहथल है । इन दोनों स्थानों पर होली के दूसरे दिन भारी मेला लगता है और साधु लोग भजन-कीर्तन तथा 'पचवाणी' की कथा करते हैं ।

रैण (मेडता) के रामस्नेही दरियावजी को अपना आदि गुरु मानते हैं। इनकी रहन-सहन तथा उपासना-पद्धति शाहपुर तथा खैडापे के रामस्नेहियों से मिलती है । इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है । वर्ष मे एक भारी मेला यहाँ भी होता है और इनके अनुयायी एक बहुत बड़ी सख्या मे एकत्र होते हैं ।

रामचरण

ये जयपुर राज्य के सोडा नामक गॉव के रहनेवाले बीजावरगी बनिये थे । इनका जन्म स० १७७६ मे माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार को हुआ था । इनके गुरु का नाम कृपाराम था जिनसे स० १८०८ मे इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी । स० १८२६ मे घूमते-घूमते ये भीलवाडे (मेवाड) मे आए और वहाँ से शाहपुरे गए जहाँ के राजाधिराज रणसिंहजी ने इनका अच्छा स्वागत किया और इनकी गद्दी स्थापित करवाई । इनका देहावसान स० १८५५ मे शाहपुरे मे हुआ । इनके २२५ शिष्य थे जिनमें से रामजनजी इनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए ।

रामचरणजी की 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसमें ८००० के लगभग छन्द हैं। इनकी कविता है तो तथ्यपूर्ण पर उसमें छंदोभंग बहुत है। उदाहरण—

> क्षुधा पिपासा उदर सँग, शीत उष्ण तन साथ।
> सो किसके सारे नहीं, ये कर्त्ता के हाथ॥
> ये कर्त्ता के हाथ और मनि व्याधि लगावैं।
> कैक स्वाद श्रृङ्गार अजक हैरान करावैं॥
> रामचरण भज राम कूँ पाँचों परबल नाथ।
> क्षुधा पिपासा उदर सँग शीत उष्ण तन साथ॥

> रामहि राम अखंडित व्यावत राम बिना सब लागत खारो।
> रामहि राम लियाँ मुख बोलत रामहि ज्ञान रु राम विचारो॥
> रामहि राम करै उपदेश हि रामहि जोगरू शिष्य पसारो।
> रामचरण इसे कोइ साधु है सो ही सिरोमणी प्राण हमारो॥

हरिरामदास

ये बीकानेर राज्यान्तर्गत सिंहथल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम भाग्यचंद था। ये बड़े कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी थे। और बहुत थोड़ी आयु में वेदान्त, ज्योतिष आदि में पारंगत हो गए थे। इन्होंने सं० १८०० में दुलचासर ग्राम, जो सिंहथल से सात कोस है, में जाकर जैमलदासजी से दीक्षा ग्रहण की थी। इनके योग-चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्होंने स्वरूपसिंह नामक एक निर्धन व्यक्ति को धनवान बना दिया था। इनका स्वर्गवास सं० १८३५ में हुआ था। इनके सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्य हुए जिनमें विहारीदासजी मुख्य थे, यही इनके बाद इनकी गद्दी के अधिकारी हुए। इन्होंने बहुत सी फुटकर साखियाँ और पद बनाए तथा छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे जिनमें 'नीसाँणी' इनकी सबसे प्रौढ रचना है। इसमें हठयोग, समाधि, प्राणायाम आदि की प्रक्रियाओं का वर्णन है। इनकी भाषा राजस्थानी और विचार उच्च हैं। उदाहरण देखिए—

> रे नर सतगुरु सौदा कीजे।
> इन सौदा में नफा बहुत हैं एक मना होय लीजे॥ टेर
> मात पिता सुत भ्रात सनेही चौरासी लख हीजै॥१॥
> जो कोई चाहे रामभक्ति कूँ गुरू की शरण गहीजै॥२॥
> गुरू बिनु भरम न भाजै भवें का कर्म न काल कटीजै॥३॥

गुरू गोविंद बिनु मुक्ति न जिव की कहियो वेद सुनीजै ॥४॥
जन हरिराम और सब कूकस राम शब्द सत बीजै ॥५॥

रामदास

इनका जन्म सं० १७८३ में जोधपुर राज्य के बीकोकोर नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के मेघवाल थे। इनके पिता का नाम शार्दूलजी था। बाल्यावस्था में इन्होंने थोड़ा-सा विद्याभ्यास किया और बाद में विरक्त होकर किसी योग्य गुरु की खोज में इधर उधर घूमने लगे। इन्होंने बारी-बारी से १२ गुरू किये पर किसी से भी सन्तोष न हुआ। अन्त में एक दिन एक सद्गृहस्थ के मुँह से हरिराम दासजी की वाणी सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए और सिंहथल (बीकानेर) में जाकर उनसे भेंट की। सुयोग्य पात्र समझ कर उक्त स्वामीजी ने इन्हें राम मन्त्र का प्रभाव तथा रामस्नेही पन्थ के नियम बतलाए। इस पर सं० १८०९ में इन्होंने रामस्नेही पथ को अंगीकार कर लिया और हरिरामदासजी के पास रहकर राम-नाम का जप करने लगे। सं० १८२१ तक ये सिंहथल में रहे पर बाद में जोधपुर की ओर चले गए और वहाँ खेड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की। यहाँ इनके सैकड़ों शिष्य हुए, जिन्होंने आगे चलकर रामस्नेही पथ के प्रचारार्थ बहुत काम किया। इनका गोलोकवास सं० १८५५ में ७२ वर्ष की आयु में खेड़ापे में हुआ।

रामदासजी ने गुरू महिमा, भक्तमाल, चेतावनी, जम फारगती, आदि ग्रन्थ तथा अगबद्ध अनुभव वाणी की रचना की जिसके दास, उदास, सम्भव और खुरबद ये चार भेद हैं। इनकी कविता का नमूना देखिए—

निरधन झूरै धन बिना, फल बिन नागरवेल।
रामा झूरै राम बिन, बिरही साले सेल ॥
कुजर झूरै बन कूं, सूवा अम्बा काज।
बिरहिन झूरै पीव कूं, कबै मिलो महराज ॥

दयालदास

ये रामदासजी के पुत्र थे और उनके बाद खेड़ापे की गद्दी के अधिकारी हुए थे। इनका जन्म सं० १८१६ में और स्वर्गारोहण सं० १८८५ में हुआ था। ये बड़े अनुभवी और सच्चरित्र महात्मा थे। इनके शिष्य पूरणदास ने अपनी बनाई हुई 'जन्म लीला' में इनकी बहुत प्रशंसा की है। कविता भी ये बहुत अच्छी करते थे। इनका बनाया हुआ 'करुणासागर' ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। इसके सिवा इनके रचे फुटकर पद भी बहुत से मिले हैं। इनकी कविता देखिए—

रामइया शरण की प्रतिपाल।
अब लगि करी सोई अब कीजै अपने घर की चाल।
जो सूरज परकासै नाहीं गत न कज विसाल॥
ससि नहिं अमी द्रवे जो माधव तो निपजै केम रसाल।
विरह कुमोदिनि जीवन सोई सब लाला सिर लाल।
ग्वाल बाल के समरथ स्वामी रामदास किरपाल॥

ये जोधपुर राज्य के जेतारण नगर के निवासी थे और सं० १७३३ में पैदा हुए थे। कुछ लोगों ने इन्हे जाति का मुसलमान (धुनिया) मान रखा है, जो निराधार है। क्योंकि न तो दरियावजी ने कहीं

दरियावजी

अपने ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख किया है और न इनके समकालीन शिष्यों में से किसी ने इनका मुसलमान कुलोत्पन्न होना लिखा है। दरियावजी के अनुयायियों में से आज भी कोई यह नहीं कहता कि ये मुसलमान थे। अपने आचार्य की जाति का ठीक-ठीक पता बतलाने में दरियाव पंथी अब असमर्थ हैं, पर वे मुसलमान नहीं थे यह कहने में सभी का मत एक है। हमारे खयाल से दरियावजी को मुसलमान लिखने की गलती सबसे पहले जोधपुर राज्य की सेन्सस रिपोर्ट (सन् १८६० ई०) तैयार करनेवालों ने की और उसी को सच मानकर लोगों ने इन्हे मुसलमान लिखना शुरू कर दिया है। इसके सिवा कुछ लोगों ने यह भी लिखा है कि दरियावजी की रुई पींजने की एक हाथली रैण में रखीहुई है, जिसके दर्शन करने के लिये साल में एक बार इनके अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में वहाँ एकत्र होते हैं। परन्तु यह भी गलत है। रैण में कोई हाथला रखी हुई नहीं है। दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है जिसके दर्शनार्थ चैत्र सुदि पूर्णिमा को लोग वहाँ इकट्ठे होते हैं।

दरियावजी के पिता का नाम मानजी और माता का नाम गीगाँबाई था—

पिता मानजी जान गीगों महतारी।
त्रिविध मेटण ताप आप लिया अवतारी॥

इनका जन्म-नाम दरियावजी था पर साधु होने के बाद से लोग इन्हे दरियासाजी कहने लग गए, जिसका आज कल दरिया साहब हो गया है। दरियावजी के गुरु का नाम पेमदास था जिनसे इन्होंने सं० १७६९ में दीक्षा ली थी। गुरु मन्त्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जेतारण में

रैण नामक गाँव में चले गए और वहाँ पर अपनी गद्दी स्थापित की जो अभी तक विद्यमान है। मारवाड़ के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतों में भी दरियावजी के रामस्नेहियों की संख्या काफी है। इनका स्वर्गवास सं० १८०५ में हुआ था।

दरियावजी को हिन्दी, संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था और काव्य-रचना में भी निपुण थे। कहते हैं कि इन्होंने 'वाणी' नामक एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा था, जिसमें १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे। पर आजकल तो इनकी बहुत कम कविताएँ मिलती हैं। रामस्नेहियों में यही एक ऐसे कवि हुए हैं जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना कवित्वपूर्ण कही जा सकती है। इनकी कविता के नमूने देखिए—

गुरु आए घन गरज करि, सब्द किया परकास।
बीज पडा था भूमि मे, भई फूल फल आस॥
जो काया कंचन भई, रतनों जड़िया चाम।
दरिया कहै किस काम का, जो मुख नाहीं नाम॥
बिरहिन पिउ के कारने, ढूंढन बन खँड जाय।
निसि बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय॥
दरिया बगुला ऊजला, उज्जल ही है हंस।
ये सरवर मोती चुगै, वाके मुख मे मंस॥
सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात॥
कंचन कंचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच॥
साध पुरुष देखी कहै, सुनी कहै नहिं कोय।
कानों सुनी सो झूठ सब, देखी साँची होय॥

रामस्नेही पन्थ के कुछ और कवियों के नाम ये हैं जैमलदास (सं० १७६०), संतदास (सं० १६८६-सं० १८०६), नारायणदास (सं० १८०६-५३), परशराम (सं० १८२४-६६), हरिदेवदास (सं० १८३५-६४), पूरणदास (सं० १८८५), अर्जुनदास (सं० १८६२) और सेवगराम (सं० १६००)।

बालकराम

इनका विशेष वृत्त नहीं मिलता। अपनी रची भक्तमाल की टीका में इन्होंने अपना थोड़ा-सा व्यक्तिगत परिचय दिया है जिससे मालूम होता है कि ये स्वामी रामानन्द की शिष्य परंपरा में सीताराम के चेले थे—

नारायण अगधरा ६देराय वतिराज
ता की पद्धति में रामानुज प्रतिकास है।
तासे पद्धति मे रामानन्द ता कौ पौत्र शिष्य
श्री पैहारी की प्रनाली में भयो सतदास है ॥
ता ही को बालकदास तास प्रेम जा कौ खेम
खेम को प्रह्लाददास मिष्टराम तास है।
मिष्टराम जू कौ शिष्य सौ बालकराम रची
टीका भक्तदाम गुण चित्रनी प्रकास है ॥

इनका रचनाकाल स० १८००-२० है। ये रामस्नेही साधु बहुत उत्तम कोटि के विद्वान और कवि थे। इन्होंने नाभाजी के भक्तमाल की टीका बनाई जिसका नाम 'भक्तदाम गुण चित्रनी टीका' है। यह नौ सौ से अधिक पृष्ठों का एक भारी ग्रथ है। टीका यह कहने मात्र को है। वास्तव मे यह एक स्वतंत्र रचना है। इसमे दोहा, छप्पय आदि कई प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है पर अधिकता चौपाइया छन्द की है। हिंदी के भक्त कवियो के विषय मे नाभादास ने अपने भक्तमाल मे जिन-जिन बातों पर प्रकाश डाला है उनके अलावा भी बहुत सी बातें इस में नई बतलाई गई हैं। इसलिए इसका ऐतिहासिक मूल्य भी यथेष्ट है। इसकी भाषा मे ऐसा प्रवाह और वर्णन मे ऐसी धारावाहिकता है कि ग्रन्थ को हाथ मे लेने पर पूरा पढे बिना छोडने को जी नहीं चाहता। यदि ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय तो इससे हिंदी की गौरव-वृद्धि निश्चित है। साथ ही सत-महात्माओ के अनेक तमाच्छन्न वृत्तों पर भी प्रकाश पडने की पूरी-पूरी आशा है। रचना का नमूना लीजिए—

अब कबीर की गाथा सुनियै आदि हु तें जो होई।
बड आरूढ मता जिस हितकर पक्षपात नहिं कोई ॥
रामानन्दहि सेवत एका वनिक तिया चित लाई।
नित दरसन स्वामी पैं आवै सीधा ल्यावै बाई ॥
पै ताकै मन पुत्र कामना प्रगट न मुख सूँ गावै।
स्वामी अंतरजामी जानी सो ताकै मन भावै ॥
तब मन ही मैं कीन्ह विचारा देहौं या कूँ पूता।
पै हरि पास हि आज्ञा लैऊँ यहु नारी अवसूता ॥

निरञ्जनी पंथ

यह पंथ हरिदास जी से चला है। इनके अनुयायी निरंजन निराकार की आराधना करते हैं। इनमें भी कुछ तो घरबारी और कुछ निहंग हैं। घरबारी गृहस्थियों के से कपड़े पहिनते और रामानन्दी तिलक लगाते हैं। निहंग खाकी रंग की गुदड़ी गले में डाले रहते हैं और मांगकर खाते हैं। कोई-कोई निरंजनी साधु गले में सेली भी बांधते हैं। पहले ये लोग मूर्ति पूजा नहीं करते थे, पर अब करने लग गए हैं। मारवाड़ राज्य में डीडवाने के पास गाढ़ा नामक एक स्थान है जहां हर साल फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है। इस अवसर पर इस पंथ के बहुत से साधु यहाँ इकट्ठे होते हैं जिन्हें हरिदासजी की गुदड़ी के दर्शन कराए जाते हैं। गाढ़ा निरंजनियों का प्रधान केन्द्र है। यहां इनके महंत और साधु रहते हैं। हरिदासजी के ५२ शिष्य थे जिनसे हरिदासोत, पूरणदासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थांभे स्थापित हुए। इनमें से बहुत से अभी तक विद्यमान हैं।

इनके जन्म, वंश, माता, पिता आदि का विवरण अंधकार में है। इनकी जाति के सम्बन्ध में भी मत की विभिन्नता है। कोई इन्हें बीदा राठौड़ और कोई जाट बतलाते हैं। परन्तु यह निश्चय है कि ये एक व्यक्तित्व संपन्न महात्मा और सहृदय कवि थे। इनके नीचे लिखे ग्रन्थों का पता है—

हरिदास

(१) भक्त बिरदावली (२) भरथरी संवाद (३) साखी (४) पद (५) नाम माला ग्रन्थ (६) नाम निरूपण ग्रन्थ (७) ब्याहलो (८) जोग ग्रन्थ और (९) टोडरमल जोग ग्रन्थ। इनका देहान्त सं० १७०२ के आसपास हुआ था। इनकी कविता का नमूना देखिए—

भूख दुख संकट सहै, सहै बिडाणा भार।
हरीदास मौनी बळद का सूं करै पुकार॥
घर आई निरभै भई, डाव पड्यो यूं होय।
हरीदास ता मार कूं, पासा लगै न कोय॥
लोहा जल सूं धोइए, तब लग काटी खाय।
हरीदास पारस मिल्यां, मूंघे मोल बिकाय॥

—

छठवाँ प्रकरण

आधुनिक काल (पद्य)

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल स्थूल रूप से सं० १६०० से प्रारंभ होता है। इस काल को मोटे ढंग से हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, (१) परिवर्तन और (२) उत्तर परिवर्तन। प्रारंभ के २०-३० वर्षों का समय परिवर्तन और उसके बाद से आज तक का उत्तर परिवर्तन कहा जा सकता है।

परिवर्तन काल में सब से बड़े कवि बूँदी के सूरजमल हुए जिनको चारण लोग अपनी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। निःसन्देह सूरजमल एक प्रतिभावान व्यक्ति थे। अपने युग के कवियों पर उनका इतना ही गहरा प्रभाव था जितना बंगाल के कवियों पर स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर का उनके समय में रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह सूरजमल की प्रखर प्रतिभा ने भी राजस्थान के तत्कालीन कवियों की मौलिकता नष्ट कर दी और उन्हें न पनपने दिया। छोटे-मोटे सैकड़ों कवियों की मौलिक प्रतिभा इनकी काव्य-धारा के प्रचंड प्रवाह में बह गई। सूरजमल की कविता इतनी भावपूर्ण, इतनी सुन्दर और इतनी उच्च कोटि की होती थी कि कुछ कवियों ने तो इन्हीं के भावों को ला-लाकर अपनी रचनाओं में उतारना शुरू किया और कुछ स्वतंत्र कविता करना छोड़ इनकी कविताओं को सुना-सुनाकर कीर्तिलाभ लेने लगे। छोटे-छोटे कई सूरजमल उस समय पैदा हो गये थे। कवि-गोष्ठियों में, राज दरबारों में, साहित्य-सभाओं में जहाँ देखो वहाँ सूरजमल का नाम सुनाई पड़ता था।

उत्तर परिवर्तन काल में सूरजमल का प्रभाव कुछ कम हुआ और यहाँ के कवियों ने अपना रंग-ढंग बदला। हिन्दी संसार में यह समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का था। भारतेन्दु जितने देशाभिमानी थे उससे कहीं अधिक ब्रज-भाषा-प्रेमी थे। इनके प्रभाव से राजस्थान में ब्रजभाषा का प्रचार बहुत बढ़ गया। ब्रजभाषा में कविता यहाँ के कवि बहुत पहले से करते आ रहे थे, पर तब राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों साथ-साथ चलती थीं। कुछ कवि ब्रजभाषा में और कुछ राजस्थानी में रचना करते थे और कुछ को इन दोनों में लिखने का अभ्यास था। परन्तु इस समय से राजस्थान के कवि अपनी

मातृभाषा को एक तरह से भूल ही गए। यहाँ तक कि चारण जाति के कवि भी जो राजस्थानी मे कविता करना अपना एकाधिकार समझते थे, इसे छोड़ बैठे। परन्तु भारतेन्दु का यह प्रभाव केवल भाषा तक ही सीमित रहा विषय-वस्तु पर उनका प्रभाव कुछ भी न पड़ा। उनकी राष्ट्रीय भाव-भावनाओं को रियासती वातावरण में पले हुए यहाँ के कवि ग्रहण न कर सके अधिकाश प्रेम, विरह, शृ गार, वसत, होरी, भक्ति, वैराग्य, छद, अलकार मदिरा-तम्बाखू की हानियाँ इत्यादि कुछ निश्चित विषयो पर ही अपनी शक्ति खर्च करते रहे। इसलिए कविता बिलकुल निष्प्राण हो गई। उसमें न भाषा की नवीनता रही, न भावों की।

कालान्तर मे जब ब्रजभाषा का जोर कुछ कम हुआ तब खड़ी बोली ने जोर पकड़ा। साथ ही राजस्थानी का भी पुनरुत्थान होना शुरू हुआ। फलत. राजस्थान के कवि इस समय ब्रजभाषा, खड़ी बोली, और राजस्थानी तीनों में रचना कर रहे हैं। इनमे से कुछ विशिष्ट कवियो का परिचय यहाँ दिया जाता है।

राजस्थान के चारण कवियों मे कविराजा सूरजमल की बहुत प्रसिद्धि है। ये चडीदान के बेटे थे। इनका जन्म सं० १८७२ मे बूँदी में हुआ था। इनके छह स्त्रियाँ थी पर किसी से कोई पुत्र पैदा नहीं हुआ, इसलिए इन्होने मुरारिदान को गोद लिया था। 'वशभास्कर' में सूरजमल, ने अपनी स्त्रियों के नाम ये बतलाए हैं—

सूरजमल

ढोला सुरजा विजयिका, जसा रु पुष्पा नाम।
नि गोविंदा षट प्रिया, अर्कमल्ल कवि वाम॥

सूरजमल बहुत स्पष्टभाषी एवं स्वतत्र प्रकृति के पुरुष थे। स्वभाव इनका इतना रूखा था कि लोग इनसे मिलना भी पसद नहीं करते थे। शराब भी ये बहुत पीते थे। परन्तु नशे मे इतने गाफिल नहीं हो जाते थे कि शरीर की सुध-बुध ही न रहे। कहते हैं कि नशे की हालत में इनकी कल्पना-शक्ति और भी तीव्र हो उठती थी और दो आदमी जो इनके दहिने बाएँ बैठे रहते बड़ी कठिनता से उस समय की कविताओं को लिख पाते थे। इनकी मृत्यु स० १९२० में हुई थी।

ये स्वभाव-सिद्ध कवि एव षट्भाषा-ज्ञानी थे और न्याय, व्याकरण आदि अनेक विषयों में पारंगत थे—

देखो चडीदान रा, सुत रो सुजस सुजाण ।
दोहा सुर माहे दुरस, वदियौ अबै वखाण ॥
चउदह विद्या चातुरी, चौसठ कळा चवात ।
मिमासा माम्मट वळे, पातजल हि पढात ॥
न्याय उदधि खेवट निरख, वैयाकरण विसेस ।
पालकाप्य नाकुल प्रभण, साकुन सास्त्र असेस[१]॥

इन्होने बहुत-सी फुटकर कविताऍ लिखी और चार ग्रथ बनाए जिनके नाम ये हैं.—

(१) वशभास्कर
(२) वीर सतसई (अपूर्ण)
(३) बलवत विलास
(४) छदो मयूख

इनमें वशभास्कर इनका सबसे बडा और प्रसिद्ध ग्रथ है। यह बूँदी राज्य का पद्यात्मक इतिहास है और दो बार प्रकाशित भी हो चुका है। भाषा इसकी पिंगल है। अपने पाडित्य तथा शब्द-भडार-प्रदर्शन के हेतु सूरजमल ने इसमें कई नये शब्द गढकर रख दिए हैं और अनेक स्थानों पर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश आदि भाषाओं के अप्रचलित एव कर्णकटु शब्दों का प्रयोग किया है जिससे भाषा मे कृत्रिमता और दुरूहता आ गई है। नमूना लीजिए—

कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये ।
अरिष्ठ के अपष्ठ वृन्द लोम कन्द उन्नये ॥
बनै अरी पलास कान अन्द नाग वल्लरी ।
क़लेज पीलु पर्णिका कसेरु तोरइ करी ॥

परन्तु वशभास्कर का ऐतिहासिक मूल्य यथेष्ट है। इसमें वर्णित घटनाऍ और विवरण बहुत कुछ सत्यता और वास्तविकता लिए हुए हैं।

इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रथ वीर-सतसई है जो अपूर्ण है। यह डिंगल भाषा में है। जब गोठड़ा के महाराज भीमसिंह बूँदी से युद्ध करने पर उतारू हो गए और बहुत समझाने-बुझाने पर भी न माने तो सूरजमल ने उनसे कहा कि खूब लडना, भागना मत। यदि बहादुर की तरह लड़ते हुए काम आए तो तुम्हारा नाम अमर कर दूँगा। फिर वीर-सतसई बनाना प्रारभ

[१]मुरारिदान, डिंगल कोश, पृष्ठ १९

किया। कोई ३६० दोहे बना पाए थे कि भीमसिंह युद्ध-स्थली को छोड़ भागे। इस पर सूरजमल ने वीर सतसई बनाना छोड दिया। कवि के नाते सूरजमल की कीर्त्ति को अक्षुण्ण रखनेवाली यह एक अपूर्व रचना है। वंशभास्कर से सूरजमल के ऐतिहासिक ज्ञान, उनके पांडित्य और उनकी अद्भुत वर्णन-शक्ति का पता लगता है। परन्तु उनकी असाधारण काव्य-शक्ति के अमर स्मारक वीर-सतसई के दोहे हैं। इन दोहों में किसी व्यक्ति विशेष का वर्णन नहीं है। वीरभाव की उपासना और उसकी पुष्टि इनका मुख्य मंतव्य है। इनमें सूरजमल का हृदय बोलता-सा प्रतीत होता है। इनकी भाषा भी सहज और प्राणवान है। दोहों का राजस्थान में बहुत प्रचार है। विशेष कर चारण कवियों पर इनका बहुत गहरा प्रभाव देखने में आता है।

इनके तीसरे ग्रन्थ 'बलवत-विलास' में रतलाम के महाराजा बलवतसिंह का चरित-वर्णन है और चौथा 'छंदो मयूख' छंद शास्त्र का एक बहुत सामान्य कोटि की रचना है।

सूरजमल वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। डिंगल भाषा के वीर रस के कवियों में इनकी टक्कर का दूसरा कवि कोई नहीं हुआ। इनकी कविता की लोकप्रियता का कारण इनकी अनुभूति की सत्यता और भाव की गंभीरता है। युद्ध का, रणभूमि का, सतियों का, वीरोन्माद का, वीर-वीरांगनाओं के हृदयस्थ भावों का इन्होंने ऐसा सजीव, मार्मिक और नैसर्गिक वर्णन किया है कि पढकर दिल दहल जाता है। वस्तुत. सूरजमल उस कोटि के कवियों में से है जो शताब्दियों में पैदा होते हैं। इनकी वीर रस की कविता के कुछ नमूने हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

दुमिला

दुव सन उद्दग्गन खग्ग ससग्गन अग्ग तुरग्गन वग्ग लई ॥
मचि रग उतग्गन दग्ग मतग्गन सज्जि रनग्गन जग्ग जई ॥
लगि कंप लजाकन भीरु भजाकन वाक कजाकन हाक बढी ॥
जिम मेह ससव्वर यो लगि अंबर चंड अडम्बर खेह चढी ॥१॥

(उदग्र खड्ग लेकर दोनों सेनाओं के सब लोगों ने घोड़ों की बागें उठाईं। उस युद्ध में युद्ध जीतनेवाले सजे हुए ऊँचे हाथियों का युद्ध हुआ। लज्जित होनेवाले और भागनेवाले कायरों को कॅपकॅपी लग गई। युद्ध करनेवाले

वीरों के वचनो की हाक बढी और सजल मेघ के समान भयकर आडबर से आकाश मे धूल चढी ॥१॥,

फहरक्कि दिसान दिसान बडे बहरक्कि निसान उडै बियरैं ॥
रसना अहिनायक की निकसैं कि पराफ्फल होरिय की प्रसरैं ॥
गजघट टनक्किय भेरि भनक्किय रग रनक्किय कोच करी ॥
पखरान झनक्किय बान सनक्किय चाप तनंक्किय ताप परी ॥२॥

(बडी और छोटी ध्वजाएँ फरककर दिशा-दिशा मे उडकर फैल गई, मानो शेष नाग की जिह्वा निकली है अथवा होली की ज्वाला फैलती है। हाथियो की घटा, रणभेरी और कवचो की कडियाँ बजीं। घोडो की पाखरो की झकार बाणों की झकार और धनुषो के खिंचने से भय हुआ ॥२॥

धमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन काल मचक्कन तोल कढ्यो ॥
पखरालन भार खुभी खुरतालन व्याल कपालन साल बढ्यो ॥
डगमग्गि सिलोच्चय शृ ग डुले झगमग्गि कृपानन अग्गि झरी ॥
बजि खल्ल तवल्लन हल्ल उभल्लन भुम्मि हमल्लन धुम्मि भरी ॥३॥

(युद्ध मे टक्कर लगने से भूमि मे लचक लगकर भूमि को धारण करने वाले वाराह के झुकने का ताल कढा। पाखरोवाले घोडो के भार से चुभी खुरतालो से शेषनाग के कपाल मे साल बढा। पर्वत हिलकर उनके शिखर डुलने लगे और तरवारों से चमकी हुई आग गिरी। उस हल्ले के बढाव मे खाल के ऊपर तबले (कुठार विशेष) बजकर भूमि हमल्लों से घूमने लगी ॥३॥,

मचि घोरन दोर दुओर समीरन जोर उमीरन घोर जम्या ॥
अभमल्ल उछाहन हड्ड हठी कछवाहन गाहन चाह क्रम्यों ॥
सुव जैत इतै भट देव सही करि स्वामि मही हित साग सज्यो ॥
दुहु ओर कुलाहक तोप दगी लगि भद्द बलाहक नद्द लज्यो ॥४॥

(घोडो की दौड से दोनो ओर का पवन चलकर अमीरों (सरदारों) का भयकर बल जमा। उस समय हठी हाडा अभयसिंह कछवाहों को मारने की इच्छा से चला। इधर जैतसिंह का पुत्र देवसिंह निश्चय ही अपने स्वामी (बुधसिंह) की भूमि के अर्थ सज्जित हुआ। दोनो ओर कोलाहल करनेवाली तोपे चलीं जिनसे भादो के मेघ की गर्जना लज्जित हुई ॥४॥

उततैं कछवाहन उग्र उछाहन बेग सु बाहन बग्ग लई ॥
बनि बुदिय बालम जग सु जालम सग हि सालम दौर दई ॥
परि रिट्टि कृपानन चड चुहानन गिद्धि उडानन गूद गहैं ॥
गन धीर गुमानन पीर प्रमानन बीर कमानन तीर बहैं ॥५॥

(उधर से बडे उत्साहवाले कछवाहों ने शीघ्र घोडा की बागे उठाई और उनके साथ ही युद्ध मे जुल्म करनेवाला सालमसिंह बूँदी का पति बनकर दोडा। भयकर चौहाणा के खड्गा के निरतर प्रहारो स उड़ते हुए गीधो ने गूदा ग्रहण किया। धीर पुरुषा के समूह के गुमान की पीड़ा का प्रमाण करने के लिए वीरा की कमानो से तीर चलते हैं ॥५॥,

बढि बुत्थिन बुत्थि छई वसुधा लगि लुत्थिन लुत्थि परैं प्रजरैं ॥
घट सेल धमाकन रग रमाकन हड्डु सु हाकन होस हरैं ॥
लखि खग्ग उदग्गन मग्ग लगी जुरि अच्छरि जग्ग प्रजापति ज्यो ॥
गल बाँह करैं करि बीर बरैं गमने गन गैवर की ग ति ज्यों ॥६॥

(माँस के टुकड़े बढकर भूमि भर गई और लोथ पर लोथ गिरकर जलने लगी। युद्ध मे क्रीडा करनेवाले वीरा के शरीरों पर भाला के धमाके होकर हाडा क्षत्रियो की हाक उनकी चाहना मिटाते हैं। उदग्र तलवारा को देखकर अप्सराएँ जिस प्रकार दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे गई उसी प्रकार इस युद्ध के मार्ग मे लगीं। वे गलबाँही करके वीरा को वरती हैं और उनका समूह हाथियो की चाल से चलता है ॥६॥)

दोहे

घोड़ा घर ढालाँ पटळ, भालाँ थभ बणाय।
जो ठाकर भोगै जमी, और किसूँ अपणाय ॥

(जो ठाकुर घोड़ा को अपना घर, ढालों को छत और भालों को खंभे बनाता है, वह जमीन का उपभोग करता है। उसे दूसरा कौन अपना सकता है?)

भाभी देवर नीद बस, बोलीजै न उताळ।
चवताँ घावाँ चूँ कसी, जै सुणसी त्रबाळ ॥

(हे भाभी! तुम्हारा देवर सोया हुआ है। जोर से मत बोलो। यदि वह नगाडों की आवाज सुन लेगा तो चूते हुए घावो से भी चौक पडेगा।)

लीला मौ पहली पड़ै, कीध उतावळ काय।
वाल्हा कवळा पाळियौ, पडतौ मूझ पुगाय॥

(हे अश्व! मेरे गिरने के पहले ही तूने जल्दी क्यों की? मैंने तुझे प्रेम भरे ग्रास खिलाकर पाला था। मुझे पहुँचा कर तो मरता।)

भाभी हूँ डोढी खड़ी, लीधा खेटक रूक।
थे मनुहारौ पावणा, मेडी झाल बँदूक॥

(हे भाभी! मैं ढाल-तलवार लेकर ड्योढी पर खडी हूँ। तुम बँदूक लेकर मेडी पर जाओ और मेहमानो (शत्रुओं) का स्वागत करो।

सुत धारा रज-रज थियौ, बहू बळेवा जाय।
लखिया डूँगर लाज रा, सासू उर न समाय।

(बेटा तलवारों से कटकर रज-रज हो गया और बहू सती होने को जा रही है। लज्जारूपी पहाड सासू के हृदय में नहीं समाता है। अर्थात् उसे इस बात पर लज्जा हो रही है कि उसका बेटा और बहू तो वीर गति को प्राप्त हो गये और वह अभी तक बैठी है।)

होवै घर घर हाय रे, रोवै बरबर नार।
भाभी देवर नूँ कहौ, अब तो रोस उतार॥

(हे भाभी! घर-घर मे हाय तोबा मची हुई है, स्त्रियाँ धाड मारकर रो रही हैं। देवर से कह दो कि वह अपने क्रोध को अब शान्त कर दे।)

ठकुराणी सतियाँ भणै, चून समप्पौ सेर।
चूडौ जिण दिन चाहसी, उण दिन केथ अबेर॥

(सती नारियाँ कहती है कि हे ठकुरानी! सेर भर आटा दे दो। जिस दिन सुहाग (युद्ध में लड़ने के लिए उनके पतियो की) को आवश्यकता होगी देरी नहीं लगेगी।)

पहर चउत्थै पोढियौ, गिणतौ फौज गरीब।
दोय घडी जक जीभ नूँ, वैरी आण नकीब॥

(हे ढोली! मेरा पति फौज को काटते-काटते अब इस चौथे पहर मे थोडा-सा आराम ले रहा है। हे वैरी! दो घडी तो अपनी जीभ को रोक।)

दिन दिन भोळौ दीसतौ, सदा गरीबी सूत।
'काकी कुंजर काटता, जाणवियौ! जेठूत।

(हे काकी ! जेठ दिन-दिन भोले और हमेशा गरीब दिखाई देते थे। आज जब हाथियों को काट रहे थे तब इनके असली रूप को पहचाना।)

और मुवा मुण ऑहडै, बरसाँ पाँच विचाळ।
घर मे मारड घातियौ, बटकै पूँचा बाळ॥

(दूसरों की मृत्यु की सूचना पाकर माँ ने अपने एक पञ्चवर्षीय बालक को युद्ध मे जाने से रोक दिया। इस पर उसने अपने दाँतो से पहुँचों को काट-काट कर घर ही पर आत्म-हत्या कर ली।)

स्वरूपदास

ये देथा चारण मिश्रीदान के पुत्र थे। इनके जन्म-समय का ठीक-ठीक पता नही है। मृत्यु-संवत् १६२० है। इनके पूर्वज ऊमरकोट के रहनेवाले थे जहाँ से आकर इनके पिता अजमेर इलाके के बडली गाँव में बस गये थे। इनका बचपन का नाम शकरदान था। इनको शिक्षा इनके चचा परमानन्द से मिली थी। परन्तु शिक्षा ग्रहण करते ही ये दादूपंथी साधु बन गये। इससे इनके चचा को बडी निराशा हुई। क्योंकि अच्छा विद्वान बनाकर वे इनके जरिये कहीं से अच्छी जीविका प्राप्त करना चाहते थे। इस बात पर दुख प्रकट करते हुए उन्होने इन्हे एक पत्र मे लिखा—

कीधौ थो कुण कौल, कह पाछौ कारूँ कियो।
बेटा थारो बोल, सालै निसदिन सकरा॥

ये संस्कृत, पिंगल, डिंगल आदि भाषाओ के अच्छे विद्वान और हिंदू धर्म-सिद्धान्तो के ज्ञाता थे। रतलाम, सीतामऊ आदि के राजदरबारों में इनका बड़ा मान-सम्मान था। सीतामऊ के तत्कालीन नरेश राजसिंह के पुत्र महाराज कुमार रत्नसिंह की तो इनके प्रति इतनी गहरी भक्ति थी कि उन्होंने अपने ग्रंथ 'नटनागर विनोद' के प्रारभ मे ईश्वर की वदना न कर पहले इन्हीं की वदना की है।

इन्होंने हृदयनायन, उक्ति चद्रिका, वृत्तिबोध इत्यादि छह ग्रंथ बनाए जिनमे पाडव यशेन्दु-चद्रिका इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रथ माना जाता है। इसमे महाभारत की कथा का सारांश है और सोलह अध्यायो मे समाप्त हुआ है। ग्रथारभ मे रस अलंकार, छद, आदि काव्यांगो पर भी संक्षेप मे प्रकाश डाला गया है। भाषा पिंगल है। राजस्थान मे इस ग्रथ का पहले बहुत प्रचार

था, पर अब उतना नहीं है। इसकी कविता बहुत सरल एवं परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषयगत लालित्य का इसमे अच्छा सयोग हुआ है। उदाहरण—

भीम को दियौ हौ विष ता दिन ब्रयौ हौ बीज
लाखा-गृह भए ताको अकुर लखायो है।
द्यूत - क्रीडा आदि विस्तार पाइ बडो भयौ
द्रौपदी-हरन भए मजरि सौं छायौ है॥
मत्स्य गाय घेरी जब पुष्प-फल-भार भरयौ
तैनै ही कुमन्त्र-जल सीचि के बढायौ है
विदुर के वचन-कुठार तै न कट्यौ वृच्छ
वा कौ फल पाकौ भूप! तेरी भेट आयौ है॥१॥

काली को सो चक्र कै फनाली को सो फूतकार
लोयन कपाली को सो भय कैसो है उदोति।
आयुध सुरेस को सो मानहु प्रलै को भानु
कोप को कृसानु किधौं मीचहू की मानौं सोति॥
सुयावन दुसानन दुर्मुख दुहृदगन
दाहिनो प्रमानि दीप्ति दूनी हुतै दूनी होति।
जेठ-ज्वाल-झाल है कि जिह्वा जमराज की सी
जहर हलाहल कै भीम की गदा की जोति॥२॥

नटनागर

ये सीतामऊ-नरेश राजसिंह के पुत्र थे। इनका जन्म स० १८६५ में हुआ था। बडे बलवान पुरुष थे और चित्र-कला, काव्य-कला एवं सगीत-कला के प्रेमी थे। कवि कोविदों का इनके यहाँ ताँता लगा रहता था। स्वय भी अच्छी कविता करते थे और कविता मे अपना नाम 'नट-नागर' लिखते थे। इनकी कविताओ के एक सग्रह, नट-नागर-विनोद, के तीन सस्करण निकल चुके हैं। अन्तिम सस्करण का सपादन प० कृष्णविहारी मिश्र द्वारा हुआ है। यह सब से अच्छा है। नटनागर का देहान्त स० १६२० मे अपने पिता के जीवन-काल ही मे हुआ। उस समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी।

ये डिंगल और पिंगल दोनो मे कविता करते थे। नट-नागर-विनोद मे इनकी दोनो भाषाओं की कविताएँ सगृहीत हैं। परन्तु डिंगल की अपेक्षा

इन्होंने पिंगल में अधिक लिखा है। इनकी रचना में भक्ति-शृंगार का प्राधान्य है। कवि के भावुक हृदय का भाव उसमें उज्ज्वल रूप से प्रस्फुटित हो उठा है। भाषा भी सरस और स्वाभाविक है। उदाहरण—

पहले तो प्रीति के पयोधि में पगाय दीन्हीं,
अब तो चुराये नैन हाय यों दहा करौ।
ता पै जो सुनावत हौ रूखे मुख ऐसी बात,
सुख जो चाहो तौ नेक दुख हू सहा करौ॥
या ब्रज बुराई देत देर न लगेगी देखौ,
नीति यों सुनाओ नेह गैळ की गहा करौ।
हमको न भाई नटनागर जगाई आप,
प्यारे जो कहाये तो न्यारे न रहा करौ॥

ये बूँदी-निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८७० में हुआ था। इनके पिता का नाम तुलाराम था। जीवनलाल बूँदी के महाराव राजा रामसिंह के प्रीति-पात्र थे। कई वर्षों तक बूँदी के प्रधान

जीवनलाल

मंत्री रहे और अपनी कार्य-कुशलता तथा ईमानदारी से राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया। सं० १९१४ के गदर में इन्होंने बूँदी राज्य का बहुत ही चतुराई से प्रबंध किया जिससे प्रसन्न होकर उक्त महाराव राजा ने इन्हें ताजीम, कटार, हाथी आदि प्रदान कर गौरवान्वित किया। इनका देहान्त सं० १९२६ में हुआ।

ये संस्कृत, हिंदी तथा फारसी के प्रौढ़ विद्वान थे। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने बारह हजार श्लोकों का 'कृष्ण खंड' नामक एक ग्रंथ बनाया था। इसके बाद इन्होंने संस्कृत-हिंदी के सात ग्रंथ और भी रचे थे: ऊषा-हरण, दुर्गाचरित्र, भागवत-भाषा, रामायण, गंगा-शतक, अवतार-माला और संहिता भाष्या।

इनकी रचना में भक्ति तथा शृंगार की प्रधानता है। भाषा सरल, एवं कविता रोचक और मधुर है। उदाहरण—

निरखि निरखि नैन सुनि सुनि गान बैन
हरखि हरखि मैन सैन रचिबौ करै।
फिरि फिरि फेरि लै लै इत उत आतु जातु
उठि उठि बैठि बैठि अति पचिबौ करै॥

सुनहु सुजान प्यारी आँखे अनियारी वारी
रोकै हू कहाँ लगि यो ता पै बचिवौ करैं।
उमगि अनग राग-रग मधु भृ ग भयो
तेरे सग-सग मन मेरो नचिवौ करैं॥

ये टाक शाखा के राव थे। इनका जन्म स० १८७० मे मेवाड़ राज्य के बसी नामक गॉव मे हुआ था। इनके पिता का नाम सुखराम था। जब ये बहुत छोटे थे तब सुखराम की मृत्यु हो गई जिससे बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इनकी देख-रेख की और पढा लिखा कर होशियार किया। स० १९०६ मे किसी घरेलू झगडे के सिलसिले मे ये उदयपुर आए। उस अवसर पर इनकी महाराणा स्वरूपसिंह से भेट हुई। प्रतिभावान देखकर उन्होंने इन्हे अपने पास रख लिया और कालान्तर मे मिहारी तथा डांगरी नामक दो गॉव, बैठक, पॉव मे सोना और रहने के लिए मकान देकर इनका मान बढाया। महाराणा स्वरूपसिंह के बाद के तीन महाराणाओं के समय मे भी इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही। इनका देहात स० १९५१ मे हुआ। उदयपुर के राजकीय दग्ध-स्थान, महासतियों में, महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की छतरी के सामने इनकी भी छतरी बनी हुई है।

बख्तावरजी

बख्तावरजी ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनों मे कविता करते थे और काव्य-कला मे निपुण थे। इन्होंने ग्यारह ग्र थ बनाए जिनके नाम ये हैं—

केहर-प्रकाश, रसोत्पति, स्वरूप-यश-प्रकाश, शम्भु-यश-प्रकाश, सज्जन-यश-प्रकाश, फतह-यश-प्रकाश, सज्जन-चित्र-चन्द्रिका, सचार्णव, अन्योक्ति-प्रकाश, सामत-यश-प्रकाश, और रागनियो की पुस्तक।

इनमे 'केहर-प्रकाश' इनका सबसे बडा और सर्व-श्रेष्ठ ग्र थ है जो प्रकाशित भी हो चुका है। यह स० १९३६ मे लिखा गया था। इसमे कमल प्रसन्न नामक एक वैश्या और उसके प्रेमी केसरीसिंह की प्रेम-कथा का वर्णन है। इसमे दस प्रकरण हैं और १४८६ छद। भाषा राजस्थानी है। कहानी रोचक और कलापूर्ण है। इसकी प्रशसा मे कही हुई किसी सहृदय पाठक की यह उक्ति उल्लेखनीय है—

श्रवणा नाहि सुणीह, निज नैणाँ दीठी नही।
वातॉ मुकुट वणीह, राव बखत रचना सरस॥

बख्तावरजी का एक फुटकर कवित्त हम यहाँ देते हैं—

जुरेई जंजीरन में द्वार को उदारता दे,
हले निज दल के सिंगार कहीजियतु है।
विकट जु घाटन पै महानद घाटन पै
सुगम कपाटन पै हूल दीजियतु है॥
'बखत' भनत भूमि पालन की रीति ये ही,
सेवना प्रचण्ड सो सदा ही लीजियतु है।
येक मतवारो होय अंकुश न माने तो का,
छिर्द दरबार गूंज हूल कीजियतु है॥

इनका जन्म सं० १८७३ के लगभग जोधपुर राज्य के जाखण-ग्राम के एक सुप्रसिद्ध भाटी परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम गोविंददास था। सोलह वर्ष की उम्र में इनका विवाह जोधपुर के

प्रताप कुँवरि बाई महाराजा मानसिंह के साथ हुआ। वैसे ईश्वर-भक्ति की ओर इनका झुकाव बाल्यावस्था ही से था, पर पति की मृत्यु (सं० १६००) के बाद से इनका मन सांसारिक कार्यों से बिलकुल उचट गया और अपना अधिक समय भगवद् भजन और पूजा-पाठ में व्यतीत करने लगीं। इनकी रहन-सहन सादी और प्रकृति सरल थी। राज्य की ओर से इन्हें कई गांव मिले हुए थे जिनकी आय का अधिकांश ये दान-पुण्य तथा साधु-सेवा में खर्च किया करती थीं। कवियों, विद्वानों और चारण भाटों को भी इन्होंने प्रचुर धन-दान दिया। इनका देहान्त सं० १६४६ में हुआ था।

प्रतापकुँवरि बाई ने कुल मिलाकर चौदह ग्रंथों का निर्माण किया जिनके नाम ये हैं—

(१) ग्यान सागर (२) ग्यान प्रकाश (३) प्रताप पच्चीसी (४) प्रेम सागर (५) रामचन्द्र नाम महिमा (६) राम गुण सागर (७) रघुवर स्नेह लीला (८) राम प्रेम सुख सागर (६) राम सुजस पच्चीसी (१०) रघुनाथजी के कवित्त (११) भजन पद हरजस (१२) प्रताप विनय (१३) श्री रामचन्द्र विनय (१४) हरिजस, गायन आदि।

इनकी भाषा पिंगल है जिसमें मँजे हुए और प्रति दिन उपयोग में आने वाले उर्दू-फारसी के शब्द स्वतन्त्रता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। कविता इनकी राम-भक्ति-पूर्ण और प्रसाद गुण से ओत-प्रोत है। उदाहरण—

अवधपुर घुमडि घटा रहि छाय ॥टेक॥
चलत सुमद पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय ॥१॥
दादुर मोर पपीहा बोलत दामिनि दमकि दुराय ॥२॥
भूमि निकुंज सघन तरुवर में लता रही लिपटाय ॥३॥
सरजू उमगत लेत हिलोरैं निरखत सिय रघुराय ॥४॥
कहत प्रताप कुवरि हरि ऊपर वार वार वलि जाय ॥५॥

गणेशपुरी

ये पदमजी चारण के पुत्र सं० १८८३ में जोधपुर राज्य के चारवास गाँव में पैदा हुए थे। इनका जन्म-नाम गुलजी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि 'वंशभास्कर' के रचयिता कविराजा सूरजमल का नाम सुनकर ये उनसे मिलने के लिए एक बार बूँदी गये। जिस समय ये उनके घर पहुँचे उस समय उनका एक नौकर द्वार पर बैठा हुआ था। उसने जाकर सूरजमल को सूचना दी कि एक चारण दरवाजे पर खड़ा है और आप से मिलना चाहता है। सूरजमल अपढ व्यक्तियों से प्राय: कम मिलते थे। उन्होंने नौकर से कहा—'जाकर पूछो कि वह पढा हुआ है या नहीं'। नौकर लपका हुआ बाहर आया और वही प्रश्न गुलजी से किया। सुनकर वे सुन्न रह गए, कुछ क्षण तक प्रस्तर-मूर्ति की तरह खडे रहे। फिर गर्दन हिलाकर बोले—'नहीं'। इस 'नहीं' की ध्वनि अंदर बैठे हुए कविराजा के कानों में पडी। वहीं से चिल्लाकर उन्होंने कहा—'सूरजमल अपढ चारण का मुँह देखना नहीं चाहता। तुम यहाँ से चले जाओ'। ये शब्द गुलजी को घाव कर गये। उन्हें लज्जा भी आई। फौरन वहाँ से लौट पडे। यह घटना उस समय की है जब इनकी उम्र २७ वर्ष की थी। यहीं से इनके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। ये साधु हो गए और अपना नाम बदलकर गणेशपुरी रख लिया। फिर काशी पहुँचे और लगभग दस वर्ष तक वहाँ रहकर हिन्दी-संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया।

काशी से लौटने के पश्चात् गणेशपुरी कुछ वर्षों तक राजस्थान में इधर-उधर घूमते रहे और अंत में मेवाड़ के गुणग्राही महाराणा सज्जनसिंह के आग्रह से मेवाड को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बना लिया। गणेशपुरी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य-कुशल व्यक्ति थे। इनके संपर्क से महाराणा सज्जनसिंह भी अच्छी कविता करने लग गए थे। संस्कृत, ब्रजभाषा एवं डिंगल का उच्चारण गणेशपुरी का बहुत शुद्ध तथा स्पष्ट होता था और

कविता पढने का ढग भी ऐसा प्रभावशाली होता था कि सुननेवाले झूमने लग जाते थे। साधारण कोटि की कविता भी जब इनकी जबान से निकलती तब उच्च कोटि की प्रतीत होती थी।

इनके रचे फुटकर कवित्त-सवैये और 'वीरविनोद' नामक एक ग्रथ राजस्थान मे बहुत प्रसिद्ध हैं। वीर-विनोद की भाषा पिंगल है। यह महाभारत के कर्ण-पर्व का पद्यानुवाद है। अनुवाद मे मौलिकता, भावो की स्पष्टता और शब्द-योजना के सौष्ठव का अच्छा आनद मिलता है। पर क्लिष्ट शब्दो की बहुलता के कारण प्रसाद गुण को कहीं-कहीं बडा आघात पहुँचा है। इनकी फुटकर कविताएँ भी वडी जोरदार, चमत्कारपूर्ण एव मार्मिक बन पड़ी हैं। पर प्रसाद की कमी इनमे भी है। और शायद यही कारण है कि काव्य-कला-कलित होते हुए भी इनका इतना प्रचार नही है जितना होना चाहिए। वास्तविक बात यह है कि गणेशपुरी की कविता के पीछे चेष्टा है, वह उनके हृदय की अनुभूति नहीं, मस्तिष्क की उपज है। अतः उनके भाव तक पहुँचने के लिए पाठक को भी काफी मानसिक श्रम करना पड़ता है। उदाहरण—

चाली नृप भीम पै कराली नृप-भीम चमू,
नक्र मुखी तोपन के चक्र-चरराटे व्हाँ।
आपनौ रु औरन को सोर न सुनात, दौर,
घोरन की पोरन के घोर घरराटे हाँ॥
मीर हमगीरन के तीर - तरराटे बर
बीरन- वपुच्छद के बाज बरराटे हाँ।
हूर - हरराटे धर - धूज धरराटे सेस
सीस-सरराटे कोल कध - करराटे हाँ॥

बाढी वीर हाक हर डाक भुव चाक चढ़ी,
ताक ताक रही दूर छाक चहुँ कोद मैं।
चौलि कै कुबोल हय तोल बहलोल खाँ पै,
वागो आन कत्ता राण पत्ता को विनोद मैं॥
टोप कटि टोपी लाल टोपा कटि पीत पट,
सीस कटि अग मिली उपमा सुमोद मैं।
राहू गोद मङ्गल की मङ्गल गुरु की गोद
गुरु गोद चन्द की रु चन्द रवि गोद मैं॥

ये बूंदी के दरबारी कवि थे। इनका जन्म सं० १८८७ में अलवर राज्यान्तर्गत राजगढ़ में हुआ था। जाति के राव थे। जब ये ४१ वर्ष के थे तब अलवर से बूंदी चले गए और आजीवन वहीं रहे।

गुलाबजी बूंदी के महाराव राजा रामसिंह ने इन्हें दो गाँव प्रदान किए थे और दुशाला, हाथी, ताजीम इत्यादि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई थी। ये बूंदी स्टेट कौंसिल तथा वाल्टर कृत राजपूत-हितकारिणी सभा के सदस्य थे और महकमा रजिस्टरी के भी हाकिम थे। इनका देहान्त सं० १९५८ में हुआ था।

गुलाबजी सिद्धहस्त कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इनके संसर्ग से कई लोग अच्छी कविता करना सीख गए थे, जिनमें बिड़दसिंह और चन्द्रकला बाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताएँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपा करती थीं जिससे राजस्थान के बाहर के लोग भी इन्हें जानते थे। कानपुर की 'रसिक-सभा' ने तो इन्हें 'साहित्य-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था।

इनका ब्रजभाषा और डिंगल दोनों भाषाओं पर समतुल्य अधिकार था। परन्तु अधिकतर ब्रजभाषा में लिखा करते थे। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) रुद्राष्टक (२) रामाष्टक (३) गंगाष्टक (४) बालाष्टक (५) पावस पच्चीसी (६) प्रेम पच्चीसी (७) रस पच्चीसी (८) समस्या पच्चीसी (९) गुलाब-कोष (१०) नाम चंद्रिका (११) नामसिंधु कोष (१२) व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१३) बृहद् व्यंग्यार्थ चंद्रिका (१४) भूषण चंद्रिका (१५) ललित कौमुदी (१६) नीति-सिंधु (१७) नीति-मंजरी (१८) नीति-चन्द्र (१९) काव्य-नियम (२०) वनिता-भूषण (२१) बृहद् वनिता-भूषण (२२) चिंता-तंत्र (२३) मूर्ख-शतक (२४) ध्यान रूप सवतिका-बद्ध कृष्ण चरित्र (२५) आदित्य हृदय (२६) कृष्णलीला (२७) रामलीला (२८) सुलोचना लीला (२९) विभीषण लीला (३०) दुर्गास्तुति (३१) लक्ष्मण कौमुदी (३२) कृष्ण चरित्र (३३) शारदाष्टक और (३४) कृष्ण चरित्र सूची।

गुलाबजी की रचना भाषा और कविता दोनों ही दृष्टियों से प्रशंसनीय है। इनकी भाषा बहुत सरल, कोमल और विशुद्ध ब्रजभाषा है। कविता कर्णप्रिय, सुरुचिपूर्ण और प्रभावोत्पादक है। और कला उसमें अपने प्रकृत सौन्दर्य के साथ विहार कर रही है। दो नमूने यहाँ दिए जाते हैं—

मृग से मरोरदार खंजन से दौर दार
चंचल चकोरन से चित्त चोर पाके हैं।
मीनन मलीनकार जलजन दीनकार
भवरन खीनकार अमित प्रभा के हैं॥
सुकवि गुलाब सेत चिक्कने विशाल लाल
श्याम के सनेह सने अति मद छाके हैं।
वरुनी विशेष वारे तिरछी चितौनी वारे
मैन बानहू तें पैने नैन राधिका के हैं॥

छैहैं बक मडली उमडि नभ मडल मे
जुगनू चमक ब्रजनारिन जरे हैं री।
दादुर मयूर झीने झींगर मचै हे सोर,
दौरि दौरि दामिनी दिसान दुख दै हैं री॥
सुकवि गुलाब ह्वै हैं किरचै करेजन की
चौंकि चौंकि चौपन सों चातक चिचै हैं री।
हसन लै हस उडि जै हैं ऋतु पावस मे
ऐ हैं घनश्याम घनश्याम जो न ऐ हैं री॥

ये बूदी के सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल के दत्तक पुत्र थे। इनका जन्म स० १८६५ में और देहान्त स० १९६४ में हुआ था। अपने पिता सूरजमल की तरह ये भी षट्भाषा-प्रवीण और प्रतिभावान कवि थे।

मुरारिदान "वशभास्कर" लिखते समय जब सूरजमल ने रावराजा रामसिंह के गुण दोषो का विवेचन करना प्रारम्भ किया तब रावराजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हे अपना ग्रथ अधूरा छोडना पडा। इसे सूरजमल की मृत्यु के बाद मुरारिदान ने पूरा किया। इसके अतिरिक्त इन्होने दो ग्रथ और भी बनाए थे डिंगल-कोष और वश समुच्चय। ये डिंगल और पिंगल दोनो मे रचना करते थे। कविता इनकी गभीर और सानुप्रास होती थी। उदाहरण—

मोहतम प्रबल निकदन प्रकास रूप
विघन विदारन को अतक स्वरूप जोउ।
पालन मे तत्पर कृपालु बिनु कारन ही
आसुतोस बरद अनादि काल ही तें दोउ॥
जा की कृपा वाक्य द्वारा मन को प्रकासैं भेद

सेवक मुरारि के हिये मैं पग धारो मोउ ।
गुरु को गनाधिप को पितु रविमल्ल जु को
सिव को सिवा को वानी रानी को प्रनाम होउ ॥

ये चौहाण राजपूत अलवर राज्य के किशनपुर गाँव के जागीरदार थे। इनका जन्म स० १८६७ मे हुआ था। कविता करना इन्होंने बूदी के राव गुलाबजी से सीखा था। ये बहुत अच्छे कवि एव गुणग्राही

बिडदसिह

पुरुष थे। इनके यहाँ कवि-कोविदो का जमघट लगा रहता था। ग्रन्थ तो इन्होंने कोई नही लिखा पर फुटकर कवित्त सवैये सैकडों की सख्या में रचे हैं। कविता मे ये अपना नाम 'माधव' लिखा करते थे। इनकी कविता शृङ्गाररस-प्रधान है और उसमे कला-पक्ष का निर्वाह खूब हुआ है। उदाहरण —

नहिँ गाजत बाजत दुदुभि है चपला न कढी तरवारि अली।
धुरवा न तुरग ये माधव चातक मोरन बोलन वीर वली॥
जलधार न जोर शिली मुख कौ धन है न मतगन की अवली।
बरखा न विचारि भटू शिव पै सजि साज मनोज की फौज चली॥

चद्रकला बाई उपरोक्त राव गुलाबजी के घर की दासी थी। इनका जन्म स० १९२३ मे और देहावसान स० १९६५ के लगभग हुआ था। यह विशेष पढी-लिखी नही थीं, पर कविता के मर्म को खूब समझती

चन्द्रकला

थी। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी जिससे इन्होंने सैकडो कवित्त-सवैये मुखाग्र कर लिए थे। राव गुलाबजी की तो प्राय सभी अच्छी-अच्छी कविताएँ इन्हें कठस्थ थी। इन्होंने गुलाबजी से कविता करना भी सीख लिया था। समस्या-पूर्ति का इन्हे विशेष शौक था। और इस कला मे थी भी बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई तरह से, कई रसो मे कर सकती थीं और काव्य-चमत्कार सभी मे एक-सा पाया जाता था। हिंदी के 'रसिक मित्र,' 'काव्य सुधाकर' इत्यादि पत्रों मे इनकी कविताएँ प्रायः छपा करती थीं। इनकी रचनाओ से मुग्ध होकर सीतापुर जिले के विसवाँ ग्राम के कवि-मडल ने इन्हे 'वसुन्धरा-रत्न' की उपाधि प्रदान की थी।

इन्होंने करुणाशतक, पदवी प्रकाश, रामचरित्र, महोत्सव प्रकाश इत्यादि पाँच-सात ग्रथ बनाए थे, परन्तु इनकी कीर्ति शृगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयो के कारण विशेष है। इनकी भाषा सालकार, सरस तथा व्यवस्थित है।

मृग से मरोरदार खजन से दौर दार
चचल चकोरन से चित्त चोर पाके हैं।
मीनन मलीनकार जलजन दीनकार
भवरन खीनकार अमित प्रभा के हैं॥
सुकवि गुलाब सेत चिक्कने विशाल लाल
श्याम के सनेह सने अति मद छाके हैं।
बरुनी विशेष वारे तिरछी चितौनी वारे
मैन बानहू तें पैने नैन राधिका के हैं॥

छैहैं वक मडली उमडि नभ मडल मे
जुगनू चमक ब्रजनारिन जरै हैं री।
दादुर मयूर भीने भींगर मचै हैं सोर,
दौरि दौरि दामिनी दिसान दुख दै हैं री॥
सुकवि गुलाब ह्वै हैं किरचें करेजन की
चौंकि चौंकि चौपन सौ चातक चिचै हैं री।
हमन लै हस उडि जै है ऋतु पावस मे
ऐ हैं घनश्याम घनश्याम जो न ऐ हैं री॥

ये बूदी के सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल के दत्तक पुत्र थे। इनका जन्म स० १८६५ मे और देहान्त स० १९६४ मे हुआ था। अपने पिता सूरजमल की तरह ये भी पट्भाषा-प्रवीण और प्रतिभावान कवि थे।

मुरारिदान "वंशभास्कर" लिखते समय जब सूरजमल ने रावराजा रामसिंह के गुण दोषो का विवेचन करना प्रारम्भ किया तब रावराजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हे अपना ग्रथ अधूरा छोडना पडा। इसे सूरजमल की मृत्यु के बाद मुरारिदान ने पूरा किया। इसके अतिरिक्त इन्होने दो ग्रथ और भी बनाए थे डिंगल-कोष और वश समुच्चय। ये डिंगल और पिंगल दोनो मे रचना करते थे। कविता इनकी गभीर और सानुप्रास होती थी। उदाहरण—

मोहतम प्रबल निकंदन प्रकास रूप
बिघन बिदारन को अतक स्वरूप जोउ।
पालन मे तत्पर कृपालु बिनु कारन ही
आसुतोस बरद अनादि काल ही तें दोउ॥
जा की कृपा वाक्य द्वारा मन को प्रकासैं भेद

सेवक मुरारि के हिये मैं पग धारो सोउ।
गुरु को गनाधिप को पितु रविमल्ल जु को
सिव को सिवा को बानी रानी को प्रनाम होउ॥

ये चौहाण राजपूत अलवर राज्य के किशनपुर गाँव के जागीरदार थे। इनका जन्म सं० १८६७ में हुआ था। कविता करना इन्होंने बूंदी के राव गुलाबजी से सीखा था। ये बहुत अच्छे कवि एवं गुणग्राही पुरुष थे। इनके यहाँ कवि-कोविदों का जमघट लगा रहता था। ग्रन्थ तो इन्होंने कोई नहीं लिखा पर फुटकर कवित्त सवैये सैकड़ों की संख्या में रचे हैं। कविता में ये अपना नाम 'माधव' लिखा करते थे। इनकी कविता शृङ्गाररस-प्रधान है और उसमें कला-पक्ष का निर्वाह खूब हुआ है। उदाहरण—

विड़दसिंह

नहिं गाजत बाजत दुंदुभि है चपला न कढी तरवारि अली।
धुरवा न तुरंग ये माधव चातक मोरन बोलन वीर बली॥
जलधार न जोर शिली मुख कौ घन है न मतंगन की अवली।
बरखा न विचारि भट्ट शिव पै, सजि साज मनोज की फौज चली॥

चंद्रकला बाई उपरोक्त राव गुलाबजी के घर की दासी थीं। इनका जन्म सं० १९२३ में और देहावसान सं० १९६५ के लगभग हुआ था। यह विशेष पढ़ी-लिखी नहीं थीं, पर कविता के मर्म को खूब समझती थीं। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी जिससे इन्होंने सैकड़ों कवित्त-सवैये मुखाग्र कर लिए थे। राव गुलाबजी की तो प्रायः सभी अच्छी-अच्छी कविताएँ इन्हें कंठस्थ थीं। इन्होंने गुलाबजी से कविता करना भी सीख लिया था। समस्या-पूर्ति का इन्हें विशेष शौक था। और इस कला में थीं भी बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई तरह से, कई रसों में कर सकती थीं और काव्य-चमत्कार सभी में एक-सा पाया जाता था। हिंदी के 'रसिक मित्र,' 'काव्य सुधाकर' इत्यादि पत्रों में इनकी कविताएँ प्रायः छपा करती थीं। इनकी रचनाओं से मुग्ध होकर सीतापुर जिले के बिसवाँ ग्राम के कवि-मंडल ने इन्हें 'वसुन्धरा-रत्न' की उपाधि प्रदान की थी।

चन्द्रकला

इन्होंने करुणाशतक, पदवी प्रकाश, रामचरित्र, महोत्सव प्रकाश इत्यादि पाँच-सात ग्रंथ बनाए थे, परन्तु इनकी कीर्ति शृंगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयों के कारण विशेष है। इनकी भाषा सालंकार, सरस तथा व्यवस्थित है।

वस्तुतः हिंदी की कवयित्रियों में कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता किसी ने प्रदर्शित नहीं की जितनी इन्होंने की है। यह करुण रस के लिखने में भी सिद्धहस्त थीं। विषाद की एक हृदय-वेधक रेखा इनके करुणा-शतक में चित्रित देख पड़ती है। इनके दो सवैये यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

नख से सिख लौं सब साजि सिंगार छटा छवि की कहि जात नहीं।
सग लाय अली न लली ललचाय चली पिय पास महा उमही॥
कहि 'चद्रकला' मग आवत ही लखि दौरि तिया पिय बाह गही।
नहिं बोल सकी सरमाय लली हरषाय हिये मुसकाय चली॥

बाजत ताल मृदग उमग उमग भरी सखिया रँग बोरी।
साथ लिए पिचकी कर माहि फिरै चहुँधा भरि केसर घोरी॥
'चद्रकला' छिरकै रँग अगन आपस माहि करै चित चोरी।
श्री वृषभानु महीपति-मदिर लाल-लली मिलि खेलत होरी॥

ये आशिया शाखा के चारण जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) के आश्रित थे। इनका रचना-काल स० १६४० है। इनके पिता का नाम भारतीदान था। डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि बाकीदास इनके पितामह थे। इन्होंने 'जसवत जसोभूषण' बनाया जो हिंदी के अलकार-ग्रन्थो में सबसे बडा है। इस पर इन्हें 'कविराजा' की पदवी के साथ लाखपसाव मिला था।

मुरारिदान

'जसवन्त जसोभूषण' ८५२ पृष्ठो का एक भारी ग्रन्थ है। इसका लघु रूप 'जसवत भूषण' है जो ३५१ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। ये दोनो ग्रथ मारवाड स्टेट प्रेस, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुए हैं। 'जसवन्त जसो भूषण' में मुरारिदान ने अलकारों के नामो को ही उनका लक्षण माना है और उदाहरण में अपने आश्रयदाता महाराजा जसवन्तसिंह का यशोगान किया है। इसमे सदेह नही कि इसके लिखने में इन्होंने हिन्दी-सस्कृत के बहुत से प्राचीन ग्रंथो से सहायता ली है। परन्तु नाम से ही लक्षण की कल्पना करने से अनेक स्थानो पर खींचातानी का आश्रय लेना पडा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नही हुई है। इन्होंने अतुल्य योगिता, अनवसर तथा अपूर्वरूप ये तीन नये अलंकार बनाए हैं और प्रमाण को अलकार ही नहीं माना है।

ग्रन्थ की रचना-शैली और विषय-विवेचना कलापूर्ण एव हृदयग्राही है और इससे मुरारिदान के साहित्य विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। उदाहरण—

गोकुल जनम लीन्हौ, जल जमुना को पीन्हौ,
सुवल सुमित्र कीन्हो, ऐसो जस-जाप है।
भनत 'मुरार' जाके जननी जसोदा जैसी,
उद्धव ! निहार नद तैसो तिंह बाप है॥
काम-स्याम ते अनूप तज बृज-चद-मुखी,
रीझे वह कूबरी कुरूप सौ अमाप हैं।
पचतीर-भय को न बीर नेह-नय को न
बय को न, पूतना के पय को प्रताप है॥

सुर-धुनि-धार घनसार पारवती-पति,
या बिधि अपार उपमा को थौभियतु है।
भनत 'मुरार' ते विचार सौ विहीन कवि,
आपने गॅवारपन सौ न छौभियतु है॥
भूप-अवतस, जसवत ! जस रावरो तो,
अमल अतत तीनों लोक लौभियतु है।
सरद पून्यौ-निसि जाए हस को हैं बधु,
छीर-सिंधु-मुकता समान सौभियतु है॥

ऊमरदान

ये जोधपुर राज्य के ढाढरवाडा ग्राम मे स० १९०९ मे पैदा हुए थे और जाति के चारण थे। इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का मेघराज था। ये तीन भाई थे :नवलदान, ऊमरदान और शोभा-दान। बाल्यावस्था मे माता-पिता का देहान्त हो जाने से घर पर इनकी ठीक तरह से देख-रेख करनेवाला कोई नहीं रह गया था जिससे ये बहुत उदड हो गए और मौजीराम नामक एक रामसनेही साधु के बहकाने मे आकर रामसनेही पथ को अगीकार कर लिया। कोई १९ वर्ष की उम्र तक ये रामसनेहियो की मडली मे रहे। बाद मे उनका साथ छोडकर वापस गृहस्थ बन गए और रामसनेही पथ का छिद्रोद्घाटन करने लगे।

ऊमरदान बहुत सरल प्रकृति के पुरुष थे और वेश-भूषा से पूरे किसान दिखाई पड़ते थे। ये खूब प्रसन्न रहते और सबसे हँसकर मिलते-जुलते थे। यदि कोई इन्हे पूछता कि तुम्हारा मकान कहाँ है तो ये कहते—

दुकान है दुकान मा, मकान ना मकान मा।
उठाय लट्ठ अट्ठ जाम, मैं फिरा धमा-धमा ॥

ऊमरदान अच्छे कवि थे। इसलिए जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यों के राज दरबारों मे इनका अच्छा आदर होता था। इनका देहान्त स० १९६० मे हुआ था।

इनकी रचनाओं का सग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमें 'भजन को महिमा' 'अमल रा ओगण' 'दारू रा दोस' इत्यादि ४० से अधिक फुटकर प्रसग हैं। भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। बाल्यावस्था मे जब कि मनुष्य के सस्कार बनते और दृढ होते हैं ऊमरदान रामसनेहियो के साथ रहे। इसलिए क्या इनकी भाषा, क्या रचना-शैली और क्या विषय-सामग्री सभी पर रामसनेही पथ का रग है। रचना इनकी बुरी तो नही है, पर थोडी-सी फूहडता उसमें है। और यही कारण है कि शिक्षित समुदाय की अपेक्षा निम्न वर्ग के लोगों मे उनका प्रचार अधिक है। उदाहरण—

पद

वणियो नहीं आछौ काम, वीर यूंही बीती बेहड़ली ॥
फन्दा मे मोडा रे फॅसगो, रुळगो रेहडली।
भेक धारता कीदी भूँडी, कुवधा केहडली ॥१॥
मात पिता की छोडी मोवत मोजाँ मेहड़ली।
सात जात मोडा सू साधी नाहक नेहड़ली ॥२॥
दूध दही खाया दूजा रा, दीपी देहडली।
मरिया सूँ सूनी मिल जासी, खूनी खेहड़ली ॥३॥
ग्यान विना थे युही गमाई, ऊमर ओहडली।
छल सूँ बाजी हारयौ छी छी, छेला छेहडली[१] ॥४॥

कुडलिया

भेख बिगाड़े जगत नैं, जगत बिगाडे भेख।
ओ लै बाबा अमलड़ो, दुनिया मे सुख देख ॥

---

१. बेहडली = आयु। मोडाँरे = रामस्नेही साधुओं के। भेक = भेष, साधु होना। कुवधाँ = बदमाशिया। केहडली = बुरी। मेहडली = भोगी। देहडली = काया। खेहडली = धूल। ओहडली = व्यर्थ। छेहडली = अतिम

दुनिया मे सुख देख तार आवला तीसी।
सतगुरु को परसाद सुधामद घूटन सीखी॥
सोफी सबद सुणाय चोर रग देत चिगाडै।
वैरागी नैं जगत जगत नैं भेख विगाडै[31]॥

ये सिंढायच कुलोत्पन्न जाति के चारण थे। इनके जन्म-मृत्यु सवत का ठीक-ठीक पता नहीं है। रचनाकाल स० १६६५ है। ये डूगरपुर के

किशनजी

महारावळ उदयसिंह के आश्रित थे। उनके कहने से इन्होने एक ग्रथ बनाया जिसका नाम 'उदय प्रकाश' है—

किये तीन बेरा हुकम, उदयसिंह नृप एह।
कविता छन्द प्रबन्ध क्रम, किसना ग्रन्थ करेह ॥७॥
सुधा रूप यह वचन सुन, हित धरि हृदय हुलास
कर्यौ ग्रन्थ भाषा किसन, प्रगट सु उदय प्रकास ॥८॥

उदय-प्रकास ऐतिहासिक काव्य है जो चारण-भाटा की प्रथा-बद्ध रीति पर लिखा गया है। दोहा, कवित्त, पद्धरी त्रोटक आदि सब मिलाकर ४५५ छन्दा मे यह समाप्त हुआ है। इसमे महारावळ उदयसिंह का जीवन चरित वर्णित है। इसकी भाषा पिंगल है। ग्रन्थ इतिहास का है और इतिहास ही की दृष्टि से लिखा गया है, पर साहित्यिक छटा भी इसमे स्थान-स्थान पर अच्छी दिखाई देती है। उदाहरण—

चपक कदब अब जबु वो गुलाब वृन्द
केतकी रु केवरे चमेली पुष्प छावे हैं।
दाडिम अनार दाख सेवती जसूल केते
मोगरे नरगी नीबू ग्राम कूँ निसावे हैं।
सकुलित नाना ब्रछ कोकिल मयूर पुज
डम्मर सुगधी ते भौर छक जावे हैं।
अष्टोत्तर तीरथ को प्रगट प्रभाव लिये
अरबुद की शोभा कैलाश सी दिखावे है॥

मेवाड के महाराणा सग्रामसिह (द्वितीय) के चार पुत्र थे—जगतसिह, नाथसिंह, बाघसिंह और अर्जुनसिंह। ज्येष्ठ पुत्र होने मे सग्रामसिंह के बाद

---

31. भेख=भेष, साधु होना। अपनडो=अपना। तार=नगा।

चतुरसिंह

जगतसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठे और शेष तीन भाइयों को क्रमशः बागोर, करजाली तथा शिवरती की जागीर और 'महाराज' की उपाधि मिली। महाराज चतुरसिंह करजाली के स्वामी महाराज बाघसिंह के वंशज थे और उनसे छठवीं पीढ़ी में हुए थे। इनका जन्म सं० १९३३ में हुआ था। इनके पिता का नाम सूरतसिंह और दादा का अनूपसिंह था। अपने पिता के चार पुत्रों में ये सब से छोटे थे।

इनका विवाह अठारह वर्ष की आयु में हुआ था जिससे इनके दो कन्याएँ हुई। परन्तु दस वर्ष बाद इनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इससे इन्हें विरक्ति हो गई और दूसरा विवाह करने का विचार छोड़ अपना अधिक समय योगाभ्यास, ईश-भजन, शास्त्राध्ययन इत्यादि में व्यतीत करने लगे। घर में रहने से स्वाध्याय के कार्य में विक्षेप होता था इसलिए इन्होंने घर भी छोड़ दिया और उदयपुर शहर के बाहर सुकेर नामक गाव के पास एक टेकरी पर कुटिया बनाकर रहने लगे।

इस कुटिया में महाराज साहब कई वर्षों तक रहे। प्रकृति के दीर्घ-कालीन मनन ने इनके जीवन को भी प्रकृतिमय बना रखा था। ये बहुत सरल हृदय एवं साधु प्रकृति के पुरुष थे। इनके अंग-प्रत्यंग से, इनकी वेष-भूषा से, इनके वार्तालाप और व्यवहार से जहा देखो वहा से सादगी प्रस्फुटित होती थी। बातचीत करते समय ये ऐसी सरल और मधुर भाषा का प्रयोग करते थे कि देखते ही बनता था। कैसा भी कठिन विषय क्यो न होता महाराज साहब की प्रतिभा-खराद पर चढकर नवीन रूप धारण कर लेता था और उसकी दुरूहता हवा हो जाती थी।

सं० १९८६ मे महाराज साहब को मोजिश की तकलीफ हुई और करीब दस दिन की बीमारी के बाद इनके जीवन का अन्तिम अभिनय हो गया।

महाराज चतुरसिंह बहुभाषा-ज्ञानी और सहृदय कवि थे। इनकी कविताओं का मेवाड के घर-घर मे प्रचार है। मीरा के बाद मेवाड मे यही इतने लोक-प्रिय कवि हुए है। इनके रचे ग्रंथो के नाम ये हैं—

(१) भगवद् गीता की गंगाजली टीका (२) परमार्थ विचार (३) योग सूत्र की टीका (४) साख्य तत्व समाज की टीका (५) साख्य कारिका की टीका (६) मानवमित्र रामचरित्र (७) शेष चरित्र (८) अलख पचीसी (९) तुही अष्टक (१०) अनुभव प्रकाश (२१) चतुर चिंतामणि (१२) महिम्नस्तोत्र

(१३) चन्द्रशेखराष्टक (१४) हनुमान पचक (१५) समान बत्तीसी और (१६) चतुरप्रकाश ।

महाराज साहब ने राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों में कविता की है। इनकी भाषा बहुत सरल, मधुर और भावोपयोगी है। इन्होंने जो कुछ लिखा है वह दूसरों से लेकर नहीं, बल्कि अपने अनुभव के आधार पर लिखा है। इसलिए इनके काव्य में सच्चाई और स्वाभाविकता है। एक बहुत बड़ी विशेषता जो महाराज साहब की कविता में हमें दीख पड़ती है वह यह है।—अत्यन्त भावमयी एवं मौलिकतापूर्ण होने के साथ-ही-साथ वह सदुपदेशों से ओतप्रोत है और मनुष्यों को उच्चादशा के दर्शन कराती है। ऐसे सत्य, शिव और सुन्दर साहित्य के रचयिता बहुत कम पैदा होते हैं। कविता का नमूना देखिए—

पद

रे मत छन ही में उठ जाणो
ई रो नी है ठोड ठिकाणो, अरे मन छन ही मे उठ जाणो ॥
साथै कई न लायो पेली, नी साथै अब आणो।
वी वी आय मलेगा आगे, जी जी करम कमाणो ॥१॥
भो सो जतन करे ई तन रा, आखर नी आपाणो।
करणो वे सो झट पट कर लै, पछै पड़ै पछताणो ॥२॥
दो दन रा जीवा रे खातर, क्यू अतरो ऐंटाणो।
हाथा में तो कई न आयौ, वाता में वेकाणो ॥३॥
कणी सीम पै गाम वसावै, कणी नीम कमठाणो।
ई तो पवन पुरुष रा मेळा, "चातुर" भेद पछाणो ॥४॥

दोहे

रहँट फरै चरख्यौ फरै, पण फरवा मे फेर।
हेक वाड हर्यौ करै, हिक छूता रा ढेर ॥
वाल्हा विचै विरोध जो, करै फकर्यां चाड़।
वा सूँ तो भाटा भला, रूप नै मेटे राड़ ॥
भावै जी भुगताय, दूजा दुख दीजै सभी।
खोळा सूँ खिसकाय, मत दीजै मातेसरी ॥
कारड तो कहतो फरै, हर कीनै हकनाक।
जा री है व्हीनै कहै, हियै लिफाफौ राख ॥

(रहँट फिरता है और कोल्हू भी। लेकिन दोनों के फिरने में अन्तर है। एक (रहँट) तो गन्ने के खेत को हरा भरा करता है और एक (कोल्हू) छोई का ढेर लगाता है) ॥१॥ उन लोगों में, जो दो प्रेमियों को उकसाकर आपस में मनोमालिन्य पैदा कर देते हैं, तो वे पत्थर अच्छे हैं जो दो सीमाओं के बीच में गड़कर झगड़े का निपटारा कर देते हैं ॥२॥ हे मातेश्वरी! तेरी इच्छा हो वे दुख तू मुझे देना। पर तेरी गोद से मुझे मत खिसकाना ॥३॥ कार्ड व्यर्थ ही अपनी बात हर किसी से कहता फिरता है। पर लिफाफा बात को अपने हृदय में रखता है और जो बात जिसे कहने की होती है उसी से कहता है ॥४॥

बारहट बालाबख्श जयपुर राज्य के हणूतिया ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म सं० १९१२ में हुआ था। ये पालावत शाखा के चारण थे। इनके पिता का नाम निरसधदास और दादा का हुकमराज था। बारहठजी बहुत मिलनसार एवं गंभीर प्रकृति के पुरुष थे और सभा-चतुर भी पूरे थे। इतिहास का इन्हें विशेष शौक था। इन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को ७०००) का दान दिया था जिसके सूद से "बालाबख्श-राजपूत-चारण-पुस्तक माला" में राजपूत-चारणों के रचे हुए इतिहास व कविता विषयक ग्रन्थों का प्रकाशन होता है। इनकी मृत्यु सं० १९८८ में हुई थी।

बालाबख्श

बारहठजी को डिंगल और पिंगल दोनों में कविता करने का अभ्यास था। इनके रचे ग्रथों के नाम निम्न हैं। एक दो को छोड़कर ये सभी अप्रकाशित हैं—

(१) अश्व विधान सूचना (२) भूपाल-सुजस-वर्णन (३)आसीस-विगतावली (४) आसीस-अष्टक (५) आसीस-पचीसी (६) षट् शास्त्र-साराश (७) खडेला पाना खुर्द की वशावली (८) शास्त्र विधान सूचना (९) शास्त्र-प्रकाश (१०) शास्त्र-सार (११)सध्योपासना उत्थानिका (१२) क्षत्रिय-शिक्षा-पचाशिका, (१३ छद देवियो के (१४) छद राजाओं के (१५) राव राजा माधवसिंह सीकरवालो का स्मारक काव्य (१६) मान महोत्सव महिमा (१७) मरसिया ठाकुर जोरावरसिंह का (१८) शोक शतक (१९) कछावो की खाँपे और ठिकाने।

बालाबख्श ने बडी सरस और भावपूर्ण रचना की है। इनकी रचना को

देखने से ज्ञात होता है कि भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। उक्ति-चमत्कार भी उसमे खासा दिखाई देता है। इनका एक रूमाल यहाँ दिया जाता है—

> आछौ बोल्यौ कूकडा, विरह फजर री वार।
> चेन अचेती मानव्याँ कोय सुमर करतार॥
> कोय सुमर करतार, विहूँणी रातडी।
> पल-पल बीती जाय, बजन्दी ज्यूँ घडी॥
> कालि चलै कै आज, पयाणौ ढूकडौ।
> 'केहरि' हरि चीतारि, कहै इम कूकडौ

इनका जन्म स० १६२७ मे मेवाड राज्य के सोन्याणा नामक गाँव मे हुआ। ये सोदा बारहठ कुलोत्पन्न जाति के चारण हैं। इनके पिता का नाम खेमराज था। आदि मे इनके पूर्वज गुजरात के रहनेवाले थे। कोई ६०० वर्ष हुए तब वे वहाँ से मेवाड मे आकर बस गए थे।

केसरीसिंह

केसरीसिह बहुतश्रुत विद्वन, इतिहास-प्रेमी एव आशुकवि हैं। राजस्थान के चारणो मे इनकी जोड का दूसरा कवि इस समय नही है। इन्होने प्रताप-चरित्र, राजसिंह -चरित्र, दुर्गादास-चरित्र, जसवतसिंह-चरित्र और रूठी राणी नामक पाँच ग्रथो की रचना की है। इनमे प्रताप-चरित्र को छोडकर शेष सभी ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं।

बारहठजी पिगल भाषा के कवि हैं और वीर रस की कविता करने में निपुण हैं छदो में घनाक्षरी इनको बहुत प्रिय है। इनकी भाषा भावो के साथ चलती है और अभिव्यजना-शैली भी अनूठी होती है। भाव की सचाई, कल्पना की मौलिकता और पुरुषोचित शक्ति इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। ये करुण रस की कविता भी अच्छी लिखते हैं। उदाहरण—

> बोली वीर भगिनी मैं तो पै बलिहारी वीर
> जग्गावत शूर और जरी मम जी की है।
> जननी हमारी जन्म-भूमि हेत जावत तू
> कीरति अपार कहौं केती या बरी की है॥
> कै तो जीत ऐहू, के पयान कर देहू प्रान
> सुनत अथाह चतुरगिनी अरी की है।
> मो कौं सरमावै मत, सामरे समाज बीच
> तेरे भुज भाई आज लाज चूँदरी की है॥

मैं तो अधीन सब भाँति सों तुम्हारे सदा
　　ता पै कहा फेर जय मत्त है नगारो दे।
करनो तू चाहे कछु और नुकसान कर
　　धर्मराज मेरे घर एतो मत धारो दे॥
दीन होइ बोलत हूँ पीछो जियदान देहु
　　करुना निधान नाथ अब के तो टारो दे।
बार बार कहत प्रताप मेरे चेटक का
　　ऐ रे करतार! एक बार तो उधारो दे॥

रामसिंह

सीतामऊ के वर्तमान वयोवृद्ध नरेश राजा रामसिंह जी का जन्म सं० १९३६ मे हुआ। इनके पिता का नाम दलेलसिंह था जो बडे धार्मिक और सत्यप्रिय क्षत्रिय थे। राजा साहब बडे विद्या-प्रेमी एवं सात्विक वृत्तियो के पुरुष हैं। इन्होंने तत्वज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान, वेदांत, न्याय, ज्योतिष तथा काव्य-शास्त्र पर बहुत परिश्रम किया है और इनमे इनकी अच्छी गति है। संस्कृत भाषा का इन्हें भारी ज्ञान है। इसके सिवा काव्य-रचना मे भी ये परम प्रवीण हैं। इनकी कविताओं का एक संग्रह, 'मोहन-विनोद' के नाम मे प्रकाशित हो चुका है। इस मे लगभग चार सौ छंद हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। कविता कलापूर्ण और मार्मिक है। वर्णन-सौन्दर्य्य भी उसमें खासा दिखाई देता है। उदाहरण—

ना उत बौरत अब कहा, कहा मंजुल गान विहंग न गावत?
मोहन सीतल मंद सुगंधित, पौन कहा न तहाँ सरसावत?
का मदमाते मिलिंद उते बन-बागन में रव नाहिं सुनावत?
आयो न कंत-संदेस अजौं सखि का उहि देस बसंत न छावत?

गिरधर शर्म्मा

पं० गिरधर शर्म्मा का जन्म सं० १९३८ मे झालवाड मे हुआ। ये जाति के प्रश्नोरा नागर हैं। गोत्र भारद्वाज है। संस्कृत-हिंदी के उत्कृष्ट विद्वान, उत्तम वक्ता और साहित्यकार हैं। प्राकृत, बंगला, गुजराती मराठी आदि भाषाओं का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। इनकी योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर इनको काशी के विद्वत्समाज ने "नवरत्न" की, भारतधर्म महामंडल ने 'महोपदेशक' की, चतुः सम्प्रदाय श्री वैष्णव-महासभा ने 'व्याख्यान भास्कर' की उपाधियाँ प्रदान की हैं।

इन्होंने तीस ग्रंथ लिखे हैं जिन मे १४ संस्कृत के, १२ हिंदी के और ३ गुजराती के हैं। इनके हिंदी-ग्रंथो के नाम ये हैं:—

(१) जया जयन्त (२) राई का पर्वत (३) प्रेम कुंज (४) युग पलटा (५) महा सुदर्शन (६) हिंदी माघ उपा (७) चित्रांगद (८) भीष्मप्रतिज्ञा (९) बाग-वान (१०) गीतांजली (११) फल सचय और (१२) गुरु-महिमा।

पंडितजी हिंदी के बहुत पुराने हिमायती और अधिकारी लेखक हैं। ये गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं और बहुत उत्तम लिखते हैं। रस, अलंकार, छंद आदि काव्यांगों का इन्हें पुख्ता ज्ञान है। इसलिए इनकी कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष होती है। इनकी भाषा ललित और कविता प्राणवान् होती है। उदाहरणः—

गिरता नभस्थल की उच्चता से स्वाति बिन्दु
चुपचाप चातक की प्यास को शमाता है।
दुर्गम, गहन गिरि कन्दरा का सोता स्वच्छ
हारे थके पथिकों के श्रम को मिटाता है॥
हेय है न किसी भाँति छोटापन नवरत्न
लोक में निजार्पण के भाव को जगाता है।
विश्व को समर्पता स्वजीवन, सुरभि देता
स्वल्प सा सुमन महादर्श छोड़ जाता है॥

छन्द का सुछन्दता को कुछ भी न ज्ञान स्वच्छ
मात्रा, वर्ण, गण, लय का न तत्व भाता है।
अनुभूति होती क्या है नाम को भी पता नहीं
छाया के ग्रहण का भी बोध न लखाता है॥
'नवरत्न' रमणीय अर्थ की क्या बात कहे?
काव्य रीति का न जहाँ कक्का तक आता है।
देख के कवित्त वित्त आज के कवीश्वरों का
कला छाती पीटती है भाव रोता जाता है!

ठाकुर नाथूदान महियारिया गोत्र के चारण केसरीसिंह के पुत्र हैं। इनका जन्म सं० १९४८ में हुआ। ये डिंगल भाषा के सुज्ञाता एवं उत्कृष्ट कवि हैं। इन्होंने डिंगल भाषा की अनेक फुटकर

नाथूदान

कविताएँ तथा 'वीर सतसई' नामक एक ग्रंथ लिखा है जो अप्रकाशित है। इनकी रचना प्राचीन चारण काव्य-

परंपरा से प्रभावित है। ये बहुत सीधी-सादी एवं कर्णमधुर भाषा लिखते हैं और वीर रस की कविता करने में सिद्धहस्त हैं। भाव की कोमलता, वर्णन की चित्रोपमता और अनुभूति की सचाई इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। इनकी देशभक्ति विषयक कविता भी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। इनके कुछ दोहे यहाँ दिये जाते हैं :—

जो कररी उण री हुसी आसी विण नूतीह[1]।
या नहँ किण रा बाप री भगती रजपूतीह ॥
पिव केसरियाँ पटकिया हूँ केसरियाँ चीर।
नाहक लायो चूँदड़ी बळती वेळाँ वीर ॥
बाप मुत्रो जिण ठौड़ हूँ बेटा नहँ हटियाह।
पेच कसूमल पाग रा सिर साथे कटियाह ॥
ओपट जाणै मोकळा पीड़ न जाणै लोग।
पिउ केसरियाँ नहँ किया हूँ पीळी उण रोग ॥
सुत मरियो हित देसरे हरख्यौ बधु समाज।
माँ नहँ हरपी जनमदे जतरी हरपी आज ॥
हिरण हुवे बे सींग रा सींह हुवै बेसींग।
मदझर टोळाँ माचणो हाथळ वाळौ धींग ॥

श्री अमृतलाल माथुर का जन्म जोधपुर राज्य के कुचेरा ग्राम में सं० १९५५ में हुआ। इनके पिता का नाम गोपाललाल था जो भक्त और कवि थे। ये ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ी बोली तीनों में

अमृतलाल

कविता करते हैं। ब्रजभाषा में कविता करनेवाले राजस्थान के आधुनिक कवियों में इनका स्थान सर्वोच्च है। समूचे हिंदी-क्षेत्र में भी इनकी टक्कर के एक-दो से अधिक नहीं हैं। इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

---

१ वि० णनूतीह=बिना बुलाए। पिव किया=पति ने केसरिया बागा पहन लिया है। बलती वेला=जलते समय, सती होने के वक्त। कसूमल=लाल। पाग=पग सींग रा=दो सींग वाला। बेसींग=बिना सींग का। मद झर=हाथी। टोलां=झुंड। हाथल=पंजा। धींग=जबरदस्त।

(१) राघव यश (२) अमृत-सतसई (३) गीत रामायण (४) यमक रामायण (५) श्री रामासव (६) गगालहरी (७) राम प्रेमामृत (८) श्री राम सुधारस (६) श्री शकर शतक और (१०) श्री प्रेम रामायण।

माथुरजी की रचना का मुख्य विषय रामभक्ति है और उसमे भाषा और भाव का सौन्दर्य्य है। इनके शब्द-चयन मे शक्ति और शैली में सचाई निहित है। इनको यमक अलकार बहुत प्रिय है जिसकी बडी सुन्दर छटा इनकी कविता में स्थान-स्थान पर देख पडती है। छन्दो मे 'दोहा' का प्रयोग इन्होंने विशेष किया है। इनकी कविता में इनके भक्त-हृदय की विह्वल भावनाओं की बहुत ही सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। काव्य-चमत्कार से भी अधिक महत्वपूर्ण उसमे को वह अटल श्रद्धा है जिससे उसकी प्रत्येक पक्ति ओत-प्रोत है। उदाहरण—

प्रेम-वर्णन

राम सनेही सजन की, यह गति जानि परै न।
उर में भरै अनन्द-रस, नैन झरैं दिन रैन॥
प्रति दिन मे प्रति पहर मे, प्रति पल राम हि चाहि।
लगी रहे मेरी लगन, रगी प्रेम-रग माहिं॥
राम-विरह-रस दृग बहैं, हे नर! अँसुआ है न।
निरखि नेह-करि नैन भरि, नेह-त्रिवेनी नैन॥
मुकता-मनि अँसुआ अमल, कत ढरकत दिन रैन।
हरि-उर-पहरावन अहो! हार बनावत नैन॥
हरि-सनेह-हित सब तजे, अजन रजन चैन।
अँसुआ-कन मुकतान को, दान करत नित नैन॥
भजन-सुभूधर विरह अहि, मिलन-अमरता लैन।
मन-पयोधि मथि राम-रस, सुधा निकारत नैन।

(बाल-चरित)

हर विरचि हु पावत पार ना।
जननि ताहि झुलावत पारना॥

सुख किए तुम हो पलनान में।
लखत नैनन पै पल ना नमें॥

परंपरा से प्रभावित है। ये बहुत सीधी-सादी एव कर्णमधुर भाषा लिखते हैं और वीर रस की कविता करने में सिद्धहस्त हैं। भाव की कोमलता, वर्णन की चित्रोपमता और अनुभूति की सच्चाई इनकी कविता के प्रधान गुण हैं। इनकी देशभक्ति विषयक कविता भी बहुत सुन्दर बन पड़ी है। इनके कुछ दोहे यहाँ दिये जाते हैं :—

जो कररी उण री हुमी आसी विण नूतीह[1]।
या नहँ किण रा बाप री भगती रजपूतीह ॥
पिव केसरियाँ पटकिया हूँ केसरियाँ चीर।
नाहक लायो चूँदड़ी बळती वेळाँ वीर ॥
बाप मुआँ जिण टौड हूँ बेटा नहँ हटियाह।
पेच कसूमल पाग रा मिर साथे कटियाह
ओषद जाणै मोकळा पीड़ न जाणै
पिउ केसरियाँ नहँ किया हूँ पीळी
सुत मरियो हित देसरे हरख्यौ
माँ नहँ हरपी जनमदे जतर
हिरण हुवै बे सींग रा
मदभर टोळाँ माचणे

श्री अमृतलाल माथुर का
१९५५ में हुआ। इनके पि
थे।
अमृतलाल क

समूचे हिंदी-
रचे ग्रथों

[1] बि॰णनूतीह=बिना बुलाए। पिव
है। बलती वेला=जलते समय, मनी ह
सींग रा=दो सीग वाला। बेसींग=बि
हाथल=पजा। धींग=जबरदस्त।

म्लेछन कौं मारि दीनें हाथिन पछारि दीनैं,
तुरग उथारि दीनैं फुल्लि विफरायो है ॥
गिरिन हलाय दीनें दिग्गज हुलाय दीनैं,
अचल चलाय दिग्घ पौरुष दिखायो है ।
वीर जयमल रन ठेलि कै दुरग काज,
ऐसो खग-खेल खेल सुरग सिधायो है ॥

पतराम गौड — गौडजी का जन्म स० १६७० में पिलाणी में हुआ। ये हिंदी-सस्कृत दोनो के एम० ए० हैं। इन्होंने अग्रेजी मे भी एम० ए० की प्रीविअस परीक्षा पास की है। इस समय ये विडला कॉलेज, पिलाणी मे हिंदी के प्रौफेसर हैं।

हिन्दी राजस्थानी के सुयोग्य लेखक और कवि होने के साथ-साथ गौडजी गुजराती, वगला आदि अन्य भाषाओं के भी अच्छे जानकार हैं। इन्होंने रेगिस्तान, मानव और प्रकृति, समर्थ गुरु रामदास (नाटक), और राजस्थानी मुहावरे नामक चार ग्रन्थो का प्रणयन किया है। ये इनकी स्वतत्र रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'चौबोली' और 'हरजस बावनी' का सपादन इन्होंने अपने मित्र श्री कन्हैयालाल सहल के साथ किया है।

गौडजी बहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं जिसकी छाप इनकी रचनाओं पर भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। इनकी अनुभूति सच्ची है और भावनाएँ

स्थिर। 'रेगिस्तान' इनका एक बहुत छोटा-सा खड-काव्य है। परतु इसकी वर्णन-शैली मे मार्मिकता और मौलिकता है। राजस्थान के प्रत्येक रज-कण, ककड-पत्थर और टीले को इन्होंने आत्मीयता के भाव से देखा है। इसलिए सारी की सारी रचना सप्राण हो उठी है और चारण-भाटों की रूढिगत कविताओं से ऊबी हुई जनता को इससे वडी राहत मिलती है। देश को इस समय ऐसे ही साहित्यिकों की जरूरत है। गौडजी से राजस्थान को बहुत आशा है। इनकी राजस्थानी कविता का एक नमूना यहाँ दिया जाता है—

प्रेम-सनेसडलो

सत रहसी जासी धरा, भगत वछळ गोपाळ।
सत धारा सत फूटसी, जीवण आँसू-माळ ॥

छवि कही कछु वैनन जात ना।
हरत हेरत ही मन-जातना ॥

जिन लिए हित सों गहि वारना।
तुम उधारत की तिहि वार ना ॥

सिसु चरित्र किए भुवि सार है।
सुन भुसडि हु सम्भु विसार है ॥

छवि छके पुर के नर ती रहैं।
वन लहीं भव सागर-नीर हैं ॥

रमत औध-तरगनि-तीर हौ ।
धरत चाप निखगनि तीर हौ ॥

गवर सॉवर दो वर जोर है।
मन लगै हठि ना वरजो रहै ॥

ये राजस्थान के सुप्रसिद्ध कवि राव बख्तावरजी के प्रपौत्र हैं। इनका जन्म स० १६५६ मे मेवाड राज्य के वसी नामक गॉव मे हुआ। सुकवि एव अध्ययनशील विद्वान हैं और डिंगल-पिंगल दोनों में

मोहनसिंह

कविता करते हैं। इसके अलावा पद्यानुवाद करने मे भी ये परम प्रवीण हे। इन्होंने विहारीलाल के कतिपय दोहों और सूरदास-रसखान के पद-सवैयों का डिगल भाषा मे बड़ा सुन्दर अनुवाद किया है। इनके रचे ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) प्रताप-यश चन्द्रोदय (२) भूपाल भूषण (३) कुभा कीर्ति प्रकाश (४) कूर्म-यश-कलानिधि (५) व्यग्यार्थ प्रकाश (६)कुडलिया-शतक (७) नीति शतक (८) मोहन सतसई (९) मृगया-बावनी (१०) महाराणा चरितामृत (११) राग बहार (१२) रघुवश चरित (१३) मान पचीसी (१४) वणिक बहत्तरी (१५) प्रपच-पचीसी (१६), जैमल पचीसी और (१७) रामदास पचीसी।

मोहनसिहजी बहुत प्रौढ और मर्यादित भाषा लिखते हैं जो रस और विषय के अनुकूल रहकर चलती है। शब्द-भाडार पर भी इनका अच्छा अधिकार है। इनकी कविता सरस, प्रभावोत्पादक और सालकार होती है। उदाहरण—

टोपन कौ फारि दीनै कवचन तौरि दीनैं,
हवद विथोरि दीनै धधकि धकायो है।

म्लेछन कौ मारि दीनै हाथिन पछारि दीनैं,
तुरग उथारि दीनैं फुलि विफरायो है ॥
गिरिन हलाय दीनैं दिग्गज डुलाय दीनै,
अचल चलाय दिग्घ पौरुष दिखायो है।
वीर जयमल रन ठेलि कै दुरग काज,
ऐसो खग-खेल खेल सुरग सिधायो है ॥

पतराम गौड

गौडजी का जन्म स० १६७० में पिलाणी मे हुआ। ये हिंन्दी-सस्कृत दोनो के एम० ए० हैं। इन्होने अग्रेजी में भी एम० ए० की प्रीविअस परीक्षा पास की है। इस समय ये बिडला कॉलेज, पिलाणी मे हिंदी के प्रौफेसर हैं।

हिन्दी राजस्थानी के सुयोग्य लेखक और कवि होने के साथ-साथ गौडजी गुजराती, बगला आदि अन्य भाषाओं के भी अच्छे जानकार हैं। इन्होंने रेगिस्तान, मानव और प्रकृति, समर्थ गुरु रामदास (नाटक), और राजस्थानी मुहावरे नामक चार ग्रन्थों का प्रणयन किया है। ये इनकी स्वतंत्र रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'चौबोली' और 'हरजस बावनी' का सपादन इन्होंने अपने मित्र श्री कन्हैयालाल सहल के साथ किया है।

गौडजी बहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति ह जिसकी छाप इनकी रचनाओं पर भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है। इनकी अनुभूति सची है और भावनाएँ

स्थिर। 'रेगिस्तान' इनका एक बहुत छोटा-सा खड-काव्य है। परतु इसकी वर्णन-शैली में मार्मिकता और मौलिकता है। राजस्थान के प्रत्येक रज-कण, कंकड-पत्थर और टीले को इन्होंने आत्मीयता के भाव से देखा है। इसलिए सारी की सारी रचना सप्राण हो उठी है और चारण-भाटो की रूढिगत कविताओ से ऊबी हुई जनता को इसमे बडी राहत मिलती है। देश को इस समय ऐसे ही साहित्यिकों की जरूरत है। गौडजी से राजस्थान को बहुत आशा है। इनकी राजस्थानी कविता का एक नमूना यहाँ दिया जाता है—

प्रेम-सनेसडलो

सत रहसी जामी धरा, भगत वछळ गोपाळ।
मन धारा सत फूटसी, जीवण आँसू-माळ ॥

मीरॉबाई रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसड़लो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसडलो ॥

रोही रोही भटकतो, खेतो मोटा वार ।
चित्तौडै में आज नहीं छै लीलै रो असवार ॥

सीसोदया रो देसडलो
थानै भेजे प्रेम-सनेसडलो
धरती री रगत-पिपासा मैं,
जीवण रो आज अनेसड़लो ॥

वारू मेरा देसडा वारू कोटि हजार ।
पीसो कर रो मैल छै भामो कहे पुकार ॥

धनपतिया रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवन रो आज अनेसडलो ॥

सत राख्या, पत राखियो, श्रम-क्रम राखी रेख ।
भरण बडाई राखियो, रजपूती री टेक ॥

हाडी राणी रो देसडलो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसडलो ।

रे हिरदा, रे आतमा, भूल्यो रह्यो गिवार ।
भेद भाव नै भूल कर, जाणन माणस-सार ॥

दादूजी रो देसड़लो
थानै भेजै प्रेम-सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मे
जीवण रो आज अनेसडलो ॥

वळदा पूछ मरोड़इ, जीभ्या टिचकारथाह
ना झल चिणगारथा झड़ै चारण रै वयणाह ॥

सूरजमल गे देसडलो
थानै भेजै दुःख सनेमडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसड़लो ॥

ग्वाडै रामै वाछड़ा गोझारा खेदै गाय ।
मुरज्याळो राठौड नहीं, इत बापू कवण उपाय ॥

मा देवळ गे देसडलो
थानै मेजै करुण- सनेसडलो ।
धरती री रगत-पिपासा मैं
जीवण रो आज अनेसडलो[1] ॥

श्री सुधीन्द्र, एम० ए० का जन्म स० १६७२ में कोटा राज्यान्तर्गत खैराबाद मे हुआ। ये हिन्दी गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं और अच्छे गीतकार भी हैं। इन्होंने कोई बीस ग्रन्थ रचे हैं जिनमें से नीचे लिखे पाँच ग्रथ प्रकाशित भी हो चुके हैं—

सुधीन्द्र

(१) शखनाद (२) मेरे गीत (३) प्रलय वीणा (४) जौहर और (५) अमृतलेखा ।

ये यथार्थवादी कवि हैं। इन्होंने कल्पना और यथार्थ का, सत्य और सौन्दर्य्य का, जड़ और चेतन का, कलात्मक समन्वय किया है। इनकी कविता-शैली प्रसाद, पत, महादेवी और निराला की कविता शैली से प्रभावित है। भाषा तेजोमयी है। और भाव स्वतत्रता का सन्देश देते हैं। इनकी एक कविता यहाँ उद्धृत की जाती है। यह 'जौहर' से ली गई है—

स्वतन्त्रता सम्पदा अतुल है, यह जीवन है अल्प अहो !
प्राणों की आहुति देने मे क्यों सकल्प विकल्प कहो ?

१- सत= सत्य, माँ। आंसू-माल= अश्रु माला। रगत= रक्त। अनेमडलो= अदेशा। खेनो= सहन किये। लीलै= श्वेत घोटेका। पीसो= पैसा। भामो= भामाशाह। झल= जीभ। ग्वाडै= गुवाट मे। गोझारा= गो-हत्यारे। खेदै= खदेड़ते है। मुरज्याळो= दुर्गपति।

स्वतन्त्रता शाश्वत वैभव है, यह जीवन, यह जगत अस्थिर !
जीवन-बलि देने से फिर क्यों नश्वर मन भय से अस्थिर ?
काया को खोकर करते हैं हम अपने यश का सर्जन !
प्राणों को खोकर करते हैं हम अपना गौरव-अर्जन !
एक बार ही आता है यह जीवन में मंगल अवसर,
अमर मुक्ति का वरण करें हम मेट करें जीवन नश्वर !

हिन्दी की सुप्रसिद्ध गद्यकाव्य-लेखिका श्रीमती दिनेशनंदिनी चोरड़िया, एम० ए० का जन्म स० १९७३ में उदयपुर के एक वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता श्री श्यामसुन्दरलाल नागपुर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं। इनका विवाह हाल में भारत के सुप्रख्यात सेठ श्री रामकृष्ण डालमिया के साथ हुआ है।

दिनेशनंदिनी

श्रीमती दिनेशनंदिनी हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। इनके गद्य काव्यों के पाँच-सात संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं :—शबनम, मौक्तिकमाल, वंशी-रव, दुपहरिया के फूल, शारदीय सारङ्ग, स्पन्दन आदि। इनमें से 'शबनम' पर इनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की ओर से 'सकसेरिया पुरस्कार' भी मिला है।

इन्होंने प्रेम का मार्मिक विश्लेषण किया है जो सार्वभौम है। इनके गद्य काव्यों में एक विशेष तल्लीनता, स्त्रियोचित कोमलता और गहन अनुभूति पाई जाती है जो इन्हें हिन्दी के अन्यान्य गद्य-काव्य रचयिताओं से बहुत ऊँचा उठा देती है। इनकी भाषा सुघड़ और शैली प्राजल होती है। इनका एक गद्य काव्य यहाँ उद्धृत किया जाता है—

ऐ मेरे चित्रित शयन-मन्दिर की खिड़की को स्पर्श करनेवाले स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे मेरे बीच कोई राज का पर्दा नहीं है !

कोयल के मञ्जुल संगीत को सुनकर मैंने तेरे अंग-अंग में कामाग्नि प्रज्वलित होते देखी है,

मेरी-तेरी दिव्य आत्मा के देवता पवन को तेरे कोमल हृदय को स्पर्श करते, और तेरे चिरपिपासित ओष्ठाधरों पर अपने अतृप्त अधरों को रखकर तुझ में राग का ज्वार लाते देखा है !

तैंने भी मुझे प्रेम-पैंग में झूलती देखा है, संयोग और वियोग में हँसते और कलपते देखा है, और प्रीतम-प्यारे के साथ दान-लीला और मान-लीला करते देखा है।

ऐ शीतल, स्वप्निल श्यामल वृक्ष ! तेरे मेरे बीच कोई राज का पर्दा नहीं है !

राजस्थानी भाषा के उदीयमान कवि चन्द्रसिंह बी० ए० बिरकाली (बीकानेर) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रेष्ठ गोत बीका के घराने के हैं। ये ठाकुर खूमसिंह के पुत्र और ठाकुर हरिसिंह के दत्तक पुत्र हैं।

चद्रसिह ये हिन्दी-राजस्थानी के कवि और गद्य-लेखक हैं। इन्होंने बादळी, कह-मुकरणी, लू, साँझ, बालसाद आदि पुस्तके लिखी हैं। इनमे बादळी सर्वश्रेष्ठ है। यह राजस्थानी मे है। इस पुस्तक पर इन्हे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी को ओर से 'रत्नाकर-पुरस्कार' तथा 'बलदेव दास रजत पदक' भी मिले हैं। यह सस्कृत-कवि कालिदास कृत मेघदूत के ढग का एक छोटा सा खड काव्य है। इसकी भाषा सीधी-सादी और मधुर है। भावों मे स्वाभाविकता और सयम है। वर्णन मे गति है। उदाहरण—

भूरी काळी बादळी, बीजळ रेख खिंचाय।
जाण कसौटी ऊपराँ, सुवरण रेख सुहाय॥
सूरज-साजन आवसी, बैठी पेई खोल।
बदल बदल धन बादल्या, पैरे वेस अमोल॥
(काले काले जलदा पर यों, खिंची तडित की रेखा।
चतुर पारखी ने पत्थर पर, घिस क्या सोना देखा ?
शुभ प्रभात सजनी आएँगी, चीर गुलाबी पहने।
इसीलिए धन ने बनवाये, सभी गुलाबी गहने॥)

अलवर के ईश्वरसिह पिंगल भाषा के उत्कृष्ट कवि थे। ग्रथ इन्होंने कोई नही लिखा, पर फुटकर कवित-सवैये सैकड़ों रचे हैं। फतहकरण रचित 'पत्र प्रभाकर' पिंगल भाषा की एक अत्युत्तम रचना है। स्वर्गीय झालावाड़-नरेश राजेन्द्रसिंह देव प्रतिभावान कवि थे। रावत सुजानसिंह (भगवानपुरा) ने 'गजेन्द्र-मोक्ष' नाम का एक ग्रथ और बहुत-सी फुटकर कविताएँ रची हैं। अच्छे कवि और काव्य-मर्मज्ञ हैं। पडित उमाशकर द्विवेदी वीर रस की कविता करते हैं। ठाकुर रेवतसिंह ने पाँच-सात ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी कविता बहुत प्रौढ़ और परिमार्जित होती है। वर्णन-चमत्कार भी उसमे खासा पाया जाता है। ठाकुर रणबीरसिंह बहुत प्रशसनीय रचना करते हैं। इन्होंने नरसी-चरित्र' नाम का एक छोटा-सा ग्रथ और अनेक फुटकर कवित्त आदि लिखे हैं।

इनके कवित-सवैयों में बड़ी गति और प्रवाह पाया जाता है। पढ़ते वक्त देव-पद्माकर याद आते हैं। जयपुर के प्रतापनारायण और झालावाड के ईश्वरलाल मँजे हुए कवि हैं और बड़ी भावपूर्ण कविता करते हैं।

मोड़जी म्हैयारिया डिंगल भाषा के अच्छे कवि थे। इन्होंने, वीर-सतसई, की रचना की जो अप्रकाशित है। बारहट हिंगलाजदान का देहान्त अभी जुलाई के महीने में हुआ है। ये डिंगल के उद्भट विद्वान और सुकवि थे। उदयराज जोधपुर के रहनेवाले हैं। राजस्थानी के कवि हैं। 'अरावली की आत्मा' और 'मूंघा मोती' नामक दो ग्रन्थ हाल में छपे हैं। राजस्थानी की उत्तम रचनाएँ हैं। इनके रचयिता क्रमशः मनोहर शर्म्मा और भीमराजवीरभ हैं। मेघराज 'मुकुल' राजस्थानी में सरस कविता करते हैं। 'सैनाणी' इनकी एक बहुत लोकप्रिय कविता है। इसका 'रैकॉडिङ्ग' भी हाल में हुआ है। भरत व्यास भी राजस्थानी के अच्छे कवि हैं। इनकी फुटकर कविताएँ बहुत प्रचलित हैं।

खड़ी बोली के कवि राजस्थान में सैकड़ों हैं। इनमें सर्वश्री जयनारायण व्यास, सुमनेश, गणपतिचन्द्र भंडारी, देवीलाल सामर, मन्हैयालाल ओझा, उदयसिंह भटनागर, हरिनारायण शर्म्मा "किंकर", शकुन्तला कुमारी इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सातवाँ प्रकरण

प्राचीन और अर्वाचीन गद्य

गद्य-निर्माण की परिपाटी राजस्थान मे बहुत प्राचीन काल से चली आती है। चौदहवी शताब्दी की कुछ गद्य रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनकी भाषा बहुत साफ-सुथरी, प्रवाहपूर्ण एवं व्यवस्थित है और वर्णन-शैली भी सयत है इससे मालूम पडता है कि राजस्थानी गद्य का जो रूप इन रचनाओं मे दृष्टिगत होता है वह इस शताब्दी से पूर्व के गद्य का विकसित रूप है। अनुमानत. राजस्थानी गद्य का प्रारभ तेरहवीं शताब्दी के मध्य से हुआ है।

राजस्थानी पद्य की तरह राजस्थानी गद्य के भी प्रारभिक विकास मे जैन विद्वानों का हाथ विशेष रहा है। इनकी अनेक छोटी-छोटी रचनाएँ मिलती हैं जिन में परोक्ष या अपरोक्ष मे जैन धर्म के सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है। भाषा इनकी बहुत सहज और स्पष्ट है। वर्णन-प्रणाली सरस और रोचक है।

अनेक जैनेतर रचनाओं का भी पता है। इनमे कुछ तो पूरी गद्य मे हैं और कुछ मे गद्य और पद्य दोनो हैं। ख्यात, वात इत्यादि गद्यात्मक रचनाओं का उल्लेख पहले भूमिका मे हो चुका है। इनके अतिरिक्त बहुत से प्राचीन ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने आदि मिले हैं जिनके द्वारा भी प्राचीन राजस्थानी गद्य के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पडता है।

प्रारभ से लेकर आज तक के राजस्थानी गद्य के कुछ नमूने यहाँ दिए जाते हैं जिनसे विदित होगा कि किस तरह राजस्थानी गद्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ है तथा उसका स्वरूप बदला है—

"ज्ञानाचारि पुस्तक पुस्तिका सपुट सपुटिका टीपणा कमली उतरी ठवणी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा, अकालि पठन अतिचार विपरीत कथनु उत्सूत्रप्ररूपणु अश्रद्धधान-प्रभृतिकु आलोयहु। दर्शनाचारि देव द्रव्यु भक्षितु उपेक्षितु प्रजार्हीनत्वु जिनभुवन आसातना अधोयति देवपूजा गुरुद्रव्यग्रहणु गुरुनिदा द्रव्यलिगिएमउ ससर्गु बिंबआशातना स्थापनाचार्य-आशातना शका आकांक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टि प्रसंसा मिथ्यादृष्टिपरिचउ ए पाच अतिचार आलोयउ"।

—आराधना (स० १३३०)

"ग्रामि एक अति दरिद्रताकरी दुक्खित डोकरी एक हूँती। हसउ इसइ नामि तेहनउ दीकिरउ एकु हूँतउ। सु आजीविका कारणि ग्रामलोक तणा वाछरू चारतउ। अनेरइ दिनि सन्ध्या समइ उद्यान-वन हूतउ वाछरू ले आनतउ हूतउ सु सर्पि डसिउ, मूर्च्छा आवी; तिहांजि महाविषवेग सगनु हूतउ हेठउ ढलिउ। जिम काष्ठु निश्चेष्टु हुयइ तिम थाई महीपीठि पडिउ। किणिहिं एकि ग्राम माहि आवी करी डोकरी आगइ कहिउ—ताहरउ दीकिरउ सर्प्पि डसिउ। वाहिरि अचेतनु थाई पड़िउ छइ। तउ पाछइ स डोकरी तेतीहीं जि वार मन्त्र तन्त्र यन्त्र पडित मेली करी रोयती हूँती। दीकिरा कन्हइ आवी [1]"।

—तरुणप्रभ (स० १४११)

"इसो नहीं हो ठाकुरे। इसौ कीजै। गळे मत सौ सालगराम तुलसी की माला घातीजै। राजा अचळेमर का आवासा सौ लौहड़ौ करता जाईजै। जितरा जितरा पग दीजै ततरा अस्वमेध ज्याग का फळ लीजै। इणि विधि जै जीव निवेदाजै तौ सूरिजमण्डल भेदीजै। तितरै वात कहता वार लागै। अस्त्री जण सहस चाळीस को सघाट आइ सप्रापति हुवौ छै। किसी एक बाळी-भोळी अबळा प्रौढ़। षोड़स वरस की राणी-राउताणी। आप आपका देवर-जेठ भरतार कौ पुरषारथ देखती फिरे छै[2]।"

—शिवदास (स० १४८५)

"धरती वीघा तीन सै सुर प्रव मे उदक आघाट श्री रामार अर्पण कर देवाणी सो अणी जमी रो हॉसल भोग डड वराड़ लागत वलगत कुडा नवाण रुख वरख ऑबा महुड़ा मेर को खड़म सरब सुदी धारा बेटा पोता सपुत कपुत खायॉ पायॉ जायेला [3]।"

—ताम्रपत्र (स० १५३२)

"पछै मुलतान री फोजॉ नै दिली री फोजॉ ले नै राउ चूडे उपर नागोर आयो। राउ चूडो नागोर मारीया पछै केल्हण अपूठो गयो।"

—राठोडॉ री वसावळी (स० १६००)

---

१. डोकरी=बुढ़िया। वाछरू=पशु। दीकिरउ=बेटा।

२. घातीजै=पहनो। लोहड़ौ=युद्ध। निवेदाजै=छोड़िए। सघाट=समूह। सप्रापति=एकत्र।

३. सुर=सूर्य। प्रव=पर्व। उदक देवाणी=संकल्प कर दान में दी। डड=दंड। वराड़=कर। लागत=महसूल। वलगत=दातव्य। कुडा=कुएँ। नवाण=जलाशय। रुख=रुक्ष। वरख=वृक्ष। ऑबा=आम्र। महुड़ा=महुआ। मेर=पहाड़, आस पास। खड़म=स्वामिगत अधिकार।

"वलि को वंचणहार । सव ही वात सामर्थ। श्री कृष्ण रुषमणीजी, बाँह पकड़ि रथ उपरि वैसाणी । तवै वाहर वाहर हुई । कहण लागा जु कोई होय सु दौड़िज्यौ । हरणापी कहता रुकमणीजी हरि कहता कृष्ण हरि ले गयो [४]" ।

—वेलि क्रिसन रुषमणी री टीका (स० १६८३)

"कोई समद माहे साह गयो थो । तिकै एक मृतक देह दीठी थी । तिण री वात राणा कुभा नु कही । तद राणो कुभो चित भरमीको हूयो क्यु ही गे क्युँ ही वोले । तद कुम्भलमेर रहता । सु गढ ऊपर ऐक ठो मामा कुड छै । मामा वड छै । तठै राणो वेठो थो । कुम्भा रै वेटो मुदायत उदो थो । तिण मार कटारी याँ नै आप पाट बैठो [५]।"

—मुहणोत नैणसी (स० १७१६)

"पछै वामण सीदो ले नै तळाव उपर रोटी करवा बैठो । जठे तळाव री तीर एक मीडक आयो । आवे न वामण थी कही । देवता तोहे तौ में अठे कदी नही देख्यौ । तू कठे जाम्र है । जदी वामण कहै । हूँ उजीण रहौ छूँ ने गया जी नाऊ छूँ [६] ।"

—प्राचीन वार्ता (सं० १८००)

"यण रीति उदियापुर सहर गणगोर रा हगाम मडिया । सागर री तीर पागड़ा छाडिया । ऊँचै ढाळ।तषत निवास कियो । सो जाण जै क सत-सुक्रत रो सिंघासण प्रगट थियो । तिकण रे सीस श्री दीवाण आप विराजिया । भाई सगा सोळा ही उमराव आप-आप री वैठकह ाजरि थिया ।" [७]

—रामदान (स० १८६०)

"इण वात रै अनतर ही एक समय चीतोड मैं कमठाणाँ रो काम चालताँ कोई धातू री एक मूर्ति च्यारि हाथ धारण कीधाँ भूतल माँहिं थी नीसरी । जिकण रो भाव विचारण रै काज राणौं हम्मीर आप री सभा में सगाई परिकर रा लोका नूँ प्रत्येक पूछि परीक्षा करी । जिकण मूर्ति रै एक हाथ नीचे दूजो

---

४. वैसाणी = विठाई । वाहर = आवाज । हरणापी = हरिणाक्षि ।

५. तिकै = उसने । दीठी = देखी । तिण = उस । चित भरमीको = चित्त-भ्रम ।

६ सीदो = आटा । मीडक = मेढक = । उजीण = उज्जैन ।

७ हगाम = आनद । पागड़ा छाडिया = घोटे से उतरे । ढाल = उतार ।

ठो = जगह । मुदायत = मतलबी, महत्वाकांक्षी ।

हाथ ऊँचो तीजो बीच मे तिरछो रहिये । अर चौथो हाथ कट रै लागो देखि आप आप री उपलब्धि रै अनुसार मार्ग ही जुदो-जुदो भाव कहियो[८] ।"

—कविराजा सूरजमल (सं० १६००)

"परन्तु मारवाडी भाषा री न तो कोई व्याकरण है, न कोई पठण री किताबां है, और न कोई इण भाषा री खूबिया नै जाणै है । भाषा री मुख्य खूबी आ है, कै भाषा मावरा वाळी हुवणी, सो जिसी मावरादार भाषा मारवाड री है इसी दूसरी एक पण नहीं है, परन्तु इण भाषा री व्याकरण और किताबा न हुवणा सूॅ इण री खूबिया री राख में ओटियोड़ा अगारवाळी दशा है । अतएव लोग इण भाषा नै कुछ माल नही समझै है, और कठेई भाषा सबधी बात चालै है तो मारवाडी भाषा री वडी निंदा करै है ।"

—रामकर्ण (सं० १६५३)

"आ सही है कै राजस्थानी सम्मेलन प्रात री अेक आवश्यकता ही और है । उण जैडी सजीव साहित्यिक सस्था द्वारा प्रात री नीव मजबूत वण सके है । आज भाषा और सस्कृति रे आधार माथे जद नुवे प्रात निर्माण रो सवाल उठ रयो है उण टेम समझदारी तो आ है कै राजस्थानी सम्मेलन रा पदाधिकारी आप रो सगठन कर जल्दी सूॅ जल्दी बडी-घडाई योजनावा माथै चालणो शुरू कर देवे । या प्रात री नई पीढी ने सम्मेलन री जिम्मेवारी सूँप कर आन्दोलन रो गति अवरोध दूर करै" ।

—श्रीमन्त कुमार व्यास (सं० २००४)

लगभग स० १६०० तक राजस्थानी मे गद्य निर्माण की परंपरा बनी रही। परन्तु इसके अनतर जब से भारत मे राष्ट्रीयता की लहर उठी और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की चर्चा होने लगी तब से प्रान्तीय भाषा के मोह को छोड कर राजस्थान के साहित्यकारों ने हिन्दी गद्य लिखना प्रारभ कर दिया और शुद्ध साहित्यिक राजस्थानी गद्य का विकास प्रायः रुक गया । अतएव उस समय से राजस्थानी गद्य का इतिहास एक तरह से राजस्थान में हिंदी गद्य ही का इतिहास है ।

---

८ कमठाणा रो = भवन-निर्माण का । जिकण रो = जिसका । परिकर = परिगह । उपलबधि = ज्ञान ।

परन्तु इधर पाँच-सात वर्षों में राजस्थान के साहित्यकारों का ध्यान पुनः राजस्थानी गद्य की ओर गया है और कुछ ने राजस्थानी गद्य की बहुत प्रौढ़ और सुन्दर कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। दो एक पत्र-पत्रिकाएँ भी राजस्थानी में निकलने लगी हैं और राजपूताना विश्व-विद्यालय के पाठ्यक्रम में राजस्थानी को स्थान दिलाने के भी प्रयत्न हो रहे हैं। विभिन्न रियासतों में लोकप्रिय सरकारों के स्थापित हो जाने से आशा की जाती है कि राजस्थानी के प्रचार को अब अधिक बल मिलेगा।

राजस्थान के पुराने गद्य-लेखकों का विवरण पिछले पृष्ठों में यथास्थान दिया गया है। आधुनिक काल के कुछ बहु सम्मानित गद्यकारों का परिचय यहाँ दिया जाता है।

श्यामलदास

ये दधिवाडिया गोत्र के चारण मेवाड राज्य के ढोकलिया ग्राम के निवासी थे। इनके पूर्वज मारवाड राज्यान्तर्गत मेडते परगने के गाँव दधिवाड़ा में रहते थे और रूँण के साँखले राजाओं के 'पोलपात' थे। जब राठौडों ने साँखलों से उनका राज्य छीन लिया तब वे मेवाड में चले आए। उनके साथ श्यामलदास के पूर्वज भी यहाँ आकर बसे। दधिवाडा गाँव से आने के कारण ये दधिवाडिया कहलाये।

इनका जन्म सं० १८९३ में हुआ था। इनके दादा का नाम रामदीन और पिता का कमजी था। ये चार भाई थे—ओनाडसिंह, श्यामलदास, ब्रजलाल और गोपालसिंह। इन्होंने दस वर्ष की आयु में सारस्वत पढ़ना प्रारंभ किया और उसके बाद वृत्तरत्नाकर, साहित्य-दर्पण, रसमंजरी, कुवलयानंद इत्यादि ग्रंथों का अध्ययन किया जिससे संस्कृत-काव्य के प्रायः सभी अंगों का इन्हें अच्छा बोध हो गया। सं० १९१२ तक विद्याभ्यास चलता रहा। इस अर्से में इन्होंने संस्कृत के सिवा उर्दू-फारसी और डिंगल में भी अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली। इन्होंने दो-एक ग्रंथ ज्योतिष तथा वैद्यक के भी पढ़े थे।

इनका पहला विवाह सं० १९०७ में शाकरड़ा के भादकलाजी की बेटी से हुआ। सं० १९१९ में इनके एक पुत्र हुआ जो तीन वर्ष बाद मर गया। फिर तीन कन्याएँ और दो पुत्र हुए, जो बहुत छोटी अवस्था में परलोक सिधार गये। इन्होंने दूसरा विवाह सं० १९१६ में किया था। इनके एक भी पुत्र

जीवित नहीं रहा जिससे इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र जसकरण को अपनी गोद ले लिया था। श्यामलदासजी का देहान्त सं० १९५१ में हुआ।

श्यामलदास एक सभा-चतुर, नीति-निपुण एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे और महाराणा सज्जनसिंह के इतने कृपा-पात्र थे कि उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे। इसलिए लोग इनसे प्रायः बहुत जलते थे। इनका एक कारण यह भी था कि ये हाँ-हुजूरी नापसद करते थे और कितना ही प्रतिष्ठित व्यक्ति क्या न होता उसे खरी २ सुनाये बिना नहीं रहते थे। ये कहा करते थे कि अपने मतलब के लिए मीठी २ बातें तो सभी कह देते हैं। पर हितकारक कटु बात कहनेवाले कम मिलते हैं। अतः कटु सत्य कहने का काम मेरा है। ये महद्राज सभा (State Council) के मेम्बर थे और इतिहास-कार्यालय, पुस्तकालय, म्यूजियम आदि की देख-रेख भी करते थे। इसके सिवा राज-काज सम्बन्धी प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषयों पर इनकी सलाह ली जाती थी। मेवाड़ राज्य के प्रति की हुई सेवाओं के कारण कविराजा का सम्मान भी खूब हुआ। महाराणा सज्जनसिंह ने इन्हे 'कविराजा' की पदवी, जुहार, ताजीम, छड़ी, बाँह-पसाव, चरण-शरण की मुहर, पैरों मे सर्व प्रकार का सुवर्ण भूषण और पगडी में माँझा आदि देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई जिसका वर्णन इन्होंने स्वयं ही निम्नलिखित छप्पय मे किया है—

जिम जुहार ताजीम, पाय लगर हिम पटके।
पूरण बाँह पसाव, खळा अदवा मन खटके॥
जाहिर छड़ी जळेब, थरु बींडो जस थापण।
माँझो पाघ मँझार, छाप कागळ बड छापण॥
कविदास तेण कविराज कर, कठिन अक विधि कापिया।
करि शुभ निगाह श्यामल कुरब, सज्जन राण समापिया॥

अंग्रेजी सरकार ने भी इनकी योग्यता की क़दर कर इनको महामहोपाध्याय का खिताब दिया था। महाराणा साहब के प्रसन्न होने से मेवाड के पोलिटिकल एजेंट कर्नल इम्पी ने अपनी कोठी पर दरबार किया और कविराजा को 'कैसरे हिन्द' का तगमा देकर कहा कि आपने महाराणा साहब को समय-समय पर बहुत उत्तम सलाहें दी हैं, जिससे खुश होकर अंग्रेज सरकार आपको यह तगमा देती है।

श्यामलदास कवि और इतिहासकार दोनों थे। पर राजस्थान में इनकी कीर्ति का आधार इनकी कविताएँ नहीं, बल्कि इनका लिखा 'वीरविनोद' नामक इतिहास-ग्रन्थ है। यह बृहद् इतिहास दो भागों में विभक्त है और रॉयल चोपेजी साइज़ के २७०० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। महाराणा शम्भुसिंह की आज्ञा और कर्नल इम्पी के आग्रह से सं० १९२८ में इसका लिखना आरंभ हुआ और महाराणा फतहसिंह के राजत्व-काल में सं० १९४६ में इसकी समाप्ति हुई। इसके लिए सामग्री जुटाने आदि में मेवाड़ राज्य का १०००००) रु० व्यय हुआ था। ग्रंथ छप तो गया पर महाराणा फतहसिंह ने कुछ विशेष कारणों से इसका प्रकाशित होना मुनासिब न समझा और इसका प्रचार रोक दिया। इसलिए छप जाने पर भी यह सर्व साधारण के काम में न आ सका। कई वर्षों तक बंद कोठरियों में पड़ा रहा। वर्तमान महाराणा साहब ने अब इसको बेचने की आज्ञा देकर इतिहास-प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। 'वीरविनोद' इतिहास का एक स्टैण्डर्ड ग्रंथ है और मेवाड़ के इतिहास पर प्रमाण समझा जाता है। इसमें मुख्यतः मेवाड़ का इतिहास वर्णित है पर प्रसंगवश जयपुर, जोधपुर, जैसल-मेर आदि राजस्थान की दूसरी रियासतों तथा बहुत से मुसलमान बादशाहों का विवरण भी इसमें आ गया है, जिससे इसकी उपादेयता और भी बढ़ गई है। प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, बादशाही फरमानों इत्यादि का इसमें अपूर्व संग्रह हुआ है।

भाषा पर श्यामलदास का असाधारण अधिकार था। ये बहुत चुस्त, चलती हुई और मुहावरेदार भाषा लिखते थे। इनकी भाषा में अरबी-फारसी के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। इतने अधिक कि वह हिंदी न रहकर एक तरह से उर्दू ही गई है, सिर्फ लिपि नागरी है। उदाहरण लीजिए—

"बादशाह ने उन लोगों की सलाह पर बिलकुल खयाल न किया और यही जवाब दिया कि राणा के आये बगैर इस लड़ाई से हाथ उठाने में मुझे शर्म आती है, और उन दोनों सरदारों से फर्माया कि राणा के हाजिर हुए बिना यह अर्ज मंजूर नहीं हो सकती। तब डोडिया सांडा ने अर्ज की कि हमारे मालिक तो पहाड़ी मुल्क के राजा हैं और पहाड़ी लोगों में जिहालत (असभ्यता) ज्यादा होती है, वे इस वक्त मौजूद नहीं हैं। इसलिए उनके हाजिर होने का इक़रार हम लोग नहीं कर सकते। हम लोगों को, जो पेशकश देकर

लाचारी करते हैं, जबरदस्ती मारना बादशाही क़ायदे के खिलाफ है; इस पर जयपुर के राजा भगवानदास ने बादशाह के कान में झुककर अर्ज की कि देखिए यह कैसा गुस्ताख आदमी है कि शहनशाही दरबार में सख्त कलामी से पेश आता है। अकबर शाह तो बड़ा कदरदान था। उसने फरमाया, कि यह शख्स जो अपने मालिक की खैरख्वाही पर मुस्तैद होकर सवालों के जवाब बेधड़क दे रहा है इनाम के लायक है। इससे राजा भगवानदास को, जिसने अदावत से चुगली खाई थी, शर्मिंदा होना पड़ा।"

शिवचन्द्र

शिवचंद्र भरतिया जाति के अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज जोधपुर राज्य के डिडवाणा गाँव के निवासी थे, जहाँ से वे हैदराबाद राज्यान्तर्गत कन्नट ग्राम में जाकर बस गये थे। वहीं सं० १९१० में इनका जन्म हुआ था। इसके दादा का नाम गंगाराम और पिता का बलदेव था। अपने पिता के चार पुत्रों में ये सबसे बड़े थे। परन्तु पिता की मृत्यु के बाद उनकी समस्त धन-सम्पत्ति तीनों छोटे भाइयों ने आपस में बाँट ली और इनके कुछ भी हाथ न लगा। इसलिए इन्होंने व्यापार करना छोड़ वकालत करना शुरू किया। परन्तु वकालत में इनका जी न लगा और जाकर इन्दौर में सरकारी नौकरी कर ली। इनका देहान्त सं० १९७५ में हुआ।

भरतियाजी संस्कृत, हिन्दी, मराठी, और राजस्थानी भाषा के सुज्ञाता और दर्शन-शास्त्र के प्रकृष्ट विद्वान थे। इन्होंने १७ ग्रंथ हिंदी में, १३ मराठी में, ६ राजस्थानी में और तीन संस्कृत भाषा में लिखे जिनमें इनकी विद्वता, गहरे अनुशीलन, दीर्घकालिक अनुभव, विस्तृत पठन तथा कठोर परिश्रम का पता लगता है। राजस्थानी भाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) केसर विलास नाटक (२) फाटका जजाल नाटक (३) बुढापा की सगाई नाटक (४) कनक सुन्दर (५) मोतियां की कंठी (६) वैश्य प्रबोध (७) विश्रान्त प्रवासी (८) संगीत मान कुवर नाटक और (९) बोध दर्पण।

शिवचन्द्र आदर्श चेता साहित्यकार और सहृदय समाज सेवी थे। इनके ग्रन्थों में प्रखर पांडित्य और सूक्ष्मतम दार्शनिकता का गाभीर्य है। अपनी प्रतिभा एवं कल्पना के बल से इन्होंने हिंदू समाज, विशेषतः मारवाड़ी समाज, की दुर्बलताओं तथा कुरीतियों का यथार्थ चित्रण किया है। भाषा की सफाई भी खूब है। विचार सुलझे हुए, मर्मस्पर्शी और बोधगम्य हैं। इनकी राजस्थानी भाषा का नमूना देखिए—

लगती है जिसकी खिड़की घड़े के घेरे में सजाई गई है और जो जन्म दिन से माता के समान मेरे दुख-सुख की साथिन रही है।"

पंडित लज्जाराम मेहता हिन्दी साहित्य के अमर जीवों में से एक हैं। इनका जन्म स० १९२० चैत्र कृष्णा २ को बूँदी में हुआ था। ये नागर ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज बड़नगर के रहनेवाले थे जहाँ से वे राजस्थान में आ बसे थे। इनके पिता का नाम गोपालराम और पितामह का गणेशराम था। पंडितजी १८ माह तक गर्भवास में रहे थे। इसलिए माँ के उदर से ही बहुत सी बीमारियाँ अपने साथ लेकर आए थे। इनकी ६८ वर्ष की आयु में एक दिन भी ऐसा नहीं निकला जब इन्हें कोई-न-कोई शारीरिक कष्ट न रहा हो। खाँसी इनकी चिरसंगिन रही। बवासीर, हृद्रोग आदि व्याधियों के कारण इनको अपना जीवन एक भार-सा मालूम देता था। रात को नींद नहीं आती थी। इसलिए इन्होंने दिन में दो बार अफीम का सेवन करना शुरू कर दिया था। आँखों की कमजोरी को दूर करने के लिए ये तमाखू भी खूब सूंघते थे।

प० लज्जाराम

मेहताजी को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली थी। पर बाद में अपने निजी परिश्रम द्वारा इन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। संवत् १९३८ में जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तब इनको 'कपड़ा की दूकान' पर उनकी जगह १२) मासिक की नौकरी मिली। वहाँ से इनका तबादला सरकारी स्कूल में हुआ। पर ये एक ईमानदार, निष्पक्ष और अपने विचारों पर दृढ़ रहनेवाले व्यक्ति थे इसलिये यहाँ भी इनका टिकाव अधिक दिनों तक न हो सका। राजकर्मचारियों की धींगा-धींगी तथा अपने जातीय भाइयों के षड्यन्त्रों से तंग आकर इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और जीविकार्थ बम्बई चले गए। बम्बई में ये पहले 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी संपादक और बाद में प्रधान सम्पादक बनाए गए। सुयोग्य और बहुभाषा ज्ञानी तो ये थे ही। इस क्षेत्र में बहुत जल्दी चमक गये। स० १९६० तक ये 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के संपादक रहे। बाद में वापस बूंदी चले आए। इस बार बूंदी का वातावरण इनके लिए अधिक अनुकूल रहा। बूंदी-नरेश महाराव राजा रघुवीरसिंहजी ने इन्हें अपने यहां नौकर रख लिया और स्पष्टभाषी, निष्पक्ष एवं विश्वसनीय समझ कर कई तरह से इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इनका देहान्त स०१९८८ में बूंदी में हुआ।

उदयसिंह (११) प्रतापसिंह, (१२) पृथ्वीराज (जयपुर) (१३) पूरणमल, (१४) रतनसिंह (१५) आसकरण, (१६) राजसिंह (जयपुर) (१७) भारमल (१८) भगवानदास (१९) मानसिंह (२०) बीकाजी (२१) नराजी (२२) लूणकरण (२३) जैतसी, (२४) कल्याणमल (२५) मालदेव (२६) बीरबल (२७) मीराबाई (२८) जसवन्तसिंह (२९) खानखाना (३०) औरङ्गजेब (३१) जसवन्त स्वर्गवास (३२) सरदार सुख समाचार (३३) विद्यार्थी विनोद (३४) स्वप्न राजस्थान (३५) मारवाड़ का भूगोल (३६) प्राचीन कवि (३७) बीकानेर राज्य पुस्तकालय (३८) इसाफ संग्रह (३९) नारी नवरत्न (४०) महिला मृदुवाणी, (४१) मारवाड के प्राचीन शिलालेखों का संग्रह (४२) सिंध का प्राचीन इतिहास, (४३) यवन राज वंशावली (४४) मुगल वंशावली (४५) युवती योग्यता (४६) कविरत्नमाला (४७) अरबी भाषा में संस्कृत ग्रन्थ (४८) रूठी रानी (४९) परिहार वंश प्रकाश (५०) परिहारों का इतिहास (५१) राज रसनामृत और (५२) सांगा।

मुंशी देवीप्रसाद ने कोई बहुत बड़ा तथा क्रमबद्ध इतिहास कहीं का भी नहीं लिखा। परन्तु अकबर, प्रताप, मीराबाई आदि की जीवनियां बड़े अनुसंधान के बाद लिखी गई हैं और इनसे उनकी शोध-बुद्धि, विद्वत्ता और ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय मिलता है। ये बहुत सरल, व्यावहारिक एवं चलती हुई भाषा लिखते थे और शब्दाडम्बर तथा किसी बात को घुमा फिरा कर कहने के विरुद्ध थे। इनकी भाषा-शैली में उर्दू-हिन्दी का अपूर्व सम्मेलन हुआ है। विषय प्रतिपादन-प्रणाली सादी तथा वाक्यावली सुलझी हुई होने से इनके ऐतिहासिक ग्रन्थों के पढने में उपन्यासों के पढने का-सा आनंद आता है। इनकी स्वतन्त्र भाषा का थोड़ा सा नमूना देखिए—

"हे राजन्! जो मैं कहता हूँ उसे आप अभिमान छोडकर सुनें। जब न तो मैं ही कुत्ते से कम हूँ और न आप राजा युधिष्ठिर से बढकर हैं, तो फिर मेरी और आपकी बातचीत होने से दरबारी लोग क्यों बुरा मान रहे और खफा हो रहे हैं। सुनिए इस असार संसार में मनुष्य का नाशवान शरीर ममता से ठहरा हुआ है, जो यह न हो तो किसी का काम ही न चले। देखिए, जैसे आपको अपने अलंकारों से सजे हुए शरीर का अहंकार है वैसे ही हम गरीबों को भी अपने नंगे-धड़ंगे शरीरों का है। आपको बडे २ महलोंवाली अपनी राजधानी जैसी प्यारी है वैसे ही मुझे भी अपनी यह बुरी-सुरी झोंपड़ी अच्छी

लगती है जिसकी खिड़की घड़े के घेरे से सजाई गई है और जो जन्म दिन से माता के समान मेरे दुख-सुख की साथिन रही है।"

पंडित लज्जाराम मेहता हिन्दी साहित्य के अमर जीवों में से एक हैं। इनका जन्म सं० १९२० चैत्र कृष्णा २ को बूँदी में हुआ था। ये नागर ब्राह्मण थे।

पं० लज्जाराम

इनके पूर्वज बड़नगर के रहनेवाले थे जहाँ से वे राजस्थान में आ बसे थे। इनके पिता का नाम गोपालराम और पितामह का गणेशराम था। पंडितजी १८ माह तक गर्भवास में रहे थे। इसलिए माँ के उदर में ही बहुत सी बीमारियाँ अपने साथ लेकर आए थे। इनकी ६८ वर्ष की आयु में एक दिन भी ऐसा नहीं निकला जब इन्हें कोई-न-कोई शारीरिक कष्ट न रहा हो। खाँसी इनकी चिरसंगिन रही। बवासीर, हृद्रोग आदि व्याधियों के कारण इनको अपना जीवन एक भार-सा मालूम देता था। रात को नींद नहीं आती थी। इसलिए इन्होंने दिन में दो बार अफीम का सेवन करना शुरू कर दिया था। आँखों की कमजोरी को दूर करने के लिए ये तमाखू भी खूब सूघते थे।

मेहताजी को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली थी। पर बाद में अपने निजी परिश्रम द्वारा इन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। संवत् १९३८ में जब इनके पिता की मृत्यु हो गई तब इनको 'कपड़ा की दूकान' पर उनकी जगह १२) मासिक की नौकरी मिली। वहाँ से इनका तबादला सरकारी स्कूल में हुआ। पर ये एक ईमानदार, निष्पक्ष और अपने विचारों पर दृढ़ रहनेवाले व्यक्ति थे इसलिये यहाँ भी इनका टिकाव अधिक दिनों तक न हो सका। राजकर्मचारियों की धींगा-धींगी तथा अपने जातीय भाइयों के षड्यन्त्रों से तंग आकर इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और जीविकार्थ बम्बई चले गए। बम्बई में ये पहले 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी संपादक और बाद में प्रधान सम्पादक बनाए गए। सुयोग्य और बहुभाषा ज्ञानी तो ये थे ही। इस क्षेत्र में बहुत जल्दी चमक गये। सं० १९६० तक ये 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के संपादक रहे। बाद में वापस बूंदी चले आए। इस बार बूंदी का वातावरण इनके लिए अधिक अनुकूल रहा। बूंदी-नरेश महाराव राजा रघुवीरसिंहजी ने इन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया और स्पष्टभाषी, निष्पक्ष एवं विश्वसनीय समझ कर कई तरह से इनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इनका देहान्त सं० १९८८ में बूंदी में हुआ।

पंडितजी के कोई सन्तान नहीं हुई। उनके भानजे श्रीयुत रामजीवनजी आज कल उनकी धन-संपत्ति के मालिक हैं। ये भी हिंदी के बहुत अच्छे लेखक और बहुपठित विद्वान् हैं। इनकी 'देशी बटन', 'कौतुक-माला', 'मुग्धा', इत्यादि दस के लगभग पुस्तकें छप चुकी हैं।

पं० लज्जारामजी सनातन धर्म के कट्टर अनुयायी और हिन्दू आदर्शों के पूर्ण पक्षपाती थे। हिन्दी की सेवा भी इन्होंने खूब की। सं० १९८६ में होनेवाले हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने जाने के लिए मेहताजी का नाम समाचार-पत्रों में निकला था। पर कुछ तो शारीरिक अस्वस्थता के कारण और कुछ यह समझकर कि देशी राज्य में रहकर इस तरह के उत्सवों में सम्मिलित होना ठीक नहीं होगा, इन्होंने उक्त पद को स्वीकार नहीं किया। इन्होंने २३ ग्रंथ लिखे जिनमें से १२ उपन्यास और शेष ऐतिहासिक तथा संग्रह ग्रंथ हैं। इन ग्रन्थों के नाम ये हैं—

(१) कपटी मित्र (२) व्रत चरित्र (३) शराबी की खराबी (४) विचित्र स्त्री चरित्र (५) बीरबल विनोद (६) हिन्दू-गृहस्थ (७) धूर्त रसिकलाल (८) स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी (९) विक्टोरिया चरित्र (१०) अमीर अबदुर्रहमान (११) आदर्श दंपती (१२) भारत की कारीगरी (१३) सुशीला विधवा (१४) बिगड़े का सुधार (१५) विपत्ति की कसौटी (१६) उम्मेदसिंह चरित्र (१७) पराक्रमी हाडाराव (१८) जुझार तेजा (१९) आदर्श हिंदू (२०) पं० गंगा-दास का चरित्र (२१) ओंकारराम गोत्र का वंशवृक्ष (२२) आप बीती (२३) पन्द्रह लाख पर पानी।

मेहताजी ने उपन्यास अधिक संख्या में लिखे हैं। हिन्दी उपन्यास वस्तु, चरित्र, टेकनीक आदि की दृष्टि से बहुत उन्नत है। अतः बीस-तीस वर्षों पहले के लिखे इनके उपन्यास आज-कल के उपन्यासों के साथ नहीं खड़े किये जा सकते। परन्तु इनकी भी उपयोगिता है। इनमें उस समय के हिन्दू समाज का सही खाका खींचा गया है जो अब आगे आनेवाली पीढ़ी के लिए इतिहास का काम देगा।

पंडितजी हिंदी के मँजे-मँजाये लेखक थे। ये बहुत जल्दी लिखते थे और बहुत अच्छा लिखते थे। इनकी भाषा बड़ी सरल, मुहावरेदार और प्रवाह युक्त है। ओज और व्यंग भी उसमें पर्याप्त पाया जाता है। उदाहरण—

"बूंदी के उपलब्ध पंडितों और डिंगल तथा पिंगल के नामी नामी कवियों में से चुने हुए व्यक्ति इसमें नियत किये गये थे। मैं भी उनमें पाँचवाँ सवार था। मैंने एक काम किया और वह समस्त सभ्या के पसंद आया। करना यह था कि जिस पद्य के अर्थ में कुछ उलझन दिखाई देती और सब लोग अपनी अपनी राय पर उसका अर्थ खैंचते थे फौरन ही मैं पेन्सिल कागज लेकर उसका अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार लिखता और उस पर बहस होकर तुरत एक मार्ग निकल आता था। प्रयोजन यह कि जो कुछ मेरे ध्यान में आया कच्चा पक्का अर्थ मैंने पत्रारूढ कर दिया। इससे इधर मेरी झंझट ओछी हो गई और उधर लोगों को बहस कर निर्णय करने के लिए भूमि मिल गई। इस तरह से कई मास तक काम अच्छी तरह चलता रहने के अनंतर अकस्मात् कई अनिवार्य कारणों से काम अधूरा छूट गया।"

पं० रामकर्ण का जन्म सं० १९१४ में जोधपुर राज्य के बडलू नामक गाँव में अपने नाना के घर हुआ था। ये दाहिमा ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बलदेवजी और माता का शृंगार देवी था।

रामकर्ण

पंडितजी का आदि स्थान मेड़ता था जहाँ इनके पुरखा ज्योतिष का काम किया करते थे। सं० १९०१ में इनके पिता मेड़ता छोड़कर जोधपुर में जा बसे थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में पंडितजी की शिक्षा प्रारंभ हुई। हिन्दी तथा गणित का थोड़ा-सा ज्ञान हो जाने पर आपने सारस्वत पढ़ना शुरू किया, जिसके साथ-साथ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पाठ भी चलता रहा। तदनंतर रघुवंश आदि काव्य एवं ज्योतिष-वैद्यक के ग्रन्थ भी पढ़े। फिर अपने पिता के साथ बम्बई चले गए, जहाँ प्रज्ञाचक्षु पं० गट्टूलाल के पास रहकर सिद्धान्त-कौमुदी, महाभाष्य, वेदान्त, न्याय, साहित्य आदि अनेक विषयों का गम्भीर अध्ययन किया। बम्बई से आने पर ये जोधपुर के दरबार हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ पूरे १८ वर्ष तक बड़ी सचाई और लगन के साथ काम किया। बाद में इनका तबादला राजकीय इतिहास-विभाग में हो गया। तब से २८ वर्ष तक ये जोधपुर के इतिहास-विभाग में रहे। यहाँ पर इनका मुख्य कार्य प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि को पढ़ना था। इन्होंने सैकड़ों पुराने शिलालेख, ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने इत्यादि पढ़े और पुरातत्व-शोधक कई यूरोपीय विद्वानों के पढ़े हुए लेखों का संशोधन कर उन्हें इण्डियन

एण्टिक्वेरी और एपिग्राफिया इण्डिका में छपवाया। भारतीय पुरातत्व-विभाग के तत्कालीन डाइरेक्टर सर जान मार्शल पंडितजी की प्रतिभा पर मुग्ध थे। अपनी अनेक रिपोर्टों में उन्होंने इनकी विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा की है। एक बार उन्होंने इनके विषय में लिखा था—'पंडित रामकर्ण असाधारण गुणी मालूम होते हैं और प्राचीन लिपि पढ़ने के परिज्ञान के कारण भारत-भर के प्रथम स्थानीय आधे दर्जन विद्वानों की गणना में आते हैं।

संस्कृत, हिन्दी, डिंगल आदि भाषाओं के सुज्ञाता होने के साथ ही साथ पण्डितजी इतिहास के भी बहुत बड़े खोजी और विद्वान थे। ये दो साल तक कलकत्ता-विश्वविद्यालय में राजपूत इतिहास के लेक्चरार भी रहे थे। डिंगल-भाषा के तो ये अद्वितीय अधिकारी माने जाते थे। सं० १९७१ में बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के तत्वावधान में जिस समय प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् डा० टैसीटरी ने राजस्थान में डिंगल-भाषा के ग्रन्थों की खोज का कार्य प्रारंभ किया, उस समय रामकर्णजी उनके प्रधान सहकारी थे। सच तो यह है कि अधिकतर इनके उद्योग और अध्यवसाय के कारण डा० टैसीटरी को अपने शोध-कार्य में इतनी सफलता मिली थी। इनके अतिरिक्त डा० टैसीटरी को डिंगल-भाषा का प्रारंभिक ज्ञान भी इन्होंने करवाया था। बाद में जब डा० टैसीटरी ने डिंगल-ग्रन्थों के संपादन का काम शुरू किया, तो उसमें भी इनका पूरा-पूरा हाथ था। ये उन ग्रंथों के कठिन शब्दों एवं स्थलों के अर्थ करते जाते थे और डा० टैसीटरी उनके नोट आदि अंग्रेजी में लिख लेते थे।

वृद्धावस्था में पंडितजी डिंगल भाषा का एक बृहत् कोष तैयार करने में लगे हुए थे जिसके लिए कठोर परिश्रम करके उन्होंने ६०००० शब्दों एवं हजारों कहावत मुहावरों का संग्रह किया था। परन्तु दुःख है कि यह कोष प्रकाशित भी नहीं हो पाया था कि सं० २००२ आश्विन सुदी ११ शनिवार को उनका स्वर्गवास हो गया।

हिंदी, संस्कृत एवं राजस्थानी के सब मिलाकर पंडितजी ने कोई ७५ ग्रंथों का प्रणयन, संपादन व अनुवाद किया। इनमें नीचे लिखे पाँच ग्रंथ, जो प्रकाशित भी हो चुके हैं, विशेष उल्लेखनीय हैं—

(१) राजरूपक (२) सूरज प्रकास (३) नैणसी की ख्यात (४) मारवाड़ का मूल इतिहास (५) मारवाड़ी व्याकरण और (६) बाँकीदास ग्रंथावली (प्रथम भाग)।

पंडितजी हिंदी के उत्कृष्ट लेखक थे। इनकी भाषा उस भाषा का अच्छा नमूना है जिसे आज कल कुछ लोग विशुद्ध हिंदी बतलाते हैं। ये बहुत प्रौढ़, परिमार्जित एवं सजीव भाषा लिखते थे जिसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता रहती थी। इनके लेखों में व्यर्थका पिष्टपेषण नहीं मिलता। कुछ और कुछ नई बात अवश्य कहते थे और जो भी कहते उसे प्रमाण द्वारा पुष्ट भी करते जाते थे। इनकी भाषा का नमूना देखिए—

"डिंगल भाषा अपभ्रंश भाषा का ही स्वरूप है। उसकी जन्मदात्री संस्कृत और प्राकृत भाषा है। मुसलमानों के आगमन से पूर्व प्रायः भारत के समस्त प्रदेशों में संस्कृत और प्राकृत का प्रचार अधिक होने से समस्त साहित्य और धर्म ग्रंथ संस्कृत और प्राकृत में निर्माण किये जाते थे। वैदिक और बौद्ध ग्रंथ बहुधा संस्कृत में लिखे जाते थे, और जैन ग्रंथों की रचना प्रायः प्राकृत में और उनकी टीका, विवृत्ति आदि की रचना संस्कृत में होती थी। परन्तु साहित्य के अंगभूत नाटक ग्रंथों में दोनों भाषाएँ समान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। इन दोनों भाषाओं के अतिरिक्त तीसरी प्राचीन देशी भाषा थी, जो सदा बोलचाल में आती थी। वह भाषा मथुरा आदि के प्राचीन शिला-लेखों में देखने में आती है। संस्कृत और प्राकृत के शब्द बिगड़ने और प्राचीन देशी भाषा के शब्द मिश्रित होने से जो भाषा बनी, वही अपभ्रंश भाषा कही जाने लगी। उस अपभ्रंश भाषा का उदाहरण हेमचन्द्राचार्य ने, जो अणहिलवाडा के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंहदेव और कुमारपाल के समय में थे, अपने व्याकरण में यह दिया है—

ढोला मइं तुहुं वारिया, मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तड़ी, दड़वड़ होइ विहाणु" ॥

हरिनारायण

पुरोहित हरिनारायण का जन्म जयपुर राज्य के एक उच्च पारीक कुल में सं० १९२१ में हुआ था। इनके पिता का नाम मन्नालाल, पितामह का नानूलाल और प्रपितामह का अभयराम था। ये सभी बड़े परोपकारी, स्वामिभक्त तथा धर्मात्मा पुरुष हुए हैं। इनके बनवाये हुए कई मंदिर आदि आज भी जयपुर में विद्यमान हैं।

पुरोहितजी की शिक्षा का आरंभ पहले पहल घर ही पर हुआ और जब हिन्दी अच्छी तरह से पढ़ना-लिखना सीख गये तब उन दिनों की पद्धति के

अनुसार इन्हे अमर कोष और सारस्वत का अध्ययन कराया गया। इनकी दादी ने इन्हे गीता, सहस्रनाम, रामस्तवराज इत्यादि का अभ्यास कराया तथा बडी बहिन योगिनी मोतीबाई ने धर्म, योगाभ्यास इत्यादि विषयों की ओर प्रवृत्ति कराई। साथ-साथ उर्दू-फारसी का अध्ययन भी चलता रहा। बारह वर्ष की आयु मे ये महाराजा कॉलेज जयपुर मे भरती हुए और स० १६४३ में एंट्रेन्स की परीक्षा पास की। पुरोहितजी का विद्यार्थी जीवन बहुत ही उज्ज्वल रहा। अपनी कक्षा म ये हमेशा प्रथम रहे जिससे राज्य की ओर से इन्हे बराबर छात्रवृत्ति मिलती रही। एफ० ए० ओर बी० ए० की परीक्षाओ मे सर्वप्रथम रहने मे इनको दो बार 'लॉर्ड नॉर्थब्रुक मेडल' तथा सारे मदरसे मे सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी सिद्ध होने मे 'लॉर्ड लेन्सडाउन मैडल' मिला।

कॉलेज छोडने के बाद स० १६४८ मे सब से पहले ये जयपुर मे मर्दुम शुमारी के काम की देख-रेख करने के लिए रूम इन्स्पेक्टर नियुक्त हुए। तत्पश्चात् इन्होंने राज वकील, नाजिम, स्पेशल डी० आई० ई० ऑफिसर आदि की हैसियत मे कई बडे-बडे ओहदो पर रहकर लगभग ४० वर्ष तक काम किया ओर अपनी सचाई, ईमानदारी एव कार्य-कुशलता से राजा और प्रजा दोनो को बडा लाभ पहुँचाया। लोकोपयोगी कार्य भी इनके द्वारा बहुत से हुए। इन्होंने निजामत शेखावाटी तथा तोरावाटी में राज्य की ओर से कई गोशालाएँ, पाठशालाएँ एव धर्मशालाएँ, स्थापित करवाई और अपनी तरफ से जयपुर के पारीक हाईस्कूल को ७०००) से अधिक का दान दिया। इनका देहान्त स० २००२ मे हुआ।

पुरोहितजी बडे विद्याव्यसनी, साहित्य-रसिक तथा कर्मण्य पुरुष थे और दिन-रात साहित्याध्ययन मे लगे रहते थे। विशेषकर सत साहित्य का इन्हे बहुत शौक था। इन्होंने कोई ३०-३२ ग्रथो का प्रणयन-सकलन किया जिनमें से नीचे लिखे १२ ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं—

(१) विशूचिका निवारण (२) तारागण सूर्य हैं (३) महामति ग्लेडस्टन (४) सतलडी (५) सुन्दरसार (६) महाराजा मिर्जा राजा जयसिंह (७) महाराजा मिर्जा राजा मानसिंह (८) ब्रजनिधि ग्रन्थावली (९) गुरु गोविंदसिंह के पुत्रों की धर्म-बली (१०) सुन्दर ग्रन्थावली (११) शिखर वशोत्पत्ति (१२) महाकवि गग के कवित्त।

भाषा के विषय में पुरोहितजी बड़े उदार विचारों के लेखक थे। अपने विचारों को ठीक तरह से व्यक्त करने के लिए जो शब्द इनको उपयुक्त प्रतीत होता उसका निःशक होकर प्रयोग करते थे। शब्द चाहे हिंदी का होता चाहे अरबी-फारसी का और चाहे राजस्थानी का। फिर भी सस्कृत शब्दों की ओर इनका झुकाव विशेष रहता था यह कहना अयथार्थ न होगा। इनकी भाषा बहुत आलकारिक, वर्णन शैली सरस तथा विचार-व्यजना साहित्यिक होती थी और बड़ी भावुकता एवं स्पष्टता के साथ अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। देखिए—

"इसमें सन्देह नहीं कि नागरीदासजी की कविता में कुछ प्रौढता और शब्दों तथा भावों की जड़ाई सी प्रतीत होती है। यह ब्रजनिधिजी की कविता उक्त सब गुणों को अपने ढग पर धारण करती हुई स्फीत, निरामय और शुद्ध स्नात भावों को रसीले-चटकीले-नुकीलेपन से सीधा-सादा रूप प्रदान करती है। परन्तु ब्रजनिधिजी के भावो का अनूठापन हमें कुछ बढकर जॅचता है। दोनों कवियों में बहुत दृढमूल भावुकता, भक्ति की अनन्यता, मनोभावों की सत्यता और गभीरता अलौकिक है। दोनों के समान इष्ट श्री राधा-कृष्ण, वा और निकट जाने पर, श्री नागरी गुण-आगरी राधिकाजी ही हैं।"

गौरीशकर

पडित गौरीशकर-हीराचद ओझा का जन्म सिरोही राज्यान्तर्गत रोहेड़ नामक गॉव मे स० १६२० मे हुआ था। ये सहस्र औदिच्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम हीराचद और दादा का पीताम्बर था। इनके पूर्वज मेवाड के रहनेवाले थे। किन्तु लगभग २०० वर्ष से वे सिरोही मे जाकर बस गये थे। पडितजी के पिता एक विद्यानुरागी तथा कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और अपने तीन पुत्रों में इन्हे सब से होनहार एव चतुर समझते थे। इसलिए अपनी आर्थिक स्थिति खराब होते हुए भी उन्होंने इन्हें ऊँची शिक्षा दिलाने का दृढ निश्चय कर लिया और हिन्दी, संस्कृत, गणित आदि की, जितनी भी शिक्षा इनके गॉव मे मिल सकती थी उतनी प्राप्त कर लेने पर इनके बड़े भाई नदराम के साथ इन्हें बम्बई भेज दिया। अर्थ सकट और नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए स० १६४२ में पडितजी ने मेट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास की और बाद मे विल्सन कॉलेज में भर्ती हुए। पर शारीरिक अस्वस्थता के कारण इंटरमीडियेट की परीक्षा में न बैठ सके और अपने गॉव रोहेड़ा मे चले आये।

बबई मे पडितजी को अपनी मानसिक शक्तियों को विकसित करने का अच्छा अवसर मिला। स्कूल तथा कॉलेज मे जो पाठ्य पुस्तकें नियत थीं, उनके सिवा इन्होंने ग्रीस तथा रोम के इतिहास और पुरातत्व सबधी बहुत से ग्रन्थो का मनन किया। राजस्थान के इतिहास की ओर इनका झुकाव कर्नल टॉड के अमर ग्रन्थ 'ऐनाल्स एण्ड एण्टिक्विटीज आव् राजस्थान, के पढने से हुआ। अपना ऐतिहासिक ज्ञान बढाने के लिए इन्होंने राजस्थान में भ्रमण करना निश्चित किया और सब से पहले उदयपुर आये। जिस समय ये उदयपुर पहुँचे उस समय यहाँ कविराजा श्यामलदास की अध्यक्षता में 'वीरविनोद' नामक एक बहुत बड़ा इतिहास- ग्रथ लिखा जा रहा था। पडितजी जब कविराजा से मिले तब वे इनकी इतिहास विषयक जानकारी एव धारण-शक्ति से बहुत प्रभावित हुए और इन्हें पहले अपना सहायक मत्री तथा बाद मे प्रधान मत्री नियुक्त किया। तदनतर ये उदयपुर म्यूजियम के अध्यक्ष नियुक्त हुए। स० १९६५ मे ये राजपूताना म्यूजियम, अजमेर, के क्यूरेटर बनाये गए। अजमेर में रहकर इन्होंने इतिहास के शोध का बहुत काम किया जिससे स० १९७१ मे इनको अग्रेज सरकार की ओर से 'रायबहादुर, की और स० १९८५ में 'महामहोपाध्याय' की उपाधि मिली। स० १९६५ मे जब इनकी लिखी 'प्राचीन लिपि माला' का दूसरा सस्करण निकला तब इनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, की ओर से 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' दिया गया। हिन्दुस्तानी एकडेमी, प्रयाग के तत्वावधान में 'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति' पर तीन व्याख्यान भी इन्होंने दिये थे जो प्रकाशित हो चुके हैं। इसके सिवा हिन्दू विश्वविद्यालय ने इनको 'डी० लिट्' की उपाधि से और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया था। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इनके सम्मानार्थ 'ओझा अभिनन्दन-ग्रन्थ' भी निकाला था। ये नागरी प्रचारिणी सभा के सपादक और साहित्य सम्मेलन के प्रधान भी रहे थे। इनका देहान्त स० २००४ मे हुआ।

पडितजी इतिहास के धुरधर विद्वान थे। विशेषकर राजस्थान के इतिहास का इन्हे असाधारण ज्ञान था और उस पर अथॉरिटी समझे जाते थे। हमारे देश मे ऐसे विद्वानों की बहुत कमी है जो इतिहासकार होने के साथ-साथ पुरातत्वज्ञ और मुद्रा-विज्ञानवेत्ता भी हो। परन्तु पंडितजी मे ये तीनों बातें एक साथ पाई जाती थीं। इसलिए इनके इतिहास-ग्रन्थ छिछले नहीं, बल्कि प्रामाणिकता और गर्भीरता लिए हुए हैं। ये प्राचीन लिपि-ज्ञान-विशेषज्ञ भी थे। इनका "प्राचीन लिपि माला" नामक ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की वस्तु है।

ओझाजी को हिन्दी, सस्कृत, पाली आदि बहुत-सी भारतीय भाषाओं का असाधारण ज्ञान था और अग्रेजी भी बहुत अच्छी लिखते थे। परन्तु हिन्दी के प्रति प्रेम विशेष होने से इन्होंने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी ही मे लिखे हैं। यह हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए बडे गौरव की बात है। इनके द्वारा रचित तथा सपादित ग्रथो के नाम ये हैं:—

मौलिक ग्रथ

(१) प्राचीन लिपिमाला (२) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (३) सोलकियों का इतिहास (४) सिरोही राज्य का इतिहास (६) बापा रावल का सोने का मिक्का (६) वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप (७) मध्य कालीन भारतीय सस्कृति (८) राजपूताने का इतिहास (चार खंड) (९) उदयपुर राज्य का इतिहास (दो भाग) (१०) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री (११) कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र (१२) राजस्थान की ऐतिहासिक दत कथाएँ (प्रथम भाग) (१३) नागरी अक और अक्षर।

संपादित ग्रथ

(१) अशोक की धर्म लिपियाँ (२) सुलेमान सौदागर (३) प्राचीन मुद्रा (४) नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १-१२ (५) कोशोत्सव-स्मारक सग्रह (६) हिन्दी टॉड राजस्थान (पहला और दूसरा खड) (७) जयानक प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्य सटीक (८) जयसोम रचित कर्मचन्द्र वशोत्कीर्तनक काव्यम् (९) मुहणोत नैणसी की ख्यात (दूसरा भाग) (१०) गद्य रत्न माला (११) पद्य रत्न माला।

ओझाजी के ग्रथो का अध्ययन करते समय सब से पहली बात जो स्पष्ट रूप से सामने आती है वह है इनकी विशुद्ध भाषा। ये बहुत सयत, व्यवहारिक एव प्रौढ भाषा लिखते थे और सरल तो वह इतनी होती थी कि जिस किसी को हिन्दी भाषा का थोडा-सा भी ज्ञान होता वह बहुत सुगमता से उसे समझ लेता था। जहा तक हो सकता पडितजी शुद्ध सस्कृत शब्दों से ही काम लेते थे, पर अरबी, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने न्यूनाधिक किया है। लेकिन सिर्फ ऐसे ही शब्दों का जो कई शताब्दियों से हिन्दी में प्रयुक्त होते आ रहे हैं और हिन्दी के माने जा चुके हैं, जैसे मजूर, अर्ज, कैद, खूब, क़िला, गरीब, फतह, खाली इत्यादि। शब्द किसी भी भाषा का होता पडितजी उसे ठीक तत्सम रूप में प्रयुक्त करने के पक्षपाती थे।

यही बात राजस्थानी भाषा के शब्दो के प्रयोग मे भी देखी जाती है। वैसे यदि देखा जाय तो प्रान्तीयता का प्रभाव इनकी भाषा पर बिलकुल नहीं है। पर जहाँ कहीं प्रान्तीय शब्दों का व्यवहार करना पडा है, उन्हे इन्होंने ठीक उसी रूप में लिखा है, जिस रूप मे वे वास्तव में बोले जाते हैं, जैसे राठौड, चित्तौड, राणा, मेवाड, रावळ, मीराबाई, खॅुमाण इत्यादि। राजस्थान के बहुत से तथा राजस्थान के बाहर के प्राय. सभी हिन्दी-लेखक इनके स्थान पर क्रमशः राठौर, चित्तौर, राना, मेवार, रावल, मीरा, खुमान आदि शब्दों का प्रयोग करते है, जो वस्तुतः अशुद्ध हैं। ये शब्द राजस्थान में इस तरह से कभी बोले ही नहीं जाते।

पडितजी की सभी रचनाओं मे धारावाहिकता का आनन्द खूब मिलता है। सामान्यतः ये बहुत छोटे २ वाक्य लिखते थे। और प्रत्येक वाक्य जजीर की कड़ी की तरह एक दूसरे से जुडा हुआ रहता था। पाडित्याभिमान, अस्वाभाविकता तथा व्यर्थ का वागाडंबर इनके ग्रन्थों में नहीं मिलता। इनकी दृष्टि सदैव तथ्य निरूपण की ओर रहती थी। इसलिए ये ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते थे जो बहुत सरल तथा प्रसगानुसार उपयुक्त होते थे। ऐतिहासिक सत्य को कायम रखते हुए यदि कहीं अवसर मिलता तो आलकारिक भाषा में साहित्यिक छटा भी थोडी-बहुत दरसा देते थे। ऐसे स्थलों पर इनके वाक्य कुछ लम्बे अवश्य हो जाते थे पर इससे वर्णन मे सजीवता आ जाती और विचार-सामग्री से लदे हुए पाटक के मस्तिष्क को बडा सहारा मिलता था जिससे ग्रथ को आगे पढने का चाव बराबर बना रहता था। उदाहरण देखिये—

"राजपूत जाति के इतिहास में यह दुर्ग एक अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ असख्य राजपूत वीरों ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए अनेक बार असिधारा रूपी तीर्थ में स्नान किया, और जहाॅ कई राजपूत वीरागनाओं ने सतीत्व रक्षा के निमित्त धधकती हुई जौहर की अग्नि मे कई अवसरों पर अपने प्रिय बाल-बच्चों सहित प्रवेशकर जो उच्च आदर्श उपस्थित किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। राजपूतों ही के लिए नहीं, किन्तु प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी हिन्दू सतान के लिए क्षत्रिय रुधिर से सिंची हुई यहाॅ की भूमि के रजकण भी तीर्थरेणु के तुल्य पवित्र हैं"।

और भी—

"ऐसे ही चित्तौड का महाराणा कुभा का कीर्तिस्तम्भ एव जैन स्तम्भ, आबू के नीचे की चन्द्रावती और झालरापाटन के मन्दिरों के भग्नावशेष भी अपने बनानेवालों का अनुपम शिल्पज्ञान, कौशल, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा दृश्यों का पूर्ण परिचय और अपने काम मे विचित्रता एव कोमलता लाने की असाधारण योग्यता प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु ये भव्य प्रासाद परम तपस्वी की भाति खडे रहकर सूर्य्य का तीक्ष्ण ताप, पवन का प्रचन्ड वेग और पावस की मूसलाधार वृष्टियों को सहते हुए आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये, अटल रूप में ध्यानावस्थित खडे, दर्शकों की बुद्धि को चकित और थकित कर देते हैं"।

ये पारीक ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १६६० मे हुआ था। इनके पिता का नाम उदयलाल था। इन्होंने हिन्दू विश्व विद्यालय काशी से हिंदी-अंग्रेजी में एम० ए० किया था। ये बिडला कालेज, पिलाणी, के वॉइस प्रिंसिपल तथा हिंदी-अंग्रेजी के प्रोफेसर थे। इनका देहान्त स० १६६६ में हुआ था।

सूर्य्यकरण

पारीकजी बडे उत्साही साहित्य-सेवी एव हिन्दी-राजस्थानी के समर्थ विद्वान थे और बडी लगन के साथ नूतन साहित्य का निर्माण और प्राचीन साहित्य का सग्रह, सशोधन एव सपादन कर रहे थे। राजस्थान के आधुनिक काल के विद्वानों मे ये पहले व्यक्ति थे जिन्होने अपनी भाषा और साहित्य से उदासीन राजस्थान-वासियों का ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर आकृष्ट किया और उसकी साहित्यिक समृद्धि एव विशेषताओं को उनके सामने रखा। उनका यह प्रयत्न एक ऐतिहासिक घटना है जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

इन्होंने १५-२० उच्च कोटि के साहित्यिक लेख लिखे और तेरह ग्रन्थो का निर्माण व सपादन किया जिनके नाम ये हैं—

(१) कानन कुसुमाजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्सना (४) गद्य गीतिका (५) बोलावण (६) रति रानी (७) मित्रों के पत्र (८) वेलि क्रिसन रुकमणी री (९) ढोला मारू रा दूहा (१०) जटमल ग्रन्थावली (११) छन्द राव जैतसी रो (१२) राजस्थानी वाता और (१३) राजस्थान के लोकगीत।

पारीकजी सहृदय साहित्यकार और सूक्ष्मदर्शी समालोचक थे। ये बहुत प्रौढ, परिमार्जित एव मधुर भाषा लिखते थे और इस बात को खूब जानते

यही बात राजस्थानी भाषा के शब्दो के प्रयोग मे भी देखी जाती है। वैसे यदि देखा जाय तो प्रान्तीयता का प्रभाव इनकी भाषा पर बिलकुल नहीं है। पर जहाँ कहीं प्रान्तीय शब्दो का व्यवहार करना पड़ा है, उन्हें इन्होंने ठीक उसी रूप में लिखा है, जिस रूप मे वे वास्तव में बोले जाते हैं; जैसे राठौड, चित्तौड, राणा, मेवाड, रावळ, मीराबाई, खुँमाण इत्यादि। राजस्थान के बहुत से तथा राजस्थान के बाहर के प्रायः सभी हिन्दी-लेखक इनके स्थान पर क्रमशः राठौर, चित्तौर, राना, मेवार, रावल, मीरा, खुमान आदि शब्दों का प्रयोग करते है, जो वस्तुतः अशुद्ध हैं। ये शब्द राजस्थान में इस तरह से कभी बोले ही नही जाते।

पडितजी की सभी रचनाओं मे धारावाहिकता का आनन्द खूब मिलता है। सामान्यतः ये बहुत छोटे २ वाक्य लिखते थे। और प्रत्येक वाक्य जजीर की कडी की तरह एक दूसरे से जुडा हुआ रहता था। पांडित्याभिमान, अस्वाभाविकता तथा व्यर्थ का वागाडंबर इनके ग्रन्थों मे नहीं मिलता। इनकी दृष्टि सदैव तथ्य निरूपण की ओर रहती थी। इसलिए ये ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते थे जो बहुत सरल तथा प्रसगानुसार उपयुक्त होते थे। ऐतिहासिक सत्य को कायम रखते हुए यदि कहीं अवसर मिलता तो आलकारिक भाषा मे साहित्यिक छटा भी थोडी-बहुत दरसा देते थे। ऐसे स्थलों पर इनके वाक्य कुछ लम्बे अवश्य हो जाते थे पर इससे वर्णन मे सजीवता आ जाती और विचार-सामग्री से लदे हुए पाठक के मस्तिष्क को बडा सहारा मिलता था जिससे ग्रथ को आगे पढने का चाव बराबर बना रहता था। उदाहरण देखिये—

"राजपूत जाति के इतिहास में यह दुर्ग एक अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ असख्य राजपूत वीरो ने अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए अनेक बार असिधारा रूपी तीर्थ में स्नान किया, और जहाँ कई राजपूत वीरागनाओं ने सतीत्व रक्षा के निमित्त धधकती हुई जौहर की अग्नि मे कई अवसरों पर अपने प्रिय बाल-बच्चों सहित प्रवेशकर जो उच्च आदर्श उपस्थित किया वह चिरस्मरणीय रहेगा। राजपूतो ही के लिए नही, किन्तु प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी हिन्दू सतान के लिए क्षत्रिय रुधिर से सिंची हुई यहाँ की भूमि के रजकण भी तीर्थरेणु के तुल्य पवित्र हैं"।

और भी—

जिन विजयजी आदर्शचेता पुरुष और साहित्यिक तपस्वी हैं। इनका सारा जीवन साहित्य-सेवा में व्यतीत हुआ है और आज-कल भी दिन भर साहित्याध्ययन और साहित्यान्वेषण मे लगे रहते हैं। ये बहुभाषा ज्ञानी हैं। संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं का इन्हे भारी ज्ञान है। इसके सिवा इतिहास, पुरातत्व आदि विषयों पर भी प्रमाण माने जाते हैं। इन्होंने कोई ५० ग्रथो का संपादन, संकलन व निर्माण किया है जिनका देश-विदेश के विद्वानों मे बडा आदर है।

मुनिजी हिंदी के अनन्य प्रेमी हैं। यथासंभव हिंदी ही मे लिखते हैं। ये संस्कृतमय भाषा लिखते हैं जो बहुत परिष्कृत और कर्ण मधुर होती है। उर्दू फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के पक्ष मे ये नहीं हैं। इनकी भाषा में कहीं-कहीं गुजराती का रंग भी देखने मे आता है। नमूना लीजिए—

"उसके संपादकों को रासो की प्राचीन भाषा का कुछ विशेष ज्ञान रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। बिना प्राकृत, अपभ्रंश और तद्भव पुरातन देश्य भाषा का गहरा ज्ञान रखते हुए इस रासोका संशोधन-संपादन करना मानों इसके भ्रष्ट कलेवर को और भी अधिक भ्रष्ट करना है। इस ग्रथ मे हमे कई गाथाएँ दृष्टिगोचर हुई जो बहुत प्राचीन होकर शुद्ध प्राकृत में बनी हुई हैं, लेकिन वे इसमे इस प्रकार भ्रष्टाकार मे छपी हुई हैं जिससे शायद ही किसी विद्वान् को उसके प्राचीन होने की या शुद्ध प्राकृतमय होने की कल्पना हो सके। यही दशा शुद्ध संस्कृत श्लोको की भी है। संपादक महाशयो ने, न तो भिन्न-भिन्न प्रतियों मे प्राप्त पाठान्तरों को चुनने मे किसी प्रकार की सावधानता रखी है, न खरे-खोटे पाठों का पृथक्करण करने की चिन्ता की है, न कोई शब्दों या पदों का व्यवस्थित संयोजन या विश्लेषण किया गया है न विभक्ति अथवा प्रत्यय का कोई नियम ध्यान मे रखा गया है। सिर्फ 'यादृशं पुस्तके दृष्टं तादृशं लिखितं मया।' वाली उक्ति का अनुसरण किया गया मालूम देता है।

पंडित झाबरमल शर्मा का जन्म सं० १६४५ मे जयपुर राज्यान्तर्गत खेतडी ठिकाने के जसरापुर नामक गाँव म हुआ। इनके पिता का नाम रामदयाल था। ये संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रौढ विद्वान, प्रतिष्ठित इतिहासकार एवं गद्य-पद्य लेखक हैं और कई वर्षों से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। 'भारत,' 'ज्ञानोदय,' मारवाडी,' 'कलकत्ता-समाचार' और 'हिंदू संसार' नामक पत्रों के संपादक भी ये

झाबरमल

थे कि किसी तथ्य को खाली लिख देना ही साहित्य नहीं है जब तक कि उसके लिखने के ढग में कुछ और कुछ विशेषता या अनूठापन न हो इसलिए जिस बात को भी वे लिखते उसे ऐसे हृदयग्राही एव रमणीय ढग से लिखते थे कि उनके विचारों से सहमत न होते हुए भी पाठक के दिल पर उनकी छाप बैठ जाती थी। इनकी लेखन-शैली स्वर्गीय पडित रामचन्द्र शुक्ल की शैली से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वही बल, वैसी ही गहराई, उतना ही सौष्ठव इनके गद्य मे भी पाया जाता है। बल्कि भाषा-प्रवाह इनमे उनसे भी अधिक मिलता है। उदाहरण—

"भारतवर्ष मे भले दिनों का सूत्रपात हो रहा है। चारों ओर से आशा का नव प्रभात झलकने लगा है। इस नवयुग के प्रकाश मे हमारे भाग्य विधायको का ध्यान सब से पहले शिक्षा सुधार की ओर जाना स्वाभाविक है। तो क्या हम आशा न करे कि निकट भविष्य मे हमारे विद्यालय इस नवप्रभात की सुवर्णमयी कोमल किरणो के प्रकाश से देदीप्यमान वे सरस्वती के मन्दिर बनेगे, जिनमें प्रवेश करते हुए मातृ-भाषा की मधुर मुसकान हमारा दुलार करेगी, अपनी ,सस्कृति की द्वार-शिला पर मस्तक टेकते हुए हमारा हृदय श्रद्धा से भरा होगा, और सभ्य आचरण और उच्च विचारों के अन्तः प्रकाश में आत्म-विश्वास, देश-प्रेम, निर्भीकता, परमेश-भक्ति, उदारता, स्वाभिमान और विश्व-मैत्री का सपूर्ण राग हमारे कठ से ध्वनित होता होगा? उस दिन जब हम मातृ-मदिर की घन्टी को विनय-सपन्न हाथों से छू देगे, तब उसके झकार को सारा ससार सम्मान पूर्वक कान लगाकर सुनेगा और माता के चरणों में अर्पित की हुई हमारी अजलि के पुष्पों की महक दिगंत के रस लोभी भ्रमरों को उस ओर श्रद्धा पूर्वक आकृष्ट करेगी"।

जिन विजय

मुनिजिन विजय का जन्म स० १६४४ में मेवाड राज्य के रुपाहेली ठिकाने के एक पॅवार क्षत्रिय परिवार मे हुआ। इनके पिता का नाम वृद्धिसिंह और माता का राजकुवर था। देवीहस नाम के एक जैन यतीश्वर इनके गुरु थे जिन्होंने इनको बचपन में विद्याभ्यास कराया और जैन धर्म की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की। मुनिजी का देश-विदेश ी अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक सस्थाओं से सबध रहा है और इस समय भार- ्य विद्या भवन, बम्बई, के डाइरेक्टर हैं।

जिन विजयजी आदर्शचेता पुरुष और साहित्यिक तपस्वी हैं। इनका सारा जीवन साहित्य-सेवा में व्यतीत हुआ है और आज-कल भी दिन भर साहित्याध्ययन और साहित्यान्वेषण मे लगे रहते हैं। ये बहुभाषा ज्ञानी हैं। सस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रश, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि अनेक भाषाओं का इन्हे भारी ज्ञान है। इसके सिवा इतिहास, पुरातत्व आदि विषयों पर भी प्रमाण माने जाते हैं। इन्होंने कोई ५० ग्रथो का सपादन, सकलन व निर्माण किया है जिनका देश-विदेश के विद्वानो मे बडा आदर है।

मुनिजी हिंदी के अनन्य प्रेमी हैं। यथासभव हिंदी ही मे लिखते हैं। ये सस्कृतमय भाषा लिखते हैं जो बहुत परिष्कृत और कर्ण मधुर होती है। उर्दू फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के पक्ष मे ये नहीं हैं। इनकी भाषा मे कहीं-कही गुजराती का रग भी देखने में आता है। नमूना लीजिए—

"उसके सपादकों को रासो की प्राचीन भाषा का कुछ विशेष ज्ञान रहा हो ऐसा प्रतीत नही हुआ। बिना प्राकृत, अपभ्रश और तद्भव पुरातन देश्य भाषा का गहरा ज्ञान रखते हुए इस रासोका सशोधन-सपादन करना मानों इसके भ्रष्ट कलेवर को और भी अधिक भ्रष्ट करना है। इस ग्रथ मे हमे कई गाथाएँ दृष्टिगोचर हुई जो बहुत प्राचीन होकर शुद्ध प्राकृत में बनी हुई हैं, लेकिन वे इसमें इस प्रकार भ्रष्टाकार मे छपी हुई हैं जिससे शायद ही किसी विद्वान् को उसके प्राचीन होने की या शुद्ध प्राकृतमय होने की कल्पना हो सके। यही दशा शुद्ध सस्कृत श्लोकों की भी है। सपादक महाशयो ने, न तो भिन्न-भिन्न प्रतियों मे प्राप्त पाठान्तरों को चुनने मे किसी प्रकार की सावधानता रखी है, न खरे-खोटे पाठो का पृथक्करण करने की चिन्ता की है, न कोई शब्दो या पदो का व्यवस्थित सयोजन या विश्लेषण किया गया है न विभक्ति अथवा प्रत्यय का कोई नियम ध्यान मे रखा गया है। सिर्फ 'यादृश पुस्तके दृष्ट तादृश लिखित मया।' वाली उक्ति का अनुसरण किया गया मालूम देता है।

पडित झाबरमल शर्मा का जन्म स० १९४५ मे जयपुर राज्यान्तर्गत खेतडी ठिकाने के जसरापुर नामक गॉव मे हुआ। इनके पिता क नाम रामदयाल था। ये सस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि भाषाओं के प्रौढ विद्वान, प्रतिष्ठित इतिहासकार एव गद्य-पद्य लेखक हैं और कई वर्षों से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। 'भारत,' 'ज्ञानोदय,' 'मारवाडी,' 'कलकत्ता-समाचार' और 'हिंदू ससार' नामक पत्रों के सपादक भी ये

झाबरमल

रहे हैं। इन्होंने पद्रह से अधिक ग्रथो का निर्माण व सपादन किया है जिनमें से नीचे लिखे ग्यारह ग्रन्थ छप चुके हैं—

(१) भारतीय गोधन (२) अरविंद चरित्र (३) साँभर का इतिहास (४) खेतडी का इतिहास (५) खेतडी नरेश (६) विवेकानद (७) आदर्श नरेश (८) भारतीय देश रत्नों की कारावास कहानी (९) केसरीसिंह-समर (१०) लिमिटेड कपनियाँ, और (११) तिलक गाथा।

पडितजी एक अनुभवी साहित्यकार और सिद्धहस्त लेखक हैं। ये सस्कृत मय हिंदी लिखते हैं जो विषय- वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है। इनकी लेखन-शैली गभीर, स्वाभाविक और चित्ताकर्षक होती है। इनके इतिहास विषयक ग्रन्थों के पढ़ने मे पाठक को उपन्यास का सा आनन्द आता है और वह सरलता से इतिहास की वस्तु को हृदयंगम करता हुआ चलता है। इनकी भाषा का नमूना लीजिए—

"इसका परिणाम था अवसाद और उस अवसाद ने उनका पिंड अब तक भी नहीं छोडा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, अवसाद कर्तव्य का शत्रु है। जिस जाति अथवा व्यक्ति के यहाँ अवसाद को स्थान मिला कि, वह अपने उच्च कर्तव्यों की ओर से मुँह फेर लेता है। राजस्थान के क्षत्रियों मे जो विलासिता और मद्य-पानादि दोष अधिक मात्रा मे दिखलाई दे रहे हैं, उनके मूल मे वही अवसाद काम कर रहा है। उस अवसाद-ग्रस्त क्षत्रिय जाति मे अजीतसिंह के समान कर्तव्य-तत्पर तेजस्वी पुरुष का जन्म ग्रहण करना निस्सन्देह ईश्वर की कृपा का फल था।"

विश्वेश्वरनाथ

इनका जन्म स० १९४७ में जोधपुर नगर मे हुआ। इनके पिता का नाम मुकुन्द मुरारि था जो काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से आकर जोधपुर मे बस गये थे। स० १९६६ मे पडितजी ने सस्कृत-साहित्य की आचार्य परीक्षा पास की और एक वर्ष बाद जोधपुर के इतिहास-कार्यालय में लेखक नियुक्त हुए। वहाँ रहकर इन्होंने प्राचीन लिपियों, मुद्राओं, मूर्तियो इत्यादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए इतिहास-कार्यालय के अध्यक्ष बन गए। इस समय इनके अधिकार मे उक्त कार्यालय के अतिरिक्त सरदार म्यूजियम, पुस्तक प्रकाश आदि पाच महकमे और भी हैं।

पडितजी इतिहास के प्रख्यात विद्वान और सस्कृत, हिन्दी-अग्रेजी आदि भाषाओ के अच्छे जानकार हैं। इन्होंने 'भारत के प्राचीन राजवश,' 'राजा-

भोज,' 'राष्ट्रकूटा का इतिहास,' तथा 'मारवाड़ का इतिहास' नामक चार ग्रन्थ हिन्दी में और एक ग्रन्थ अग्रेजी मे लिखा है। इनके अलावा इन्होंने फुटकर लेख भी कई लिखे हैं। और शैव-सुधाकर का भाषानुवाद तथा महाराजा जसवतसिंह कृत वेदान्त विषयक पाच ग्रन्थों एव महाराजा मानसिंह कृत कृष्ण-विलास का सपादन भी किया है।

रेउजी सीधी-सादी बोलचाल की हिन्दी लिखते हैं। इनकी भाषा मे न तो सस्कृत. शब्दों की भरमार रहती है और न उर्दू-फारसी के शब्दों की। अपने विषय को ये बहुत विश्वासजनक ढग से प्रस्तुत करते हैं और प्राचीन युद्ध-घटनाओं के वर्णन इस तरह करते हैं कि वे आखों के सामने सजीव और यथार्थ से लगते हैं। विचारों को सरस-तर्कयुक्त शैली मे उपस्थित करने मे ये निपुण हैं। उदाहरण—

"अजीतसिंह के अपने पुत्र बखतसिंह द्वारा मारे जाने का तो किसी ने भी विरोध नहीं किया है। परन्तु इसके कारण के विषय मे मत-भेद हैं। टॉड को सूचना देनेवालों ने उसे बतलाया कि अपने बडे भाई अभयसिंह के इशारे से ही बखतसिंह ने यह कार्य किया था और अभयसिंह उस समय देहली मे होने से बादशाह के दबाव मे था। इस हत्या के करनेवाले के लिए ५६५ गावों के सहित नागोर का परगना इनाम मे रक्खा गया था। कहते हैं कि अभयसिंह की इस पाशविक प्रवृति को उत्तेजित करने मे कृतघ्न सैय्यद-भ्राताओं का भी हाथ था, क्योंकि वे फर्रुखसीयर को गद्दी से उतारने के समय अजीतसिंह द्वारा किये गये विरोध का बदला लेना चाहते थे। अब इस विषय मे कुछ बातों पर साधारणतया विचार करना आवश्यक है। क्या ऊपर लिखा पारितोषिक बखतसिंह को इस हत्या के लिए उत्तेजित करने को पर्याप्त था? सभव है कि वह अधिक चालाक न हो, परन्तु वह इतना बेवकूफ भी न था कि जो ऐसी बदनामी को, अपने फायदे को छोडकर केवल अपने भाई के फायदे के लिए अथवा उस जागीर के लिए, जो कि राजपूतों के आम रिवाज के अनुसार उसके पिता की प्राकृतिक मृत्यु के बाद भी उसे मिल जाती, अपने सिर लेता।"

घनश्यामदास

बिड़लाजी भारत के विख्यात व्यापारी हैं। इनके सत्कार्यों की ख्याति भारत भर मे है। इनका जन्म स० १६४८ मे राजा बलदेवदास बिड़ला के घर पिलाणी मे हुआ। ये राजनीति और अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ हैं। साथ ही साहित्यकार, अध्येता और विचारक भी हैं। राजस्थानी भाषा, साहित्य एव सस्कृति के

ये बड़े प्रेमी तथा पृष्ठ-पोषक हैं और कई वर्षों से राजस्थान के प्राचीन साहित्य का सग्रह-सशोधन करवा रहे हैं। इन्होंने सात ग्रन्थ लिखे हैं जिनका हिन्दी भाषा-भाषियों मे बड़ा आदर है। ये ग्रथ खड़ी बोली मे हैं। नाम ये हैं—

(१) बापू (२) डायरी के पन्ने (३) रुपये की कहानी (४) बिखरे विचार (५) ध्रुवोपाख्यान (६) श्री जमनालालजी, और (७) कर्जदार से साहूकार।

बिडलाजी बहुत सीधी-सादी भाषा लिखते हैं। इनकी अपनी शैली है और अपना दृष्टिकोण। राजनीति, धर्म, शिक्षा आदि विषयों पर इन्होंने गभीरतापूर्वक विचार किया है और इन पर इनकी अपनी कुछ निश्चित धारणाएँ हैं जिनको ये बड़ी दृढता, सच्चाई और मौलिक विधि से सामने रखते हैं। इनकी रचनाओं मे भावुकता की अपेक्षा बुद्धि-तत्व अधिक पाया जाता है। गाधीवाद की भी हलकी-सी झाँई देख पड़ती है। इनके गद्य का थोड़ा-सा नमूना यहाँ दिया जाता है। यह इनकी 'बापू' नामक पुस्तक से लिया गया है—

"अहिंसा को राजनीति मे गाधीजी ने जान-बूझकर प्रविष्ट किया है, क्योंकि राजनीति मे अधर्म विहित है, ऐसा मानकर हम आत्मवचना करते थे। हम उलझन मे इसलिए पड़ गये हैं कि जहाँ हम गंदगी का पोषण करना चाहते थे, वहाँ गाधीजी ने हमें पानी और साबुन दिया है। हम हैरान हैं कि पानी और साबुन से हमारी गन्दगी की रक्षा कैसे हो सकती है। और यह हैरानी सच्ची है, क्योंकि गन्दगी की रक्षा किसी हालत मे न होगी। बस, यही उलझन है, यही पहेली है और इसी ज्ञान में शका का समाधान है।"

हरिभाऊ उपाध्याय का जन्म स० १९४९ मे हुआ। ये राजस्थान के प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ता और ख्यात-नामा लेखक हैं। इन्होंने अठारह

हरिभाऊ

ग्रंथ लिखे हैं जिनमे से कुछ मराठी, गुजराती, अग्रेजी और सस्कृत ग्रन्थो के अनुवाद और कुछ मौलिक हैं। इनके नाम ये हैं—

(१) मौलिक:—स्वतत्रता की ओर, बुदबुद, स्वगत, युगधर्म (जब्त), हिन्दू-मुसलमान, मनन, अहिंसा के अनुभव।

(२) अनुवाद.—सम्राट अशोक (म०), रागिनी (म०), काबूर (म०) मेरे जेल के अनुभव (गु०), आत्मकथा (गु०), काग्रेस का इतिहास

(अ०), मेरी कहानी (अ०), बोलशेविज्म (म०), जीवन-शोधन (गु०), हिन्दी गीता (स०), और कृतार्थ जीवन (म०)।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त हरिभाऊजी ने फुटकर लेख-कविताएँ भी सैकड़ों की संख्या में लिखी हैं और 'मालव-मयूख', 'नव जीवन,' 'त्यागभूमि,' 'राजस्थान' और 'जीवन साहित्य' नामक पत्रों का संपादन भी बड़ी योग्यता के साथ किया है।

उपाध्यायजी उच्चकोटि के साहित्यकार, आदर्शवेत्ता लोकनायक तथा गंभीर विचारक हैं। इन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह देश-हित और देशोत्थान की भावना से प्रेरित होकर लिखा है। अतः देशभक्ति से ओत-प्रोत इनकी रचनाएँ मनुष्यों को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती और उनमें नवीन जीवन का संचार करती हैं। इनके प्रारम्भिक ग्रंथ विशुद्ध हिंदी में हैं। परन्तु इधर कुछ वर्षों से ये हिन्दुस्तानी लिखने लग गये हैं। इनकी भाषा सरल और विचार-वैभव से लदी हुई होती है। व्यर्थ का वागाडंबर और पांडित्य प्रदर्शन इनमें कहीं दिखाई नहीं देता। कठिन विषय को भी इस तरह समझाते हैं कि उससे पाठक के मन में अरुचि पैदा नहीं होती, उसका ध्यान बराबर विषय की ओर बना रहता है। इनके ग्रन्थों को पढ़ते वक्त हमें यह नहीं मालूम होता कि हम कोई ग्रन्थ पढ़ रहे हैं, बल्कि ऐसा भास होता है कि उपाध्यायजी के पास बैठे हुए उनसे बातचीत कर रहे हैं। उदाहरण-

"हिंदी-समाज की वर्तमान आवश्यकता क्या है? शृंगार-विलास या शूर-वीरता! निस्सन्देह शूर-वीरता। इसमें दो मत हो नहीं सकते। फिर हिंदी-साहित्य में शृंगार-विलास प्रधान साहित्य की सृष्टि क्यों हो रही है? पुस्तकों के मुख-पृष्ठ पर, मासिक पत्रों के भीतर-बाहर सब जगह कामिनियों के चित्र हम क्यों देखते हैं? हमारा समाज क्षय-रोग से दिन-दिन क्षीण हो रहा है। हम उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए रंभा और मेनकाओं को नियुक्त करते हैं और इतना ही नहीं हम उन्हें हाव-भाव-कटाक्षों के प्रयोग के लिए भी स्वाधीनता दे देते हैं, मानो हमारे इतिहास में माताओं देवियों और नारियों की कमी है, जो हमें नायिकाओं की सृष्टि का कार्यालय खोलना पड़ता है। इसका क्या कारण है? हमारा ध्यान रोगी का रोग दूर करने की तरफ उतना नहीं है, जितना रोगी को रिझाने की तरफ है। यदि हम चाहते हों कि हमें बल पौरुष की आवश्यकता है, तो हमें यह वृत्ति बंद कर देनी चाहिए।"

ये भंडारी कुलोत्पन्न ओसवाल महाजन हैं। इनका जन्म सं० १९५२ में जोधपुर राज्य के जैतारण गाँव में हुआ। ये संस्कृत, हिंदी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के सुज्ञाता, सहृदय विद्वान एवं

सुख संपतिराय

प्रौढ़ लेखक हैं और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार,' 'पाटलीपुत्र', 'किसान', प्रभृति पत्रों के संपादक भी रहे हैं। इन्होंने कुल मिलाकर २० ग्रंथ लिखे हैं जिनकी देश के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने प्रशंसा की है। कुछ के नाम ये हैं—

भारत दर्शन, राजनीति विज्ञान, तिलक दर्शन, सुलभ कृषि-शास्त्र, स्वर्गीय जीवन, महात्मा बुद्ध, ज्योतिर्विज्ञान, विज्ञान और आविष्कार, जगत-गुरु भारतवर्ष, डा० जगदीश चंद्र बोस और उनके आविष्कार, संसार की क्रांतियाँ रवींद्र दर्शन, और भारत के देशी राज्य।

अन्तिम ग्रंथ पर इनको इंदौर दरबार की ओर से १५०००) का पुरस्कार भी मिला है। इस समय ये अंग्रेजी-हिंदी का एक वैज्ञानिक शब्द-कोष तैयार करने में संलग्न हैं। इसके तीन भाग छप भी चुके हैं।

भंडारी जी संस्कृत-गर्भित भाषा लिखते हैं जो मँजी हुई और अति मधुर होती है। ये जो कुछ कहते हैं, प्रत्यक्ष रूप से और सीधे-सादे शब्दों में कहते हैं। इनकी भाषा में मुहावरों की प्रधानता रहती है और छितरी-बितरी विषय-सामग्री को सुन्दर ढंग से सजाकर गूँथना खूब जानते हैं। कथ्य विषय की गहराई भी इन में पूरी-पूरी पाई जाती है। उदाहरण—

"घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देशों को बतलाने वाली है। यह घटना बतलाती है कि हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देश का शासन भी अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार करे। बल्कि यह आदर्श यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है और उसका शारीरिक सुख, आकांक्षाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई के नीचे हैं। उसका कर्तव्य शासन करना है न कि अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिये।"

जयपुर के प्रसिद्ध साहित्यकार पं० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' एम० ए०

का जन्म सं० १९५८ में हुआ। इनके पिता का नाम नन्दकिशोर था। ये महाराजा कॉलेज में हिंदी-विभाग के अध्यक्ष और हिंदी के प्रोफेसर हैं। ये हिंदी के सहृदय विद्वान, कहानी-लेखक तथा समालोचक हैं और किशोरावस्था से ही हिंदी की सेवा कर रहे हैं। इन्होंने बीस ग्रंथ लिखे हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित हैं। प्रकाशित ग्रंथों के नाम ये हैं—

रामकृष्ण

(१) प्रसाद की नाट्यकला (२) काव्य-जिज्ञासा (३) आधुनिक हिंदी-कहानियाँ (४) सुकवि समीक्षा (५) आर्य भाषा और संस्कृत (६) रचना-तत्व (७) रचना-रहस्य (८) जीवन-कण (९) गंभीर विषयों पर सरल विचार (१०) उसका प्यार (११) हः हः ह. और (१२) अमृत और विष।

शुक्लजी प्रौढ़ लेखनी के धनी हैं। इनकी शैली में सजीवता, प्रांजलता, और अधिकार होता है। इनको सरल और कठिन दोनों तरह की भाषा लिखने का अभ्यास है। इनकी कहानियों की भाषा सरल, लेखादि की अपेक्षाकृत कठिन होती है। भाषा सरल हो अथवा कठिन वह विषय के अनुकूल चलती है और उसमें इतनी क्षमता होती है कि वह अनेक प्रकार के भाव, विचार आदि को सफलता पूर्वक व्यक्त कर सकती है। नमूना—

"मनुष्य पशु से मानव तो बना, परन्तु क्या उसकी पशुता दूर हो गई? पशु में विवेक तो शायद वैसा नहीं होता, परन्तु उसमें प्राणिता तो मनुष्य की ही भाँति है। प्राणिता का रूप केवल साँस लेना ही नहीं है, उसका तत्व रहना या जीना है। रहने में सहज संकल्प का भाव है, और संकल्प का अस्तित्व रूचि से है। पशु भी जब रहने का काम करता है तो रूचि का अनुसरण करता है। मनुष्य ने रुचि को ही विवेक से संस्कृत किया है। रूचि के अर्थ में प्रियता सन्निहित है। प्रियता की वैयक्तिकता में विवेक का संस्कार है।"

ये बीकानेर-निवासी तँवर राजपूत हैं। इनका जन्म सं० १९५९ में हुआ। ये अंग्रेजी के एम० ए० और संस्कृत, हिंदी तथा राजस्थानी के मर्मज्ञ विद्वान हैं। इनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों के नाम ये हैं—

रामसिंह

(१) कानन कुसुमांजली (२) मेघमाला (३) ज्योत्स्ना (४) वेलि क्रिसन रुक्मणी री (५) ढोला मारू रा दूहा (६) जटमल ग्रंथावली (७) छंद राव जैतसी रो (८) राजस्थान के लोकगीत (९) गद्य गीतिका (१०) सौरभ (११) किणका और (१२) चंद्रसखी के भजन।

अन्तिम तीन ग्रंथों का प्रणयन अथवा संपादन इन्होंने स्वतंत्र रूप से और शेष का अपने मित्रों के साथ किया है।

ठाकुर साहब हिंदी गद्य और पद्य दोनों लिखते हैं और राजस्थानी के भी सिद्धहस्त लेखक हैं। इनकी भाषा सरस, विचार-व्यंजना कवित्व-पूर्ण और वर्णन-शैली स्वाभाविक होती है। शब्द-गुंथन की मधुर ध्वनि द्वारा मन को मोह लेने की एक अद्भुत शक्ति जो इनमें पाई जाती है वह बहुत कम लोगों में देखने में आती है। इनके राजस्थानी गद्य का थोड़ा-सा अंश यहाँ दिया जाता है—

"राजस्थानी भासा सपूतां नै जिवाया है। राजस्थानी रै प्रताप सूं धड़ सूं सिर अळगो हु ज्यायां पर भी सूरमा रणखेत में जूझया है। राजस्थानी री प्रेरणा सूं कायर भी सायर बण्या है। इसी यसस्विनी मा रो दूध आपा नहीं लजास्यां। माता रै वास्ते आपां नै सरवस त्यागणो पड़ै तो भी पग पाछा कोनी देस्यां। उण री एक झांकी सूं ही आपां कृतार्थ हु ज्यास्यां। अतीत गौरव री प्राप्ति रै सागै-सागै भविस्य भी ऊजळो बण जासी। आवो, भाई-बहनां! आपां नै मिल मातृ मंदिर में प्रेम सूं माता री आरती उतार और आपणी भक्ति रै फळ सरूप जननी रा दरसण पा'र कृतार्थ बणा।"

नरोत्तमदास

ये बीकानेर-निवासी स्व० श्री रामदासजी के पुत्र हैं। इनका जन्म सं० १९६१ में हुआ। ये हिंदी-संस्कृत दोनों में एम० ए० हैं और इस समय डूंगर कॉलेज, बीकानेर में हिंदी-विभाग के अध्यक्ष हैं। इन्होंने हिंदी-राजस्थानी के प्राचीन ग्रंथों के संकलन-संपादन आदि का बहुत महत्वपूर्ण काम किया है। इनके १८-२० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और लगभग इतने ही अप्रकाशित पड़े हैं। 'राजस्थान रा दूहा' नामक ग्रंथ पर इनको हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की ओर से 'मान-सिंह पुरस्कार' भी मिला है। इनके प्रकाशित ग्रंथों के नाम ये हैं—

(१) राजस्थान रा दूहा (२) राजस्थान के लोक गीत (३) राजस्थान के ग्राम्य गीत (४) ढोला मारू रा दूहा (५) राजस्थानी भाषा और साहित्य (६) मीरा मंदाकिनी (७) सूर समीक्षा (८) सूर साहित्य सुधा (९) तुलसी सुधा (१०) मधु माधवी (११) सरल अलंकार (१२) अलंकार परिचय (१३) स्वर्ण महोत्सव पाठमाला (१४) हिंदी पद्य पारिजात (१५) हिंदी गद्य

साहित्य का इतिहास (१६) कबीरदास (१७) त्रिवेणी (१८) राजिया रा दूहा इत्यादि।

स्वामीजी संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान, हिंदी के सुयोग्य गद्य-लेखक एवं समालोचक हैं और दिन-रात साहित्य-सृजन में लगे रहते हैं। सीधी-सादी भाषा, छोटे-छोटे वाक्य तथा सुलझी हुई विचार-व्यंजना इनकी लेखन-शैली के प्रधान गुण हैं। इनका ध्यान हमेशा विषय-स्पष्टीकरण की तरफ रहता है और इसलिए एक ही बात को प्रकारान्तर से इस तरह समझाते हैं कि वह पाठक के हृदय-पटल पर स्थायी रूप से जम जाती है। शब्दाडंबर, पांडित्याभिमान और विषय-वस्तु का अनावश्यक विस्तार इनमें नहीं मिलता। जो भी कहना होता है उसे संक्षेप में, शालीनता एवं हृदयग्राही ढंग में कहते हैं। इनकी भाषा का नमूना लीजिए—

"बात को संक्षेप में और चुभते हुए ढंग से कहने के लिए दूहा बहुत ही उपयुक्त छंद है। इसी कारण कबीर आदि संत-महात्माओं ने अपनी साखियाँ इसी छंद में कहीं। रहीम और वृन्द जैसे नीति-कवियों ने भी इसीको पसंद किया और बिहारी, मतिराम, रसनिधि आदि ने अपनी अपूर्व रस धारा भी इसीमें प्रवाहित की। इन लोगों को जो सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त हुई उसके विषय में कुछ कहना आवश्यक है। राजस्थानी का अधिकांश लौकिक साहित्य इसी छंद में निर्मित हुआ है। प्राचीन काल से सैकड़ों दूहे लोगों की जबान पर चलते आए हैं, जिनका बात-बात में कहावतों की भाँति प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी जनता का सर्वप्रिय 'माँड राग' का माधुर्य्य और आकर्षण भी उसके दोहों पर निर्भर है। प्राचीन लौकिक वीरों की कीर्ति इन्हीं छोटे-छोटे दूहों की बदौलत नाम-शेष हो जाने से बच गई है। आज भी प्राचीन ढंग के राजस्थानी कहानी कहनेवाले लोग कहानियों के बीच बीच में भावपूर्ण स्थलों पर दूहों का प्रयोग करके श्रोता लोगों को मुग्ध करते हैं।"

सीतामऊ का राजघराना अपनी साहित्य-सेवा के लिए प्रसिद्ध है।

रघुबीरसिंह — महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह भी इसी घराने के उज्ज्वल रत्न हैं। ये राठोड़ नरेश श्रीमान् सर रामसिंहजी बहादुर के युवराज हैं। इनका जन्म सं० १६६५ में हुआ।

डा० साहब भारत के गण्यमान्य इतिहासकार और सिद्धहस्त लेखक हैं। ये हिंदी और अंग्रेजी दोनों में लिखते हैं। इन्होंने बिखरे फूल, सप्तदीप, शेष

स्मृतियाँ, पूर्व मध्यकालीन भारत, एव मालवा मे युगान्तर नामक पाँच ग्रथ और अनेक फुटकर लेख लिखे हैं जिनका विद्वत्ससार मे बड़ा मान है। इस समय ये मालवे का इतिहास लिखने मे सलग्न हैं।

उपरोक्त ग्रन्थों में 'मालवा मे युगान्तर' इनकी सर्वोत्तम रचना है। यह इनके 'मालवा इन ट्रांजिशन' नामक अग्रेजी ग्रथ, जिस पर इन्हे आगरा विश्व विद्यालय की ओर से डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त हुई है, का हिन्दी रूपान्तर है। ग्रथ बड़ी खोज एव मेहनत के बाद लिखा गया है और लेखक की असाधारण शोध बुद्धि का परिचायक है। इसकी भूमिका भारत के सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक सर जदुनाथ सरकार ने लिखी है।

महाराज कुमार साहब विशुद्ध हिंदी के पक्षपाती हैं। अतः उर्दू-फारसी के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में कम देखने मे आता है। यथासभव सस्कृत शब्दों ही से काम लेते हैं। ये हिन्दी-साहित्य के उन इने-गिने विद्वानो मे से हैं जिन्होंने इतिहास और राजनीति की भूमि पर उतरकर भी अपनी कलात्मक विदग्धता का अत्यत अभिराम आकलन किया है। डा० साहब गद्य लिखते हैं और अपने को गद्यकार ही शायद समझते हैं। परन्तु कवि भी ये पूरे हैं यह बात इनकी 'शेष स्मृतियों' से साफ झलकती है जिसमें ऐतिहासिक सत्य और कवि-कल्पना का सुन्दर योग हुआ है। नीचे हम इनके गद्य का थोड़ा-सा अश उद्धृत करते हैं—

"वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खडहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देखकर आज भी बीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हे उन करोड़ों मनुष्यों की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासकों, धनिकों तथा विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थीं। आज भी उन भव्य खडहरो मे उन पीड़ितो का रुदन सुनाई देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पड़ते हैं। अपने उस बाल वैधव्य को स्मरण कर वह परित्यक्ता नगरी उसासे भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासे इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। इन्हीं आहों की गरमी तथा विष से मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आँसुओं के उस प्रवाह मे रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गए।"

प० जनार्दनराय नागर एम० ए० का जन्म स० १६६५ में उदयपुर में हुआ। इनके पिता का नाम प्राणलाल था। ये हिन्दी के परम प्रेमी, अच्छे साहित्यकार एव सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं और भाषण-कला मे भी निपुण हैं। मेवाड मे हिंदी की उन्नति, हिंदी के प्रचार और हिंदी की गौरव-वृद्धि के लिए जो अथक उद्योग इन्होंने किया है वह एक इतिहास की बात है। इन्होंने अनेक गद्य-काव्य और कहानियाँ लिखी हैं जिनकी स्वर्गीय प्रेमचद ने बहुत बड़ाई की है। साहित्य, राजनीति शिक्षण-कला आदि विषयो पर फुटकर लेख भी इन्होंने सैकड़ो लिखे हैं जिनसे इनकी अध्ययनशीलता और सूक्ष्म बुद्धि का परिचय मिलता है। इनके रचे ग्रथों के नाम ये हैं—

जनार्दनराय

(१) ध्रुवतारा (उपन्यास), (२) तिरगा झडा (उपन्यास), (३) आधी-रात (नाटक), (४) पतित का स्वर्ग (नाटक), (५) जीवन का सत्य (नाटक) और (६) विष का प्याला (नाटक)।

नागरजी की हिन्दी के प्रति जो सहज, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रेरणा है उसका निदर्शन इनके लेख, इनकी कहानियों, इनके गद्य काव्य आदि सभी में मिलता है। ये सस्कृत-प्रधान हिंदी के पक्षपाती हैं पर साथ ही अग्रेजी व अर्बी-फारसी के जन-प्रचलित शब्दो का बहिष्कार करने के पक्ष मे भी नहीं हैं। इनकी भाषा विषय के अनुसार चलती है। यदि विषय गभीर हुआ तो भाषा कुछ कठिन और साधारण हुआ तो सरल रहती है। इनके गद्य का थोडा-सा अश हम नीचे उद्धृत करते हैं जो इनकी भाषा-शैली का अच्छा प्रतिनिधित्व करता है—

"अभी गये सप्ताह देशी नरेशों की कॉन्फ्रेस मे भाषण देते हुए भारत के अन्तिम वायसराय लॉर्ड माउन्टबेटन ने कहा था कि प्रत्येक रियासत को किसी भी विधान परिषद् मे शामिल हो जाना चाहिये। इस भाषण की आलोचना करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था कि वायसराय ने राजाओ को तो उपदेश दिया है और उनकी सुरक्षा का आश्वासन भी दे दिया है। पर प्रजा के सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं कहा इसका अफसोस अवश्य है। गाँधीजी ने इस विषय मे जो इशारा किया वह कम महत्व का नहीं है। इसका मतलब है कि वायसराय ने जनता की माँग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। अच्छा होता वायसराय अपने भाषण मे उत्तरदायी शासन स्थापित करने के

लिये भी राजाओं से कहते। जनता के हृदय में अब राजा महाराजाओ की ज्यादतियों ने असन्तोष पैदा कर दिया है। इसलिये भी यह आवश्यक था कि वायसराय राजाओं के साथ प्रजा के सम्बन्ध को दृढ और सुन्दर बनाने के लिये कुछ वाक्य कह देते। पर अंग्रेजों की तो सदा यह नीति रही है कि फूट डालो और स्वार्थ पूरा करो, फिर उनसे हम यह कैसे आशा कर सकते हैं? अंग्रेज जा तो रहे हैं पर भारत में अपने लिये स्थान जरूर बनाये रखना चाहते हैं। इसलिये इस तरह के कूटनीति-पूर्ण भाषण बार-बार दे दिया करते हैं, अलग-अलग पार्टियो से अलग-अलग बाते करते हैं, अलग अलग समझौते करते हैं। काश, जाते जाते भी यदि अंग्रेज हिंदुस्तानियों के दिल में विश्वास पैदा कर देते।"

अगरचन्द

ये बीकानेर के प्रसिद्ध सेठ स्वर्गीय शकरदानजी नाहटा के पुत्र हैं। इनका जन्म स० १९६७ मे हुआ। ये जैन मतावलबी और जैन साहित्यानुरागी हैं। इन्होंने 'युग प्रधान श्री जिनचद्र', 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' इत्यादि ७। ८ ग्रथों का प्रणयन-सपादन किया है और २००-२५० के लगभग फुट कर लेख लिखे हैं जिन से जैन साहित्य व हिंदी साहित्य से सबद्ध अनेकानेक तमाच्छन्न तथा सदिग्ध वृत्तो पर अच्छा प्रकाश पडता है।

नाहटाजी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं के सुज्ञाता एव हिंदी के सुयोग्य लेखक हैं और बड़ी लगन तथा सचाई से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। साहित्यान्वेषण की इनको धुन है। साथ ही सूझ और योग्यता भी है। साफ सोचते और साफ लिखते हैं। इनकी भाषा सरल और शैली हृदय ग्राही होती है। स्पष्टवादिता और व्यग्य का सामजस्य उसे और भी आकर्षक बना देता है। उदाहरण लीजिए—

"हिन्दी साहित्य की खोज-शोध का कार्य अभी बहुत ही मद गति से चल रहा है। पचास वर्षों से खोज होते रहने पर भी सैकड़ो उल्लेखनीय कवियों एव महत्वपूर्ण ग्रथो से हिंदी-जगत अभी तक अपरिचित है। नाम के लिए हिदी साहित्य के बीसियों इतिहास प्रकाशित हो चुके और हो रहे हैं, पर उनमे नवीन अन्वेषण बहुत कम क्या बिलकुल नहीं दिखाई पडता। फलतः शिवसिह-सरोज और मिश्रबधु-विनोद की सैकडो भद्दी भूले अभी तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए साहित्य-शास्त्र और

इतिहास दोनों का अध्ययन और अनुभव होना आवश्यक है। पर हमारे हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों में ऐतिहासिक दृष्टि का प्राय अभाव-सा है। स्वतंत्र शोध करनेवाले विद्वान नहीं के बराबर हैं। अधिकांश इतिहास-लेखक अपने से पूर्व के लेखकों का अनुकरण-मात्र करते हैं। भारत की प्रधान भाषा हिंदी के लिए यह बात अशोभनीय है।"

इनका जन्म स० १९६८ में नवलगढ मे हुआ। स० १९९४ मे इन्होंने आगरा विश्व विद्यालय से हिंदी में और स० २००१ में संस्कृत में एम० ए० किया। ये दोनो परीक्षाएँ इन्होंने प्रथम श्रेणी में पास की हैं। इस समय ये बिडला कॉलेज, पिलाणी में हिंदी-संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं।

कन्हैयालाल सहल

महलजी हिंदी के प्रतिष्ठावान लेखक और सुयोग्य समालोचक हैं। इन्होंने चौबोली, हरजस बावनी, राजस्थानी कहावतें, और राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद नामक चार ग्रंथो का संग्रह- प्रणयन किया है और फुटकर लेख भी अनेक लिखे हैं जो इनकी गंभीर और विवेचनात्मक शैली के अच्छे परिचायक हैं। इन लेखो का एक संग्रह 'समीक्षांजलि' नाम से छप भी चुका है।

महलजी संस्कृत गर्भित और सुष्ठु भाषा लिखते हैं जिसमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तो कहीं-कहीं मिलता है पर अर्बी फारसी के शब्दो का नहीं मिलता। इनके विषय-विवेचन में गंभीर चिंतन का प्राधान्य रहता है और विषय के अनुरूप शैली भी प्रौढ एवं गुंफित रहती है। उदाहरण लीजिए—

"अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडलर अपने को तुच्छ समझने की वृत्ति (Inferiority Complex) के जन्मदाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य-व्यापार का आधार उसकी हीनता या क्षुद्रता के अनुभव मे हैं। वह अपने अहं को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न मे बचपन से ही लग जाता है। वह अनेक उपायों द्वारा अपने अस्तित्व को महत्वपूर्ण और दर्शनीय बनाने की चेष्टा मे लगा रहता है। वह समाज मे अपने व्यक्तित्व को एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहता है। मनुष्य जब यह अनुभव करता है कि समाज मे उसकी अनुपयोगिता के कारण उसका कोई उल्लेखनीय अस्तित्व ही नहीं है, तब वह अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए कला की सृष्टि करने मे प्रवृत्त होता है।"

उल्लिखित लेखकों के अतिरिक्त भी अनेक शक्तिशाली लेखकों ने हिंदी व राजस्थानी साहित्य की श्री वृद्धि की है और कर रहे हैं। इनमें सर्व श्री अम्बिकादत्त व्यास, समर्थदान, रामनाथ रत्नू, चन्द्रधर गुलेरी, किशोरसिंह बारहठ, कल्याणसिंह शेखावत, रामनारायण दूगड, गोविन्द नारायण आसोपा, सुन्दरलाल गर्ग, डा० मथुरालाल शर्म्मा, डा० दशरथ शर्म्मा, जगदीशसिंह गहलोत, हरबिलास सारड़ा, रामनिवास शर्म्मा, हनुमान शर्म्मा, चतुर्भुजदास चतुर्वेदी, प्रभुनारायण शर्म्मा इत्यादि मुख्य हैं।

आठवाँ प्रकरण

उपसंहार

पिछले पृष्ठों मे राजस्थानीय साहित्य के लगभग एक हजार वर्षों के इतिहास का सक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है। अब यह देखना शेष रह गया है कि इस समय राजस्थान मे कौन-कौन-सी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ चल रही हैं और उनका भविष्य कैसा है।

कविता

जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है राजस्थान के कवि अधुना ब्रजभाषा, खड़ीबोली और राजस्थानी तीनों में कविता कर रहे हैं। ब्रजभाषा के कवियों में कोई मौलिकता और नवीनता दृष्टिगोचर नहीं होती। अधिकाश कवि सूर, तुलसी, बिहारी, मतिराम, भूषण, देव, पद्माकर प्राचीन कवियों के भावों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं। छद भी इनके वही पुराने हैं—कवित्त, सवैया और दोहा। मालूम नहीं, क्यों ये लोग इस तरह ब्रजभाषा के पीछे पड़े हुए हैं। अधिकाश को न तो ब्रजभाषा के व्याकरण का ज्ञान है, न उसकी उच्चारण सबधी विशेषताओं का पता है और न उसकी अन्यान्य सूक्ष्मताओं से परिचित हैं। इसमे सन्देह नहीं कि इनमें कुछ ऐसे कवि हैं जिनमे कविता करने की जन्मसिद्ध प्रतिभा विद्यमान है। परन्तु ब्रजभाषा के प्रति अत्यधिक मोह होने के कारण ये पूरी तरह से विकसित नहीं हो पा रहे हैं। यदि ये लोग ब्रजभाषा को छोडकर अपनी मातृभाषा मे कविता करना प्रारभ करे तो अपना और साहित्य दोनों का बहुत-कुछ उपकार कर सकते हैं।

खड़ी बोली के कवि राजस्थान में सैकडो हैं और कुछ ने अच्छी ख्याति भी प्राप्त की है। परन्तु अधिकाश की रचनाओं मे प्राय वही दूषण पाये जाते हैं जो राजस्थान के बाहर के खड़ी बोली के अधिकाश कवियो में देखने मे आते हैं। ये लोग कविता करते हैं और कवि कहलाते हैं पर कविता क्या वस्तु है, इस बात का ज्ञान इनको नहीं है। ईश्वर-प्रदत्त कवित्व शक्ति के साथ-ही-साथ एक सच्चे कवि को रस, अलकार, छद आदि काव्यागों का अच्छा बोध होना चाहिए, और शब्द-भाडार पर पूरा अधिकार होना तो

आवश्यक है ही। परन्तु ये लोग इन गुणों से सर्वथा शून्य पाये जाते हैं। ये ऐसे क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं कि जिनका अर्थ खुद नहीं समझते। इनके कान भी इतने सधे हुए नही हैं कि जिससे इस बात का विवेक हो सके कि अमुक शब्द कर्ण-कटु और अमुक कर्ण-मधुर है। भाषा की अशुद्धता के सबंध मे तो कुछ न कहना ही अच्छा है। मच पर खड़े होकर जिस समय ये अपनी रचनाएँ सुनाते हैं ऐसा भान होता है मानों कोई बोरे में से ककड उँडेल रहा है अथवा टीन की छत पर ओले बरस रहे हैं!

ब्रजभाषा और खड़ी बोली के कवियों की अपेक्षा राजस्थानी भाषा के कवियों का काम अधिक उत्तम है। पेशेदार जातियों के कवियों की बात तो जाने दीजिये। क्योंकि वे तो अभी तक ठकुर-सुहाती और नरेश-भक्ति के दल-दल ही में फँसे पडे हैं और स्वतत्रता के इस नवीन युग, नवीन वातावरण, में भी उन्हे राजा-महाराजा 'कर्ण', 'कल्पवृक्ष' और 'पार्थ' दिखाई दे रहे हैं। परन्तु इतर कवियों ने बहुत उच्च कोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं और कर रहे हैं। विशेषकर इनकी फुटकर कविताएँ बहुत ही सुन्दर तथा भावपूर्ण बन पड़ी हैं। इस तरह की कविता करनेवालों मे सर्व श्री कन्हैयालाल सेठिया, रामनिवास हारीत,, मेघराज मुकुल, भरत व्यास, कुवर मोतीसिंह, सच्चिदानद शर्मा, गणपति स्वामी, कुवर धोंकळासिंह आदि प्रधान हैं।

राजस्थान के जिन कवियों को राजस्थानी और खडी बोली दोनों में काव्य रचना का अभ्यास है उनसे हम कुछ निवेदन करना चाहते हैं। बात यह है कि भाषा का विषय से घनिष्ठ सबध रहता है। यही बात छंदो के सबध में भी कही जा सकती है। वाल्मीकि रामायण का अंग्रेजी अनुवाद पढते समय हमारे मन मे रामचन्द्र के प्रति वह भक्ति पैदा नहीं होती जो संस्कृत-छदो में लिखे मूल ग्रथ को पढने से होती है। अग्रेजी अनुवाद पढते समय ऐसा मालूम पडता है मानों हम रॉबिन्सन क्रूसो अथवा हातिमताई का किस्सा पढ रहे हैं। अतः ग्रंथारभ करने से पूर्व हमारे कवियो को यह सोचना चाहिये कि उनकी भाषा और छद विषय के साथ मेल खाते हैं या नहीं। अर्थात् उनको यह देखना चाहिए कि अपने काव्य के लिए जो विषय उन्होंने विचारा है उसका निर्वाह राजस्थानी भाषा और राजस्थानी छदों मे अधिक अच्छा हो सकेगा या खडी बोली और खड़ी बोली के छदों में। वस्तुतः विषय के अनुरूप भाषा और छद चुनना भी कवि-कर्म ही है। श्री पतराम गौड़-रचित 'रेगिस्तान' एक अनूठा

खंड काव्य है। इसमें राजस्थान का वातावरण है। राजस्थान की प्राकृतिक शोभा का मनोहर चित्रण हैं। परन्तु खडी बोली मे होने से इसकी कान्ति कुछ फीकी पड गई है। यदि यही राजस्थानी मे रचा गया होता तो बात ही दूसरी होती। दूसरा उदाहरण चद्रसिंह कृत 'बादळी' का लीजिये। यह राजस्थानी भाषा की एक नवीन ढग की रचना है। पर दोहा छद मे लिखी होने से नवीन होते हुए भी प्राचीन-सी मालूम देती है। किसी पुरानी मोटर गाडी के कुछ कल-पुर्जे नये बदल देने से वह नई नहीं कहला सकती। नई तभी कहलायगी जब उसके सभी भाग नये होंगे।

राजस्थान मे चद, मीराँ, पृथ्वीराज, वृन्द, नागरीदास आदि अनेक एक-से-एक बढकर कवि हो गये हैं और इनकी अमर रचनाओं के सामने आजकल के कवियों की कृतियाँ साधारण कोटि की दीख पड़ती हैं। परन्तु यह सब होते हुए भी भारत के अन्य प्रान्तों की तुलना मे काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से राजस्थान गरीब नहीं है।

नाटक

अच्छे नाटक राजस्थान मे बहुत थोडे लिखे गये हैं। सर्व प्रथम स्वर्गीय अम्बिकादत्त व्यास ने नाटक-रचना का सूत्रपात किया था। इनके पश्चात् शिवचन्द्र भरतिया ने राजस्थानी भाषा मे 'केसर विलास', 'बुढापा की सगाई', "फाटका जजाल" इत्यादि नाटक रचे जो बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। तदनन्तर हिंदी-राजस्थानी मे छोटे-मोटे अनेक नाटक यहाँ रचे गये परन्तु विशेष आदर न पा सके, स्कूल-कॉलेजो की नाटक-मडलियों के बाहर उनका प्रचार नहीं हुआ। इस समय राजस्थान मे प० चतुर्भुजदास, प० प्रभु नारायण, प० ज्ञानदत, प० जनार्दन राय, श्रीकृष्णलाल वर्मा आदि अच्छे नाटककार हैं और इन्होंने नाट्य साहित्य की उन्नति के लिए प्रशसनीय प्रयत्न किया है। परन्तु इनमे कोई ऐसा नहीं है जिसकी कीर्ति राजस्थान की सीमाओं को लाँघकर बाहर पहुँची हो।

उपन्यास

उपन्यासो की दृष्टि से भी राजस्थान विशेष धनी नही है। प० लज्जाराम मेहता के उपन्यासो का कुछ वर्ष पूर्व अच्छा प्रचार था। पर आज कल उन्हें कोई नहीं पढता। वे पुराने हो गए हैं। डा० कल्याणसिंह शेखावत का 'शुक्ल और सोफिया', चांदकरण सारडा का 'कॉलेज हॉस्टल', सुन्दरलाल गर्ग

का 'अभागिनी' इत्यादि उपन्यास काफी रोचक है। परन्तु कथानक, घटना-वैचित्र्य, चरित्र- चित्रण इत्यादि की दृष्टि से ये सर्वथा निर्दोष नहीं हैं। राजस्थानी भाषा में तो अभी तक एक भी उपन्यास नहीं लिखा गया है। वस्तुतः उपन्यास-रचना का समूचा क्षेत्र राजस्थान में एक तरह से खाली ही पड़ा है।

कहानी

कहानी को राजस्थानी में 'वात' कहते हैं। वात-साहित्य अथवा कहानी-साहित्य राजस्थान में प्रचुर मात्रा में रचा गया है और काफी प्राचीन भी है। आज से कोई ६०० वर्ष पहले की लिखी कहानियाँ उपलब्ध हैं जो गद्य और पद्य दोनों में हैं। इनमें धार्मिक, नैतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि विभिन्न विषयों का अभिवचन बहुत सीधी-सादी भाषा और रोचक शैली में किया मिलता है। परन्तु आधुनिक ढंग की कहानियाँ लिखने की परिपाटी चालीस वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। इसका श्रीगणेश चन्द्रधर गुलेरी ने किया था। इनकी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी हिंदी की सर्व-श्रेष्ठ कहानियों में से एक है और हिंदी साहित्य की अमूल्य थाती समझी जाती है। स्वर्गीय सुन्दरलाल गर्ग कुशल कहानीकार थे। इनकी कहानियों का एक संग्रह 'पान-फूल' नाम से प्रकाशित भी हुआ है। पं० जनार्दन राय नागर भी अच्छे कहानी-लेखक हैं। इनकी कुछ कहानियों की प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि ने बहुत बड़ाई की है। कुछ का गुजराती आदि अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक नवयुवक कहानी-लेखक हैं। जिनकी कहानियाँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपा करती हैं।

निबंध

राजस्थान का निबन्ध साहित्य काफी उन्नत अवस्था में है। साहित्य, कला, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि अनेकानेक विषयों पर विद्वतापूर्ण लेख लिखकर यहाँ के साहित्यकारों ने हिन्दी-राजस्थानी के निबन्ध साहित्य को समृद्ध बनाया है। इनमें कुछ निबंध तो ऐसे लिखे गये हैं जिन्होंने हिंदी साहित्य को स्थायी गौरव प्रदान किया है। उदाहरण के लिए स्वर्गीय चन्द्रधर गुलेरी का 'पुरानी हिन्दी' और डा० गौरीशंकर-हीराचन्द्र ओझा का 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल' शीर्षक लेख इसी कोटि के हैं। आजकल वर्णनात्मक निबंधों के अतिरिक्त भावात्मक एवं विचारात्मक निबंध भी लिखे जा रहे हैं जिनमें विभिन्न शैलियों का प्रयोग पाया जाता है।

समालोचना

समालोचक प्रायः सभी देशों में कम ही पाये जाते हैं। राजस्थान मे भी इनकी सख्या अधिक नहीं है। स्वर्गीय सूर्यकरण पारीक बहुत उच्च कोटि के समालोचक थे। उनकी समालोचनाएँ बहुत गम्भीर, निष्पक्ष एव विद्वता-पूर्ण हुआ करती थीं। उनकी असामयिक मृत्यु से राजस्थान की बहुत हानि हुई है। वर्तमान समालोचकों मे श्री रामकृष्ण शुक्ल, श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री कन्हैयालाल सहल के नाम उल्लेखनीय हैं।

इतिहास

राजस्थान एक इतिहास-प्रसिद्ध देश है। यहाँ के निवासियों मे इतिहास के प्रति स्वाभाविक अनुराग पाया जाता है और अपने पूर्वजों की गौरव-गाथाएँ सुनने-सुनाने मे ये बडा रस लेते हैं। अत· इतिहास-विषयक कार्य यहा विशेष हुआ है जो विशद भी है और प्रमाणिक भी। यहाँ के इतिहास कारों में सर्वोच्च स्थान डा० गौरीशकर-हीराचन्द ओझा का है। ये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पुरुष थे। इनको राजस्थान का 'गिबन' कहा गया है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री कविराजा श्यामलदास, मुन्शी देवीप्रसाद, रामनाथ रत्न, रामनारायण दूगड, रामकर्ण आसोपा, हरविलास सारडा, डा० रघुवीरसिंह, विश्वेश्वरनाथ रेउ, पृथ्वीसिंह मेहता, डा० मथुरालाल शर्मा, डा० दशरथ शर्मा, झाबरमल शर्मा, जगदीशसिंह गहलोत, हनुमान शर्मा इत्यादि और भी अनेक प्रतिष्ठावान इतिहास लेखक हुए हैं जिनके ग्रथों का विद्वानो मे बडा आदर है। इनमे से कुछ महाशय अब भी मौजूद हैं तथा इतिहास सबन्धी कार्य कर रहे हैं।

समाचार-पत्र

राजस्थान के समाचार-पत्रों की जो दयनीय दशा आज से पाँच-सात वर्ष पूर्व थी वैसी इस समय नहीं है। द्वितीय महायुद्ध के पहले यहा केवल दस-बारह पत्र निकलते थे, जो सभी साप्ताहिक थे। परन्तु आज इनकी सख्या पचास तक पहुँच गई है। इनमें पाँच दैनिक व शेष सप्ताहिक हैं। दैनिक पत्रों के नाम हैं 'लोकवाणी' (जयपुर), 'जयभूमि' (जयपुर), राष्ट्रपताका (जोधपुर), 'रियासती' (जोधपुर) और 'नवज्योति' (अजमेर) इनके अतिरिक्त 'झरना,' 'लहर', 'राजस्थान-क्षितिज' आदि दो-चार मासिक पत्र

भी यहाँ से निकल रहे हैं। इन पत्रो मे से अधिकाश ने राष्ट्रीयता के प्रचार तथा पुरानी स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्था को जर्जरित करने मे अच्छा योग दिया है और आज भी अपने पथ पर अटल हैं। इसमे सदेह नहीं कि स्वस्थ पत्रकारिता की दृष्टि से इनमे कुछ त्रुटियाँ हैं परन्तु जिस गति से ये उत्तोत्तर उन्नति कर रहे हैं उसको देखते हुए इनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आशाजनक दिखाई पड़ता है।

शोध-कार्य

राजस्थान साहित्यिक सपत्ति का खजाना है। साहित्य-विषयक अतुल सामग्री यहाँ के विभिन्न जैन भडारों, उपासरों, रामद्वारों, अस्थलों, मठों, राजकीय पुस्तकालयो एव चारण-भाटों के घरों में अस्त व्यस्त दशा मे पड़ी हुई है जिसकी रक्षा करना परम आवश्यक है। कर्नल टॉड, डा० टैसीटरी, मुशी देवीप्रसाद, पुरोहित हरिनारायण इत्यादि विद्वानो के उद्योगो से इस सामग्री का जो अश अभी तक प्रकाश में आया है वह सपूर्ण अज्ञात सामग्री का शताश भी नही है। वस्तुत. 'यह काम अभी तक ज्यों-का-त्यों अधूरा पड़ा है और जब तक यह पूरा नहीं हो जाता तब तक हिंदी अथवा राजस्थानी साहित्य का प्रामाणिक व पूर्ण इतिहास लिखा जाना सभव नहीं है।

हर्ष का विषय है कि राजस्थान के आधुनिक कुछ विद्वानो का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है और वे इस दिशा में बहुत प्रशसनीय कार्य कर रहे हैं। इनमें श्री अगरचन्द नाहटा, डा० रघुबीरसिंह, श्री नरोत्तमदास, श्री कन्हैयालाल सहल, श्रीपतराम गौड, श्री रावत सारस्वत इत्यादि मुख्य हैं।

हिन्दी विद्यापीठ (उदयपुर), श्री सादूळ राजस्थानी रिसर्च इस्टीट्यूट (बीकानेर), बगाल हिंदी मंडल (कलकत्ता) इत्यादि सस्थाओं के तत्वावधान में भी यह कार्य हो रहा है। शोध विषयक दो-एक त्रैमासिक पत्रिकाएँ भी निकल रही हैं। परन्तु कार्य के महत्व और उसकी विशालता को देखते हुए अधिक सगठित प्रयत्नों की आवश्यकता है। हमारे खयाल से नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), हिंदी-साहित्य सम्मेलन (प्रयाग,), भडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट (पूना), और रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल (कलकत्ता) में से किसी को, जो समर्थ भी हैं और जिनका मुख्य काम यही है, यह काम हाथ में लेना चाहिए। क्योंकि यह कार्य केवल स्थानीय महत्व का नहीं, बल्कि भारतीय महत्व एव भारतीय साहित्य और संस्कृति की रक्षा का है।

अंत में राजस्थान के साहित्यकारों की कतिपय कठिनाइयों का उल्लेख कर देना भी यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, जन-तत्व, रहन-सहन आदि की दृष्टि से राजस्थान अपने आप में एक पूरी इकाई है पर राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न भागों में बँटा हुआ होने से यहाँ के साहित्यकारों का संगठन नहीं हो सका है और इस समय भी नहीं है। फलतः जंगल में रास्ता भूले हुए बटोहियों की तरह वे दिशा- शून्य-से भटकते नजर आते हैं। एक ही तरह का काम अलग-अलग व्यक्ति एवं साहित्य-समितियाँ अलग-अलग स्थानों पर कर रही हैं और मनमानी प्रणाली से कर रही हैं। इसलिए श्रम, शक्ति और द्रव्य सभी का अपव्यय हो रहा है। यदि नागरी प्रचारिणी सभा अथवा हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी कोई संस्था यहाँ होती तो कदाचित ऐसा न हो पाता।

दूसरे, यहाँ के साहित्यकारों और पत्र-संपादकों में यथेष्ट मेल नहीं है। यहाँ के संपादक लोग अपने पत्रों में राजनीति-विषयक लेख-कविताओं को अधिक स्थान देते आये हैं और विशुद्ध साहित्यिक रचनाओं की अवहेलना की है। देश स्वतंत्र हो गया है, पर इस समय भी वही स्थिति है। अतः या तो इन संपादकों को अपना दृष्टि-कोण बदलना चाहिये या नई शुद्ध साहित्यिक पत्रिकाएँ निकालना चाहिए जिससे ऊँचे साहित्य का पोषण और विकास हो सके। इसके अतिरिक्त प्रचार, प्रकाशन, प्रेस, सार्वलौकिक मंच इत्यादि की ओर भी अनेक ऐसी असुविधाओं का सामना यहाँ के साहित्यिकों को करना पड़ता है जिनका अनुमान बाहरवालों को नहीं हो सकता।

इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी पिछले १०-१२ वर्षों में राजस्थान में प्राचीन साहित्य के अनुसंधान और नवीन साहित्य के निर्माण का आशातीत कार्य हुआ है। इधर देश की स्वतंत्रता ने तो यहाँ के साहित्यकारों में नया जीवन ही फूँक दिया है।

विगत शताब्दियों में राजस्थान ने भारतीय साहित्य एवं सभ्यता को अपूर्व बल दिया है। आगे भी यह उसी तरह योगदान देता रहेगा, इस मनोकामना के साथ हम इस विषय को समाप्त करते हैं।

सहायक ग्रंथ

(हस्तलिखित)

अचळदास खीची री वचनिका (शिवदास)
अभयविलास (खेतसी)
अवतार चरित्र (नरहरिदास)
अश्वमेध यज्ञ (मुरली)
इच्छा-विवेक (जसवन्तसिंह)
कविवल्लभ (हरिचरणदास)
गुण-गोविंद (कल्याणदास भाट)
गुण रूपक (केशवदास गाडण)
चद कुवर री वात (प्रतापसिंह)
चदन मलयागिर री वात (भद्रसेन)
जगविलास (नदराम)
ढोला मारू री चौपई (कुशललाभ)
तत्त्ववेत्ता रा सवैया (तत्ववेत्ता)
प्रिया-विनोद (मुरली)
दसम भागवत रा दूहा (पृथ्वीराज)
नागदमण (साँया जी)
नेहतरग (बुधसिंह)
पच सहेली रा दूहा (छीहल)
पद्मिनी चरित्र (लब्धोदय)
पद्मिनी चौपई (हेमरत्न)
परसराम-सागर (परशुराम)
पृथ्वीराज रासौ (चद)
बिड़द सिणगार (करणीदान)
बुद्धिरासौ (जल्ह)
भक्तमाल (नाभादास)
भक्तमाल की टीका (प्रियादास)
भक्तमाल की टीका (बालकराम)
भाषा भारथ (खेतसी)
भाषा भूषण (जसवन्तसिंह)
भीमप्रकास (रामदान)
भीमविलास (किशन जी आढा)
मूता नैणसी री ख्यात (नैणसी)
रघुवर जस प्रकास (किशन जी आढा)
रस मजरी (जान)
रसिकप्रिया की टीका (कुशलधीर)
राजप्रकास (किशोरदास)
राजविलास (मानजी)
राणा रासौ (दयाराम)
राम रासौ (माधौदास)
रुकमणी हरण (साँया जी)
वचनिका राठौड़ रतनसिंह महेस दासोतरी (जग्गा जी)
ब्रजराज-पद्मावली (जवानसिंह)
वाराणसी विलास (देवकर्ण)
विक्रम पच दंड (नरपति)
विजयविलास (करणीदान)
विनोदरस (सुमति हस)
वीरमाण (ढाढी बादर)
वीर सतसई (सूरजमल)

वेलि क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (अज्ञात)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (कुशलधीर)
वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका (शिवनिधि)
शत्रुसाल रासौ (डूँगरसी)
शिकारभाव (नदराम)
संमतसार (साँईदान)
सगतसिंग रासौ (गिरधर)
सूरज प्रकास (करणीदान)
हरिपिंगल प्रबन्ध (जोगीदास)
हरिरस (ईसरदास)
हालाँ-झालाँ रा कुँडळिया (ईसरदास)

(मुद्रित)

हिन्दी-राजस्थानी

अलंकार रत्नाकर (दलपतराय-वसीधर)
आदर्श नरेश (झावरमल)
आप बीती (लज्जाराम)
उदय-प्रकाश (किशन जी)
ऊमर-काव्य (ऊमरदान)
ऐतिहासिक जैन-काव्य सग्रह (अगरचन्द)
कवि-रत्नमाला (देवी प्रसाद)
केसरीसिंह-समर (हरिनाभ)
केहर-प्रकाश (बख्तावर जी)
कोटा राज्य का इतिहास (डा० मथुरा लाल)
गीत-मजरी (श्री सादूळ प्राच्य ग्रथ-माला)
चतुर-चिंतामणि (चतुरसिंह)
छद राव जैतसी रो (डा० टैसीटरी)
जसवंत जसो भूषण (मुरारिदान)
जौहर (सुधींद्र)
डिंगल-कोश (मुरारिदान)
डिंगल में वीररस(मोतीलाल मेनारिया)
ढोला मारू रा दूहा(नागरी प्रचारिणी सभा)
देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान (बालचद)
नटनागर-विनोद (नटनागर)
नागर समुच्चय (नागरीदास)
पाँडव यशेन्दु-चन्द्रिका (स्वरूपदास)
पुरातन प्रबन्ध-सग्रह (जिनविजय)
पृथ्वीराज रासौ (काशी नागरी प्रचारणी सभा)
पृथ्वीराज रासौ (दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी)
पृथ्वीराज रासौ (मथुराप्रसाद दीक्षित)
प्रताप-चरित्र (केसरीसिंह)
बाँकीदास-ग्रन्थावली भाग १-३ (काशी (नागरी प्रचारणी सभा)
बादळी (चन्द्रसिंह)
बापू (घनश्यामदास)
बीसलदेव रासौ (काशी नागरी प्रचारणी सभा)
बुढापा की सगाई (शिवचन्द्र)
भारत के देशी राज्य (सुख संपति राय)
महाराणा यश प्रकाश (भूरसिंह)

मारवाड़ का इतिहास (विश्वेश्वर नाथ रेउ)
मारवाड़ी व्याकरण (रामकर्ण)
मिश्रबन्धु-विनोद भाग २-४ (मिश्र बंधु)
मोहन-विनोद (रामसिंह)
रघुनाथ-रूपक (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राजपूताने का इतिहास (ओझा)
राज रसनामृत (देवी प्रसाद)
राजरूपक (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राज-विलास (काशी नागरी प्रचारिणी सभा)
राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (मोतीलाल मेनारिया)
राजस्थान रा दूहा (नरोत्तमदास)
राजस्थानी साहित्य की रूप-रेखा (मोतीलाल मेनारिया)
राजिया रा दूहा (कृपाराम)
रेगिस्तान (पतराम गौड)
वंश-भास्कर (सूरजमल)
विरुद छहत्तरी (दुरसाजी)
वीरविनोद (श्यामलदास)
वीर विनोद (गणेशपुरी)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (हिन्दुस्तानी एकेडेमी)
वेलि क्रिसन रुकमणी री (डा० टैसीटरी)
व्रजनिधि ग्रंथावली (हरिनारायण)
व्रज माधुरी सार (वियोगीहरि)
शबनम (दिनेशनंदिनी)
शिव सिंह-सरोज (शिवसिंह)
शेखरस्मृतियाँ (डा० रघवीरसिंह)
संतवाणी-संग्रह (वेलवेडियर प्रेस)
सतसई (बिहारीलाल)
समीक्षाजली (कन्हैयालाल सहल)
सुन्दर-ग्रन्थावली (हरिनारायण)
स्त्री कवि-कौमुदी (ज्योतिप्रसाद)
हमीर रासौ (जोधराज)
हरिरस (ईसरदास)
हिन्दी-साहित्य का इतिहास (रामचद्र शुक्ल)

गुजराती

कवि-चरित, भाग पहला (केशवराम-काशीराम)
चारणों अने चारणी साहित्य (झवेरचन्द मेघाणी)
जैन गूर्जर कविओ, भाग १-४ (मोहनलाल-दलीचद देसाई)
प्राचीन गूर्जर काव्य (केशवलाल-हर्षदराय)
प्राचीन गुजराती गद्य-सदर्भ (मुनि जिन विजय)
वृहत् काव्य दोहन, भाग ७ (इच्छाराम-सूर्यराम)

संस्कृत

काव्यप्रकाश (मम्मट)
पाइअ-सद्द-महण्णवो (हरगोविंददास-त्रिकमचन्द)
पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (जयानक)

प्राकृतपैङ्गल (एशियाटिक सोसाइटी)
राजप्रशस्ति महाकाव्य (रणछोड़ भट्ट)
यजुर्वेद सहिता (आर्य्य साहित्य-मडल)

अग्रेंजी

A Descriptive(Catalogue of Bardic and Historical manuscripts-part I & II (Dr.L P. Tessitori)
Annals and Antiquities of Rajasthan (Col. Tod)
Gujarat and its Literature (K M Munshi)
History of Classical Sanskrit Literature) Krishnamachariar)
Linguistic Survey of India, Vol IX, Pt. I (Dr. G A. Grierson)
Preliminary Report on the Operation in Search of Mss. of Bardic Chronicles (Haraprasad)
Rajputana Gazetter

पत्र-पत्रिकाएँ

जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बगाल
नागरी प्रचारिणी-पत्रिका
भारतीय विद्या
राजस्थान भारती
क्षात्र-धर्म सदेश
विशाल भारत
राजस्थानी
माधुरी
चारण

नामानुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
साम्मिलित	सम्मिलित	३	२२
मसकरो	मसकरी	६	फुटनोट
कहाना	कहना	१६	२४
है	०	१७	४
निर्मळ	त्रिमळ	३४	२२
शेप	प्रायः शेप	३६	१२
मावीत्र.. मुखि	०	३७	२०
जाळी.. जोवै	०	३६	६
प्रतिभिंवत	प्रतिबिंबित	४८	१५
बोलतां	बोलतो	५६	१२
बडा	बड	६०	८
जध	जुध	६५	१३
सूरजमल्ल	सुरजमल	६६	२२
इसलिए	०	८४	७
समसामायिक	समसामयिक	८१	१५
आतिरिक्त	अतिरिक्त	८१	२३
राजप्रशत्ति	राजप्रशस्ति	६२	फुटनोट
मारा	मारी	११७	फुटनोट
काढ़ि	कढि	१२०	फुटनोट
कहाँ	वहां	१५०	२४
निवा	निर्वीर	१५५	१७
बनाएँ	वनाए	१६५	१२२
विद्वन	विद्वान	२६१	१८
भारद्वाज	भरद्वाज	२६२	२४
वेग	पगड़ी	२६४	फुटनोट